बीसवीं सदी के दो महान कवियो
ब्रेष्ट और लोर्का की स्मृति को समर्पित।

(1998–ब्रेष्ट और लोर्का का जन्मशती वर्ष)

बीसवीं सदी क दा महान कविया
ब्रेष्ट और लोर्का की स्मृति का समर्पित।

(1998–ब्रेष्ट और लोर्का का जन्मशती वर्ष)

सदी के अंत में कविता

उद्भावना कविताक

वर्ष 14 अक 47-48 (अक्तूबर '97-मार्च, '98)

सपादकीय पता
एच-55 सक्टर 23 राजनगर पोस्ट-कवि नगर, गाजियाबाद उ प्र

प्रबधकीय पता
ए-21 झिलमिल इडस्ट्रिएल एरिया जी टी रोड, शाहदरा दिल्ली-95
फोन 2282847 2119770

सहयोग राशि 40 00 रुपये

सभी मनीआर्डर/चैक/ड्राफ्ट **'उद्भावना नई दिल्ली'** के नाम से ही भेजे
सभी पत्र-व्यवहार प्रबधकीय पते पर ही करे

सपादन एव सचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यवसायिक

अनुक्रम

विस्लावा शिम्बोर्स्का

हमारी सदी मे

आखिरकार हमारा सदी भी बात चली है।
इसे दूसरी सदियों से बहतर होना था
लेकिन अब तो
यह भी अपने गिने-चुने साल पूरे कर रही है
इसकी कमर झुक गई हे
सास फूल रहा है।

कितनी ही चीज थीं
जिन्ह इस सदी मे होना था
पर नहीं हुई
और जिन्हे नहीं होना था
हो गईं।

खुशी और वसत जैसी चीजो को
और करीब आना था

पहाडो और घाटिया से उठ जाना था
आतक और भय का साया
इससे पहले कि झूठ और मक्कारी
हमारे घर को तबाह करते
हमे सच की नींव डाल देनी थी

कुछ समस्याए थीं
जिन्हे हल कर लेना था-
मसलन भूख और लडाइयाँ

हमे बेबसी के आँसुआ
ओर सच्चाई जैसी चीजो क लिए
अपने दिल मे सम्मान जगाना था
लेकिन ऐसा कुछ न हुआ।
आज ये हालात हैं कि
सुख एक मरीचिका बनकर रह गया हे
कोई नहीं हँसता बेवकूफिया पर
ओर न ही फख्र करता है
अक्लमदा पर
अब तो उम्मीद भी
सोलह साला हसीना नहीं रही

हमने सोचा था कि
आखिरकार खुदा को भी
एक अच्छ ओर ताकतवर इसान म
भरोसा करना होगा।
लेकिन अफसोस
इस सदी म इसान अच्छा आर ताकतवर
एक साथ नहीं हो सका।

"आखिर हम जिएँ तो कैसे जिएँ?"
किसी ने खत मे पूछा था
मैं भी तो उससे यही पूछना चाहती थी

जैसा कि आप देख चुके हे
वही होता हे
हर बार वही होता हे-
सबसे अहम सवाल
सबसे बचकाने ठहरा दिये जाते हैं।

(अनुवाद विजय अहलुवालिया)

संपादकीय

आवत देखहि बिपय बयारी —

सच है कि मैं अधेरे समयो मे जीता हूँ
जब एक निष्कपट शब्द मूढता है,
एक सपाट मस्तक सवेदनहीनता का सकेत
जो आदमी हँस रहा है
उस तक अभी भयानक खबर नहीं पहुँची है।

—ब्रेप्ट

शायद इतिहास मे ऐसे मुकाम आते हैं। युगात साफ दिखाई देता है सक्रमण की रफ्तार अभूतपूर्व होती है। धुध मे कुछ पीछे छूट गया, कुछ सामने उभरता सा दिखाई देता है। रचनाकार इस बदलाव को किस तरह देखता है? 1938 मे ब्रेष्ट ने जब उपराक्त पक्तियाँ लिखी थीं तब जर्मनी में राष्ट्र, प्रगति और वैज्ञानिक तर्कवाद के नये मिथक गढे जा रहे थे। बीसवीं सदी के इन अतिम वर्षों मे पता नहीं हमारी यह दुनिया किस हद तक विश्वग्राम बन पायी है, पर पूजी टेक्नॉलाजी और बाजार ने यकीनन हमारी रोजमर्रा की जिदगी को शिकारी कुत्तो की तरह चाँप लिया है। लोग-बाग किसी सुनहरे भविष्य को लपकने चीखते-चिल्लाते बदहवास से सरपट भागे चले जा रहे हैं। सकल्पनाए टूट रही हैं, प्राथमिकताए बदल रही हैं। आभासो और अटकलो का बाजार गर्म है। कोई हडबडी म दौडता हुआ कह रहा है कि अनुभवो का इतिहास दोबारा लिखा जा रहा है– आगे की तरफ भी और पीछे की तरफ भी कि इस इतिहास मे मनुष्य समाज का नया मनोविज्ञान, नये सकेत और नयी स्मृतियाँ हैं कि मनुष्य का अनुभव और उसकी भाषा मशीन के लिए अब महज एक कच्चा माल है।

कवि हतप्रभ है। वह जमीन की पर्त पर कान लगाये आने वाले मौसम को पढना चाहता है। कभी हैरानी और कभी परेशानी में वह पिछले समयो की आर ताकता है। एक चीज से दूसरी चाज का एक दुनिया स दूसरी दुनिया को कौन सा धागा जोड रहा है? कवि पूछ रहा है। कविता कुछ सहमी हुई सी कुछ बिखरी हुई सी इस अधड रेल-पेल और आपा-धापी म लस्टम-पस्टम दौडते लागा के बीच खडी उनसे सवाल पूछ रही है। यद्यपि उसकी बात

कोई सुनता नहीं पर वह एक जिद की तरह अपने सवाल पूछे जा रही है। समय और उसमे आदमी के वजूद को लेकर कुछ बहुत पुराने सवाल। युद्धो, यत्रणा शिविरो, सर्वसत्तावाद मशीनगनो, नफरत तगहाली गैर-बराबरी, रोग भुखमरी जहालत, सनक, पागलपन सदेह नपुसकता और तिजारत के सामन खडी कविता सवाल पूछ रही है। तसल्ली आराम, इत्मीनान, वैभव और आत्मतुष्टि की दुनिया मे उसक ये सवाल बार-बार दोहराये जा रहे हैं–

ये किस तरह का समय है
जब पेडो के बारे मे बात करना लगभग अपराध है
क्योकि इसका मतलब
इतनी सारी दहशत के समक्ष एक खामोशी है।

कविता बीसवीं सदी पर होते हुए पटाक्षेप को देख रही है। वह देख रही है कि यूरोपीय पुनजागरण की तीन सौ साल पुरानी तमाम धारणाए धूल चाट रही हैं। रक्तरजित आकाक्षाआ और उन्माद के बीच नये नये शब्द सिद्धान्त और प्रतिपादन रोज जन्म ले रहे हैं, रोज मर रहे हैं। केन्द्र सरक रहे हैं। राष्ट्र प्रगति विज्ञान पूजी और तर्क के पुराने मिथको का पानी उतर रहा है नये मिथक गढे जा रह हैं। भविष्यवाद के इन मिथको के पीछे छिपी हिसा, वर्चस्व और शोषण की शक्लो को कविता पहले से ज्यादा साफ देख रही है।

कविता देख रही है कि सदी के इन अतिम वर्षो म झूठ बेइसाफी, पाशविकता और उत्पीडन को फैलाने वाले कुछ नयी तरह के खिलौने ईजाद हुए हैं। घटनाए घटनाए नहीं, हादस हादसा की तरह नहीं हैं। सबकुछ भीषण रूप से भव्य, लुभावना और उन्माद भरा। विध्वस जुल्म बेबसी आर क्रूरताआ क बेहद हगामाखज दृश्य। सबकुछ बेहद तात्कालिक और क्षणिक। सबकुछ बेहद आक्रामक और सवदनाविहीन। नृशसताओ का एक नया रोमाच, लाचारिया की एक नयी सनसनी। और इस सच को दिखाने के पीछे एक पूजी एक बाजार और एक नियत्रण मूलक ताकत। कविता पूछती है मनुष्य के इतिहास मे क्या सच कभी इतना निर्वैयक्तिक, इतना निरपेक्ष इतना कल्पनाविहीन इतना पीडा रहित इतना आसान था? यह कौन सा सच है जिसे एक सहता है और दूसरा सिर्फ देखता है? यह कौन सा सच है जो सिर्फ एक दृश्य बना रहता है, अनुभव नहीं बनता? जो एक कैंसर की तरह सवेदना तत्तुओ क सिस्टम म पसरता जाता है और रागग्रस्त आदमी को उसकी जानकारी तक नहीं।

बीसवीं सदी के इन अतिम वर्षो म कविता सभ्यता के इस 'स्लो पाइजन' को पहचान रही है घटनाआ हादसा और प्रसगा से ठसाठस भरे सच मे छिपी दरारों से प्रवश करती हुई तात्कालिकता क लम्पट आवरण को भेदती हुई विशापज्ञो के भूल भुलैया में मनुष्य के त्रास चीत्कार और उन्माद का निजी स्फीयर रचता हुई यात्रिक तर्कवाद के घटाटोप मे आदमी को हिलने-डुलन सरकन और सास लेने की जगह दती हुई अकस्मात् के पाछ और आगे के रहस्यमय धागा को दखती हुई। गनीमत है कि कवि आज भी यह मानता है कि कविता अब भी इस ससार क बार म एक सनान एक मुक्ति एक ताकत और एक समर्पण है यह ३ भी दुनिया का विवरण देती है और एक आध्यात्मिक अनुभव बन जाना चाहती है

वह इस दुनिया को खोलती है और एक दूसरी दुनिया बन जाती है, वह आदमी को अकेला करती है और उसे दूसरे से जोडती है, वह शून्य के प्रति एक प्रार्थना और अनुपस्थिति के साथ एक सवाद है, वह यात्राआ पर निकल जाने का निमत्रण और घर की आर लौटने की तडप है, वह अब भी आदमी के अवचेतन की उदादत्ता और क्षतिपूर्ति है वह इतिहास के पोर-पोर से गुजरती हुई इतिहास का अतिक्रमण कर जाना चाहती है, वह एक ही साथ एक प्रयोग, एक अतरगता और एक पराक्ष विचार है वह मजिल का पूर्वाभास और एक अथक भटकन भी एक साथ है। पाब्लो नेरूदा ने कहा था ''कविता मे अवतरित मनुष्य बोलता है कि मैं अब भी एक बचा हुआ अतिम रहस्य हूँ''।

'उद्‌भावना' का यह कविताक आपके सामने हे- सदी के अत म कविता। मुझे अब भी पता नहीं कि भाई अजेय कुमार न इस अक क अतिथि सपादक की जिम्मदारी मुझे क्या साच कर दी, क्याकि एक 'पहुँच' हुए कवि-सपादक का गुरू-गाभीर्य आर एक युवा कवि-सपादक की उठा-पटक दोनो ही गुण मेरी क्षमता के बाहर थे। दूसरी भी किसी तरह की कोई मानसिक तैयारी नहीं थी। इसके बावजूद यदि अजेय कुमार जी लगातार आत्मीयतापूर्ण आग्रह करते रहे तो फिर बचकर निकल भागने का कोई रास्ता नहीं था। मुझे सपादन का कार्य उन्हाने दिया और उसमे भरपूर स्वतत्रता भी मिली इस हेतु मैं उनका आभारी हूँ। 77 कवियो को चुनन और लगभग 120 कवियाे को लाघ जाने के बाद यह सकलन कैसा बन पाया यह तो आप तय करेगे। चयनकर्ता केवल यह कह सकता है कि तमाम रचनाआ से गुजरते हुए वह अपनी सौंदर्य रुचि की गुजाइश और उसकी सीमाओ- दानो से रूबरू हुआ। कई बार यह बात चकित भी करती है कि इतने ज्यादा कठिन समय मे इतने अधिक कवि इतनी अधिक कविताए! या इलाही ये माजरा क्या है! किसी ने ठीक ही कहा है कि 'पल्प' और 'पोएट्री' दोना हमारे समय के अतिवादी सास्कृतिक रेस्पास है जिनका गधर्व विवाह हुआ है। कविता के इतने विशाल फलक पर हम अपन क्षरण और बच रहन की अन्दरुनी ताकत दाना का समझ सकते हैं।

इस अक के लिए जिन कवियों ने रचनाए दीं उनका हार्दिक धन्यवाद और जिनकी रचनाए नहीं जा सकीं उनके प्रति मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

और अत मे आभार सतोष चौबे, जितेन्द्र भाटिया, विजय अहलूवालिया, अनूप सेठी, अनुराधा महेन्द्र सगीता गुप्ता, अनत साकुलकर और नदू चादेकर का, जिनका महत्वपूर्ण सहयोग इस अक की तैयारी म मिला।

-विजय कुमार

चद बाते

☐ सत्यपाल सहगल

इसम कोई शक नहीं है कि आज की हिंदी कविता पर विस्तार से बाते नही हुई हैं पर सभवत व समकालीन साहित्य की किसी विधा को लकर नहीं हो रही हैं। पाठकीयता क सकट का लेकर ता कुछ हो-हल्ला हाता रहा है पर साहित्य की अपनी दुनिया के इस सकट पर शार कौन डाले? सच्चाई यह है कि यह साहित्य की दुनिया से जुडे सभी लोगो की जिम्मेदारी है इसलिए आरोप वही लगा पाएगे जो कुछ करने के लिए आगे आएगे। यदि यह लेखको की वास्तविक चिता है तो फिर उन्हीं का बालना आरभ करना चाहिय। और यदि व यह समझत हैं या कहना चाहत हैं कि उनका रचनाए पर्याप्त वक्तव्य हैं ता वे थोडा मूखता का सुबूत द रह हाग क्याकि ये उनका अपनी रचनाआ क बार म तो उपयुक्त हा सकता है पर उनकी रचनाए साहित्य क उस सपूण वैचारिक परिवश का स्थानापन्न नहा हो सकतीं जिससे किसी समाज की सपूर्ण साहित्यिक सस्कृति निर्मित हाती है। हा यह हो सकता है कि व ऐसा रचनाआ के साथ सामने आए जा इस तरह से विस्फोटक हा कि बाकी लागा क लिए चुप रहना या प्रतिक्रिया व्यक्त न करना असभव हो जाए। शायद यह स्थिति भी नहीं है। क्याकि पूर्व म ऐसा देखा गया है कि ऐसी स्थिति मे साहित्य ही नहीं साहित्यकार स्वय भी विस्फोटक हा जाते हैं। आलाचना केवल साहित्य की ही समीक्षा नहीं करती बल्कि उसके माध्यम से सस्कृति की चीर-फाड करती है लेकिन आखिरकार आलोचक भी मनुष्य हैं और साहित्य की तरह वे भी श्रीविहीन हो सकत हैं। उनकी राजी रोटी आराम से चलती है और यश-लिप्सा उनक लिए सभवत वैसी आत्यतिक नहीं होती जैसी रचनाकारा के लिए। इसलिए यदि उन्होने तानकर सोने या मस्त हाथिया की तरह पसरने का फसला किया है तो कोई उसमे क्या कर सकता है?

एक तरह से देखने पर यह लग सकता है कि हमारा समय विचार विमर्श के लिए बहुत ही बोमीदा है। साहित्य का हाशिए की ओर धकेला जा रहा है उसकी सामाजिक पोजीशन हल्की पडी है सामाजिक परिवर्तन की स्पष्टता और निश्चितता अस्पष्टता और अनिश्चितता मे तब्दील हुई है चारो ओर ऐसी चमक, तेजी और ऐय्याशी है और उसके लिए सबकी ऐसी लपलपाहट है कि साहित्य का जो खाद-पानी आज तक रहा है और जिन कारणा से साहित्य की अब तक आवश्यकता रही है वह सदेह मे पड गया है। हमारे चारा ओर की दुनिया मे तेजी से परिवतन आ रह है कि हम बहुत बेबाकी से साहस से सोचन या न साचने की स्वाकार या अस्वाकार करने की आवश्यकता है किन्तु छुटपुट उदाहरणा को छोडकर स्वातत्र्योत्तर हिदा चितन म ऐसी कोई लीक ही नहीं है। एक परस्पर-स्वाकृत ससार में अब तक हमारा काम चला हुआ था। उसके भातर हमने काफी कागज काले किए हैं और काफी भाषण पिलाए हैं पर व हमारे काम आज तो बिल्कुल आने से रहे। चूकि हम अगर हिंदी म लिखना या बोलना है ता अतत प्रतिश्रुत उसी वर्ग से हाना है जो हिंदी म पढता या सुनता है। हम लखको के सदर्भ म ता उसका विशष अर्थ हिंदी का बाद्धिक वर्ग ही हे। आज नई चुनौतिया क कारण यह वर्ग ही बेहद

आधारभूत सास्कृतिक सकट म नजर आता है जिसकी ओर कुछ फूहड ढग से ही सही आदरणीय राजेन्द्र यादव का ध्यान जाता रहा है। जाहिर है इस हिदी बौद्धिक वर्ग की सास्कृतिक सकट को जड व्यापक राजनैतिक जातीय और सास्कृतिक आयामा तक फैली है। इस प्रकार बहस की दिशा ही बदल जा सकती है जहा अपनी अल्पसख्यकता का अहसास बार-बार आ सकता है तथा जिस बहस के बहुत लब समय म खिचन क वास्तविक आसार हैं।

यह बहुत जटिल मामला भी है और चूकि हिदी म चीजा को जटिल ढग स हैंडल करने की बहुत ही क्षीण परपरा है इसलिए कार्य की विशालता देखकर सशय उत्पन्न होना स्वाभाविक है। और इस कार्य म अपेक्षाकृत अकेल हान स कोई हौंसला हफजाई नहीं हाता। इस तरह साहित्य की बात तो पीछ छूटती नजर आती है। यह एक भयानक परिदृश्य है लकिन जाहिर है इसे अकर्म क हक म एक तर्क क रूप म पश नहीं किया जा सकता।

इससे निष्कर्ष यही निकलता है कि सशय क बीच म भी सावधानी से ही सही बालते रहना चाहिये क्याकि बर्फ का टूटना ऐसे ही आरभ होगा और एक सामूहिक आवाज का निर्माण भी ऐसे होगा।

2

आज की हिदी कविता पर बात करन पर पहली अचरज का बात यह नजर आता है कि इस पर बात करन की काई प्रचलित शब्दावली नहीं है। लगभग पिछल बीस वर्षो मे यह कविता लिखी जा रही है। इन पक्तिया के लेखको की जानकारी म विजय कुमार मदन सानी या विष्णु खरे को छोडकर किसी और न इस कविता पर लगाव के साथ तनिक विस्तृत विचार नहीं किया है। इसके अलावा 'नई कहानी' म छपा नीलाभ का लेख तथा 'मधुमती' म छपा राजेश जोशी का लेख ध्यान म आता है जिसमे इसकी विशिष्टता को उजागर करने की कोशिश है। कुछ स्थला पर परमानद श्रीवास्तव व ललित कार्तिकेय ने भी कुछ रोशनी डालने वाला टिप्पणिया की हैं। कम से कम एक काव्यकाल के रूप मे तो इस पर विचार बिल्कुल हा नहीं हुआ है कतिपय कविया का गहन पाठ तो दीगर बात है।

यह इसलिए भी हैरान करने वाली बात है कि इस पूर काल मे बहुत कविता लिखी गई है। सैकडा कविता-सग्रह छप हाग (उनकी प्रतिया की सख्या पर न जाइए)। शिमला म दिए गए एक भाषण मे प्रख्यात कहानीकार ज्ञानरजन ने तनिक काव्यात्मक लहजे म ही कहा कि उनके पास ट्रका म भरकर कविता आती है। बहरहाल इस अरसे म कविता खूब छपी है- एक समय तो पत्रिकाआ के कविताक निकालने की होड लगा था। और हा, कविता की वापसी का युग भी तो इसे कहा गया। कविता की वापसी की अभ्यर्थना म आपातकाल क तुरत बाद पूर्वग्रह ने एक बढिया कविता-विशषाक निकाला था। और पहल-13 का वह एतिहासिक कविताक[1] उसके बाद भा कविता विशेषाक और महाविशेषाक निकलत रह। इधर पिछले वर्षो म आधार प्रकाशन ने युवतर कविया के पहले सग्रह छापने की खुद ही पशकश कर डाला। इधर हालात फिर कुछ कविता-विराधी नजर आत हैं पर कुल मिलाकर य दो दशक विपुल काव्य के वर्ष रहे। बीच मे तो उसे समकालान हिदी साहित्य की श्रेष्ठतम विधा भा बताया जान लगा था।

बावजूद इसक हम ठीक-ठीक नहीं पता कि यह कविता है क्या? और यह जो कुछ भी है वैसी क्या है? और क्या उस वैसा हाना चाहिये? है न अचरज का बात? काई कह सकता है कि यही इस

1 ... के अत मे कविता

कविता की खासियत है कि यह कविता नामकरण स परिभाषा से बची है-'प्यार को प्यार ही रहने दो कोई नाम न दो'-नारे से बची है दावा आग्रहो से बची है, क्योंकि विगत म इससे कविता को काफी नुकसान उठाना पडा है। खैर यह बहस तलब है कि बाकायदा आदोलन के रूप म विकसित हुए प्रगतिवाद नई कविता अकविता या वामकविता को उससे क्या लाभ या हानि हुई है। शायद कुछ लाभ हुए और कुछ हानिया। लेकिन कविता क बारे म यह तथाकथित बदला हुआ दृष्टिकोण कोई नितात मौलिक चीज नहीं था यह इतिहास और चेतना की उस नई शिफ्ट के अनुरूप ही था जो पिछले वर्षों म राष्ट्रीय और अतर्राष्ट्रीय स्तर पर उभरी है।

दरअसल बहुत अरसे से हमारे यहा कुछ मौलिक नहीं होता है, सभवत मौलिकता के प्रति यह कथन भी उतना मौलिक नहीं है।

इस तरह से कविता के इस अद्यतन युग क निर्माण मे कुछ भी अनाखा नहीं है। यह भी उसी तरह अपने समय की उपज है और हिस्सा है जैसे पहले क काव्य समय रहे। इसलिए न इस पर किसी को बगले बजाने की आवश्यकता है और न निराश होने की।

बावजूद इसके यह एक कवितायुग है और यदि वह परिभाषा स कतराता है तो वह भी उसकी एक पहचान है और बात यहीं से आरभ की जा सकती थी की जा सकती है। लेकिन नहीं की गई है। कविया की तरफ से इसके लिए कोई आग्रह भी नहीं आया है, आश्चर्य है। व स्वय तो चुप रहे ही हैं। सभवत उनम स कोई अपनी कविता को प्रगतिशील या जनवादी कविता के नए सस्करण के रूप म देख, जोकि वह है भी लेकिन यह नयापन साफ-साफ रिकार्ड मे नहीं है। इसका बडा नुकसान यह है कि इससे कविता का वह वैचारिक परिप्रेक्ष्य अवरूद्ध होता है जो अज्ञात रूप से कविताओ को पृष्ठभूमि म कार्य करता है तथा विशेषकर नइ पीढी क लिए जिसकी उपयोगिता बहुत स्पष्ट है। क्या यह गद्य लिखने की कठिनाई है जोकि कविया मे अब एक बहुत आमफहम बात है अथवा अवधारणात्मक अभिव्यक्ति की कठिनाई जो कवियो को सदा रही है किन्तु, गद्य क उदय के बाद जिसस हर युग में, कुछ समर्थ कवि पार पाते आए हैं। या यह आलोचनात्मक जिज्ञासा विवेक और प्रतिभा का सामान्य सकट है चाहे कवि हो चाहे महामना आलोचक। यह एक तरह की साहसहीनता भी हो सकती है क्योंकि कविता एक पर्दा भी है जिसके पीछे चहरा छुपाकर बोला जा सकता है और उसे साफ-साफ कहने के मनोवैज्ञानिक नैतिक और व्यावहारिक सकट हो सकते हैं। यह भी हो सकता है कि अस्पष्टता इतनी हो कि अत मे मुख से यही निकले कि 'एसा लौं तैसा लौं, मैं केहि विधि कहू अनाखा लौं' पर कम से कम इतना तो कहा जाए। यह भी नहीं हुआ है। और इतने समय के बाद भी नहीं हुआ है।

या यह भी कहा जा सकता है कि साहेब! इसम आधारभूत रूप स कुछ नया है ही नहीं कुछ नया क्रातिकारी चाहे विचार या शिल्प। यह एक खुली दुनिया है जिसमे कुछ भी आ सकता है कोई विचार कोई दर्शन कोई रचना-विधि पुराना नया और लगभग सबके लिए सहानुभूति है। तो इस खुलेपन को इसकी विशेषता कहे? यह नाम द? सभवत इस खुलेपन क खुले रूप क बार म सशय है। तो सशय का नाम दे? सभवत इसक बार म भी सशय है। इसीलिए कुछ न कहे चुप रह?

शायद हम लोग एक गलती कर रह है। हम इस काव्यकाल की कोई सामूहिक परिभाषा ढूढन की कोशिश करते रह हैं कि जिसम एक किस्म की निर्मम तटस्थता और वैज्ञानिक दृष्टि की आवश्यकता होती है। व्यापक गहन अध्ययन का भी। जबकि एक किस्म की कविता को प्रगतिशील जनवादी

और दूसरी तरह की कविता को रूपवादी कहने का खडित चलन नजर म आता है। सभवत बहुत से लोगा क लिए यह स्वत स्पष्ट है कि यह प्रगतिशील-जनवादी काव्य है और अन्य शुद्ध काव्य अथवा कुछ और किंतु इससे अतत अपनी पसद की कविता को लेकर एक निजी परिभाषा की समस्या तो हल हो जाती है पर एक सार्वजनिक टिप्पणी तैयार नहीं होती।

जिस कार्य की माग हम आरभ से कर रहे हैं आमतौर पर उसे करने का श्रेय आलोचक लेना चाहता है। विगत म तो यही हुआ है। लगता है वह भी सशयग्रस्त और अस्पष्ट है या कविता के नए परिवतना को पूरी तरह आयत्त करन म असमर्थ है। आमतौर पर हर युग अपने आलोचक भी लेकर आता है। इस बार ऐसा नहीं हुआ है। कारण? खडित जनादेश?

3

सभवत यह खडित जनादेश ही इन बरसा की सच्चाई है। चीजो को लेकर लाग एक राय नहीं हैं और कई तरह के स्वर सुनाई पड रहे हैं। कोई माने या न माने हम पसद करे या न करे एक उत्तरआधुनिक एजेडा चुपचाप हमारी कविता म आ गया है। यहा यह स्पष्ट किया जाए कि हमारी राय म उत्तर आधुनिकता के नाम पर जो कुछ हमारे यहा कहा किया जा रहा है वह प्राय फैशन है तथा भारत जैसे देश म तो यह पारिभाषिक बहुत ही अजीब प्रतीत हाता है। हम इसे कवल सुविधा के लिए इस्तेमाल कर रहे हैं। यह महज सयोग नहीं है कि उत्तर आधुनिकता भी वैसी ही अस्पष्ट और परिभाषा विहीन है जैसा हमारा कविता समय। दरअसल उत्तर आधुनिकता के कई व्याख्याकार उसकी परिभाषा का ही विरोध करते हैं क्योंकि उसका अभिप्राय होगा उसको एक तार्किक एकसूत्रता देना जिसको वे कई कारणा से निरुत्साहित करना चाहते हैं।

बहरहाल जडो की ओर लौटना तथा स्थानीयता जो कि बहुत प्रगल्भ और सूक्ष्म रूप से इस काव्यकाल की कविता की विशेषताए हैं तथा जिसे सब स्वीकार भी करते हैं उत्तर आधुनिकता का ऐजडा है। इसी प्रकार कविता म औरत और प्रकृति की उपस्थिति भी क्रमश नारीवादी तथा पर्यावरणवादी एजेडे की उपज प्रतीत होती है जो अतत उत्तर आधुनिक एजडे में शामिल है। इसी प्रकार सवेदनागत वैशिष्ट्य पर जोर तथा उस अवधारणात्मक अमूर्तता से मुक्ति जो पूर्व की कविता पर हावी रही है उत्तर आधुनिक विचार का महत्वपूर्ण अग है। फिर परिदृश्य मे बहुलतावादी प्रवृत्तियो को देखे तथा परिभाषा और सैद्धातिकरण की स्थिति से बचने के आग्रह को उत्तरआधुनिक एजेडे से मिलाए तो पाएगे कि बहुत समानता है। समानता की इस फेहरिस्त को बहुत लबा खींचा जा सकता है और किसी योग्य शोधार्थी को यह कार्य करना चाहिये।

यह प्रक्रिया हमारी कविता म पिछले दो दशकों से चल रही है जबकि उत्तरआधुनिकता की कुछ चर्चा अभी हाल में ही शुरू हुई है। इससे यह स्वत स्पष्ट है कि यह कोई वैचारिक प्रवृत्ति का अध्ययन करके उससे तैयार की गई कविता नहीं है। आधारभूत रूप से यह उस समाजशास्त्र म निकली है जो पिछले बरसा मे राष्ट्रीय और अतर्राष्ट्रीय स्तर पर बना है।

लेकिन इसे स्वीकार कोई नहीं करेगा यानि कि ज्यादातर। एक तो उत्तरआधुनिकता के नाम पर यह प्रचार है कि यह कुछ भदेस बाता का ही नाम है। मसलन विचारधारा का अत इतिहास का अत अथवा साहित्य का अत। यह सही नहीं है उत्तरआधुनिकता की छतरी तले एक प्रासगिक सामाजिक राजनैतिक सास्कृतिक ऐजडे को रखा जा सकता है रखा गया है चाहे उसके दार्शनिक आधार विवादास्पद हैं। दूसरे हमारे बहुत से कविजन अथवा आलोचकगण या तो मार्क्सवादी सगठना के सदस्य

हैं या मार्क्सवादी राजनीति के पक्षधर हैं। उनके लिए उत्तरआधुनिकता न केवल गैर मार्क्सवादी है बल्कि मार्क्सवाद विरोधी भी है। उनके लिए मार्क्सवाद एक स्थापित वस्तु है जिसमे विशष तब्दीली नहीं हो सकती है। वे स्वय चाहे कैसी भी कविता लिखे लेकिन परपरागत मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र पर पुनर्विचार की आवश्यकता महसूस नहीं करते। उनकी कविता अन्यान्य समावेशी हो सकती है पर विचारधारा नहीं। बहरहाल यह कितना भी सच क्यो न हो कि उत्तरआधुनिकता अथवा उसके एक हिस्से का मार्क्सवाद से सबध विवादास्पद है हम कविता की गवाहा को नहीं बदल सकते। हम यह स्वाकार करना होगा कि हमारे समय की अधिकतर प्रतिनिधि कविता का सौंदर्यबोध उनम वे कवि भी शामिल हैं जिनकी तारीफ करत हम नहीं अघात उत्तर आधुनिक एजड ने तैयार किया है। इस प्रकार हमारा कथनी और करनी मे अतर नजर आता है। इस शिजाफ्रनिया से मुक्ति स्वीकृति के साहस से ही हो सकता है। स्वाकृति क साहस क बिना रचना म मूल मार्क्सवादी एजडे मे भी नहीं लौटा जा सकेगा।

दरअसल हिंदी म हमने मार्क्सवादी सिद्धात चर्चा क नाम पर लकीर पीटने का ही कार्य किया है और उससे जरा सा इधर-उधर हाने पर दर-बदर होने का खतरा मडराने लगता है। कुछ लोगा क लिए मार्क्सवाद सनातन धर्म जैसा है जहा ज्यादा टे-पे करने पर नास्तिक करार दिए जाने का अदेशा है।

बहरहाल इस काव्यकाल के सामान्य विकास पर नजर डाल कर हम अपने निष्कर्ष प्राप्त करने हागे क्योंकि तथ्या से आखे मूदकर हम किसी का क्या अपना भला भी नहीं कर सकते। और ये निष्कर्ष हैं

1) काई कुछ भी कहे, गलत या सही पिछले दो दशका की कविता का रचनात्मक-स्व ससार की गति क साथ है।
2) हिंदी कविता मे आधुनिकता का ऐजेडा बुरी तरह शिथिल हुआ है तथा उसकी जगह उत्तर-आधुनिकता के एजेड क एक अश न ल ली है जा अपना तरह स सामाजिक न्याय और मानव मुक्ति की विवेचना करता है।
3) इस कविता का सौंदर्यशास्त्र कमोबेश इस नए ऐजेडे से गढा जा रहा है यद्यपि यह उतना स्पष्ट नहीं है।
4) हिंदी कवि का मार्क्सवाद-प्रेम प्राय भावनात्मक कारणा से है। सभवत वह उस द्वारा चुनी उत्तरआधुनिकता के दार्शनिक आधारो का तथा मार्क्सवाद के दार्शनिक आधारो का अतर नही करता या जानता।
5) हिंदी की रचनात्मक प्रतिभा प्राय समाजशास्त्रीयता का दास बनने मे दाक्षित की जाता है। इसलिए उसके पीछे या उसके साथ-साथ चलना ही उसे स्वाभाविक नजर आता है। कविता के पथ-प्रदर्शक नवीन उन्मेष की सभावना फिलहाल धूमिल है। हिंदी कविता का अगला सामान्य परिवर्तन एतिहासिक परिवर्तना क अनुसार हा होगा।

4

इतना कहना हालात को स्पष्ट करने के लिए था निणय करन क लिए नहीं। हमार चारा ओर ठोस ऐतिहासिक परिस्थितिया या वैचारिक परिवर्तनो के नाम पर जो कुछ घट रहा है उस पर कोई अतिम राय बनाने के लिए सूक्ष्म अवलाकन अध्ययन तथा गहन परिश्रम की आवश्यकता है। लेकिन यह काय अपना सार्थक सगति तक तय तक नहीं पहुचेगा जब तक हम अपने शिजोफ्रेनिया का सामना

नहीं करेगे जो अब ज्यादा से ज्यादा नजर आता है। इसस मुक्ति का रास्ता कठिन अवश्य है लकिन उतना बीहड नहीं जितना मुक्तिबोध के लिए यन गया था या बना दिया गया था। कठारता भी इतनी है कि आत्मस्वीकृति से हमारे यहुत से पाखड टूटते हैं तथा भ्रमा के यहुत से दुर्ग ढह जाते हैं। शिजोफ्रेनिया से मुक्ति एक सतत सघर्ष है लकिन यही सर्वाधिक मानवीय न्यायपूर्ण सार्थक आनदपूर्ण तथा वास्तविक उत्पादकतापूर्ण है। जिसका पीछे उल्लेख हुआ था वह मौलिकता भी इसी से आएगी।

5

यह सब आज की कविता के 'होने' का विश्लपण था उसकी गुणवत्ता का नहीं। गुणवत्ता का निर्णय ऐतिहासिक सगति स नहीं हा सकता उसस यह प्रभावित अवश्य हा जाता है। आखिर कोई कविता मारक कब बनती है? काफी कठिन प्रश्न है लेकिन 'साच को आच नहीं' की तरह सरल भी है। कविता म कला-रचना की कुछ स्थायी विशषताए है यद्यपि उनका आस्वाद सदा एक सा नहीं रहता। बहरहाल एक बडी कविता अवश्य ही यथार्थ स नियमित भर नहीं होती उसे खोजती और गढती भी है। वह पाखड से कोसा दूर होती है और सच्चे अर्थों म रचनात्मक होती है। वह मोहक हाती है और उसे पढने के लिए किसी अत्यत स्पष्ट वजह की आवश्यकता नहीं होती। उससे दास्ती हो जाती है। वह आप तक आती है। आप उस तक जात है। बार-बार। एक अच्छी कविता टूटे और गिरे का सहारा है। वह कल्पना की खिडकी खालता है और इस तरह मनुष्य को मनुष्य बनाती है। वह सपने को सम्मान देती है तथा वणिकवृत्ति को निरकुश होने स रोकती है। वह अजय होती ह चाहे अमर न हो। देखने म चाहे कैसे अनर्गल हो पर उसके भीतर एक सुसगत तर्क-पद्धति होती है जो उसके सृजनहार का अपना अविष्कार होता है। एक भोलापन सदा उसम रहता है और कई बार वह सचमुच बच्चे की तरह व्यवहार करती है। उसम कलाआ का मर्म हाता है और उसकी अपनी एक कला होती है जो किसी विद्यालय से नहीं वल्कि स्वय उसी क बीच से प्राप्त की जाती है। *अभिजात्य का बाना धर कर भी वह कभी अभिजात नहीं होती। उसका राजनैतिक आशय बहुत महत्त्वपूर्ण होता है लेकिन वह उसकी अतरतम सवेदना से तय होता है।* ***उसका एक युगीन सदर्भ भी होता है जो उसकी उपलब्धि का निर्धारण करने मे निर्णायक होता है।***

बहरहाल एक गुणवती कविता की और अवधारणाए भा हैं किन्तु यदि वहा निहित स्वार्थ कार्य नहीं कर रहे हो तो वे एक दूसरे की पूरक ही होती हैं। हम सबके समक्ष यह भली भाति स्पष्ट है। बहुत से लोग शायद यह कहना पसद करे कि अच्छी कविता क्या है यह बताने या व्याख्या की वस्तु नहीं है उसका पता खुद चल जाता है।

यदि इन दो दशका की कविता को इस परिप्रेक्ष्य म देख तो पाएगे कि हमारे सामने कुछ बहुत अच्छी और विलक्षण कविता आई है। आधुनिक हिंदी कविता क इतिहास म बहुत विशिष्ट। बहुत विवेकवान मौलिक तथा हृदय और दिमाग को चीर देने वाली मानवीय हाय के साथ। ऐसी कविता जिसने ताकत और धौंस के नवीनतम रूपा की आख म आख डाल कर बात की है। इस कविता म हमारे समय की युवा पीढी का भग्न ससार और फिर भी जीवित मनुष्य की तरह व्यवहार करने को दृढ इच्छा है। एक अनुचितनात्मक सामाजिक मनुष्य इस काव्य की उपलब्धि है। यद्यपि यह कविता भी कुल मिलाकर अपने समाजशास्त्र से नियमित है किंतु काफी समय क बाद यह हुआ है कि इसका कुछ हिस्सा उसके आर-पार जाने की काशिश करता है और कुछ तात्विक स्थितिया को पाने का उद्यम रचता है। इस कविता ने खडी बोली की सभावनाआ का सभवत सबसे बेहतर उपयाग किया

के अत मे कविता

है और उसके बीच से वर्तमान का वह बिब उभारने की कोशिश की है जो तीसरी दुनिया और उसके आदमी का खाटी बिब है। (देखना होगा कि आज यह पारिभाषिक तीसरी दुनिया कितना प्रासगिक है, बहरहाल!)। यह भी इस काव्यकाल की उपलब्धि है जिसकी पृष्ठभूमि मे निश्चित ही तीसरी दुनिया की उभरती स्व-चेतना कार्य करती रही है हालाकि मौजूदा परिस्थितियों ने इस स्व-चेतना के विकास को अवरूद्ध ही किया है।

किंतु यह सब मुख्यत इस काव्यकाल के पूर्वार्द्ध तक ही सीमित है। उत्तरार्द्ध तक आते-आते एक युवतर पीढी इस काव्यकाल मे शामिल होती है जिसका स्टारडम तो तनिक सफल नजर आता है लेकिन सुधी पाठको की नजर मे उसका जगह बनते बनते बिखरने लगती है। पूर्वार्द्ध से चल आने वाले कवि भी अपने जो कुछ भी ओज को उत्तरार्द्ध म विकसित करते नजर नहीं आते छिटपुट प्रसगो के सिवाए।

इस के बारे मे थोडी बहुत चर्चा भी होने लगी है तथा इसम कविता के स्थान पर काव्याभास की सफलता देखी जा रही है। इसम थोडी अतिरजना हो सकती है लेकिन जैसाकि एक वरिष्ठ कवि का निजी बातचीत मे कहना कि इसके कवि की गदन फसी हुइ नजर नहीं आता है तथा यह अपने सार मे सर्वानुमति की कविता है। इसको लेकर यह एक वास्तविक खतरा है कि यह जितनी तेजी से आई है उतनी तेजी से लौट न जाए। सभवत ज्यादा न्यायपूर्ण यह कहना होगा कि यह उस सास्कृतिक सकट की ही शिकार है जो आज चारा ओर तेजी से पसर रहा है। पर क्या यही उसकी चुनौती नहीं है? हर युग आगे बढते हुए नई कविता के लिए जगह खाली करता है और हिंदी जैसी विशाल भाषा म पयाप्त प्रतिभा है कि उस जगह को भरा जा सक लेकिन कवल इतना ही पयाप्त नहीं है। एक गहरा और निथरा हुआ अतर्द्वद्व या बाह्य-द्वद्व ही उसे वह स्पेस दे सकता है जहा वह सूर्य की तरह चमके। जिंदगी के निजी राग-विराग भी कविता का उर्वर और चिरतन क्षेत्र रहे है किंतु महत्वपूर्ण कविता से यह अपेक्षा की जाती है कि वह उसकी बीहडता का वहन करे। कविता का अत निश्चित रूप से नहीं होने जा रहा है लेकिन वह एक सक्रियता भर न रह जाए। यहीं पर समकालीन कविता और कवि मे गहर भीतरा आलोडन की आवश्यकता है जिससे समकालीनता को एक आधारभूत ढग से देखा जा सके।

कुछ समस्या उस मूर्त अमूर्त साहित्यिक नौकरशाही की भी है जिसका चरित्र भी काव्य-परिदृश्य क मूर्त रूप को बनाता है। जो काव्य-परिदृश्य आज बना है वह आवश्यक नहीं कि जो कविता लिखी जा रही है उसका वास्तविक प्रतिनिधित्व करता हो। कुछ बेहतर उदाहरणो को छोडकर हिंदी की अधिकतर साहित्यिक पत्रकारिता क कर्णधार तथा काव्य-चर्चा सुख पाने वाले आलोचक-वृद साहस और कल्पना विहीन हैं। जिस राख का ढेर वे दिन-रात खडा कर रहे हैं सभवत उसके नीचे कुछ अगार छिप हैं। अगर मुक्तिबोध के शब्दो मे कहे तो कविता की दुनिया को कुछ मेहतर चाहिए।

इतना कहना किसी की अवमानना करना नहीं है क्योंकि यह सच है कि चीज बेहद उलझावपूर्ण और कठिन होती जा रही हैं तथा प्रयास लक्ष्या का चोट नहीं कर रहे है। किंतु हम निश्चय ही उस सामाजिक-सास्कृतिक जडता पर विचार करना है जो स्थितिया को अनुपूरक बौद्धिक-भौतिक क्षमता को पैदा नहीं करती है तथा जो हमारे राष्ट्रीय परिदृश्य का विशेषकर हिंदी भाषा का एक आमफहम हिस्सा बनी हुई है।

6

इतना कह कर भी बहुत कुछ कहने को रह जाता है। इसलिए भी कि जो कहना है उसके ओर-छोर न जाने कहा-कहा फैले हैं। इसलिए भी कि काफी कहने के बाद भी कहने के लिए बहुत कुछ रह जाता है। आचार्य रामचद्र शुक्ल ने बताया था कि 'कविता क्या है' लेकिन एक सवाल जो यहा रखा जा सकता है और जो बिल्कुल भी मौलिक नहीं है कि कविता क्या? हालाकि इस सवाल का जवाब एक तरह से इस टिप्पणी के बीच म आया है पर वह निश्चित रूप से थोडा विशिष्ट है। एक कविता वर्कशाप की स्मृति आ रही है जहा एक स्कूली लडकी ने पूछा था य कवि लोग सरल चीजा को जटिल क्या बना देते है जबकि पहले ही बहुत टैंशन है। इसका जवाब एक समकालीन कवि सभवत यह देगा कि नही चीज जटिल हैं और वह भी उनको सरल बनाना चाहता है। पर उसम असफल रहता है। सभवत एक मामल म दाना सहमत हाग बहुत टशन है।' इस कथन म लडकी का टशन स परशानी झलक रही है जोकि स्वाभाविक है तथा कविता से भी परेशानी झलक रही है क्याकि उसकी नजर म यह सरलता का नष्ट करती है तथा टशन को बढाती है। इस तरह आधुनिक कविता के एक आधारभूत पहलू- उसके और टेशन के सबध- पर इस कथन से अनायास राशनी पड जाती है।

समकालीन कविता म टशन की कद्रीय उपस्थिति पर बहुत ज्यादा कहा जा सकता है। टशन वहा रहेगी इसस किसी को इकार भी नहीं हो सकता। किंतु एक उसे कविता की बनावट के कारण नहीं होना चाहिए दूसरे कविता म एक सात्वना रहनी चाहिए जो दरअसल स्वय कविता की अपनी खोज भी है। स्वय म यह एक अत्यत गभीर और सश्लिष्ट कार्य है और उसके सच्चे और सफल साधका को आज महती आवश्यकता है। यह सही है कि बहुत बार कविता अपने पाठक को बनी बनाई दुनिया मे तोड-फाड करना चाहती है दरअसल तोड फोड अब उसकी नियति म शामिल हा गई है किंतु तब इसकी नैतिक अनिवार्यता इतनी स्पष्ट हो और उसका क्रियान्वयन इतना तर्कसगत हो कि कोई पुण्यात्मा उस पर अगुली न उठा सके।

पाठकीयता की चिता के साथ पाठक की चिता को भी एक वास्तविकता प्रश्न की तरह देखना चाहिए और तमाम सरलीकरणो से बचते हुए उस पर बहस चलाई जानी चाहिए। एक स्तर पर पाठक और कवि एक ही नियति से बधे हैं तथा समकालीन नए दबावा को इकट्ठे वहन कर रहे हैं। इनकी नई प्रकृति के मद्देनजर सबकी यह जिम्मेदारी है कि पाठक और कविता के सबध को चर्चा को फिर से खोला जाए। कविता की अपरिहार्यता हमारे समक्ष स्पष्ट है सभवत उसकी पाठकीय अपरिहार्यताए धूमिल होती जा रही हैं जिन्ह इस तरह उभारा जाना चाहिये कि हमारे कथन विश्वास पैदा कर। क्या यह सच नहीं है कि इसी के बीच से कवि वह आत्मगौरव प्राप्त करेगे जो न केवल कविता के बल्कि सामाजिक न्याय और सस्कृति के भी काम आएगा? यहा यह स्वत स्पष्ट होना चाहिए कि इस कार्य मे लालचियो समझौतापरस्तो तथा कमजोर दिल वालो क लिए कोई जगह नहीं है।

7

और अत मे प्रार्थना। कृपया इस टिप्पणी को एक अधूरी टिप्पणी के रूप मे देखा जाए। इसके बाहर और भीतर बहुत कुछ ऐसा है जो अकथित है।

यह इस रूप म भी सही है कि इन पक्तिया क लेखक को लगता है कि चीजा को स्पष्ट करने म तमाम उन लोगो का शामिल होना चाहिए जिन पर उस स्पष्टता का प्राप्ति क असर पडने वाले हैं। इससे स्पष्टता की ईजारेदारी टूटेगी जिसने हमारे साहित्यिक समाज म सत्ता के कद्र बनाए ह तथा उसका अत्यत सूक्ष्म व्यावसायिक इस्तेमाल किया है।

चन्द्रगुप्त मौर्य

अब सुलह कर लो
उस पारदर्शी दुश्मन की सीमाहीनता से
जिसने तुम्हे
तुम्हारे ही गढ मे घेर लिया है

कहा तक लडोगे
ऐश्वर्य की उस धसती हुई
विवादास्पद ज़मीन के लिए
जो तुम्हारे पावो के नीचे से खिसक रही?

अपनी स्वायतता के अधिकारो को त्यागते ही
तुम्हारे शरीर पर जकडी जजारे
शिथिल पड जायेगी। तुम अनुभव कराग
एक अजाब-सा हल्कापन।
उस शक्ति-अधिग्रहण को स्वाकार करते ही
तुम्हे प्रदान किया जायगा
मैत्री का एक ढीला चोला-
एक कुशा-मुकुट-
सहारे के लिए एक काष्ठ-कोदड-
और तुम्हारे हा साम्राज्य म दूर कहीं
एक छोटा-सा किला
जिसके अन्दर ही अन्दर तुम
धीरे-धीरे इस ससार से विरक्त होते चले जाओगे

तुम्हारा पुर्नजन्म होगा सदिया बाद
किसी अनुश्रुति म, एक शिलालेख क रूप म
अबकी वर्तमान मे नहीं अतीत मे-
जहा तुम विदग्ध सम्राटा की सूचाँ म
स्वय को अकित पाओगे।

बटवारा

जब कोई अपना ही अपनो से कहता
कि वह गैर नही
एक सन्देह पक्का होने लगता
कि अब दोनो की खैर नहीं

अब वे साबित करेगे अपनत्व को
शब्द देगे ममत्व को
दुहाई देगे मनुष्यता की
कसमे खायेगे सभ्यता कीं

और ये सब बुरा तरह तिलमिलायगे
उनके चालाक पतरो के शिकजे मे
जेसे एक लोहूलुहान गारय्या
किसी मक्कार बिलौटे के पजे म।

जब भी एक कहता कि भावनाओ का रिश्ता
तिजारत से बडा हे
दूसरा जवाब दता कि हर रिश्ता
आर्थिक बुनियाद पर खडा है

जिस सुई की नोक बराबर जमीन के लिए
भाई-भाई लडे हैं
हम आज भा उसी रिश्ते का
जमीन पर खडे हैं।

वे सिद्व कर देगे कि महाभारत
कल का नहीं आज की बात है
मनुष्यता एक नहीं दो मे बटी
कौरवो और पाण्डवा की जात है।

जो बच रहा

पटना के निकट रल-दुर्घटना मे
मृतको की सूची मे देख कर अपना नाम
हरदयाल चौंक पडे - "अरे,
मैं तो अभी जिन्दा हू!"

(फिर कौन था वह दूसरा जो मारा गया?
क्या कोई और भी हो सकता है
मुझ जैसा ही?)

विस्फोट असफल रहा।
वे जिन्हे नहीं जीतना चाहिये था
हार गए अपने आप।

किले से उठता धुआ

लगता है कोई भीषण दुर्व्यवस्था
हमारी रक्षा कर रही।

जो बच रहा उसने सोचा-
एक मौका है
अब लौटना चाहिये
मनुष्य होने का पूरा तात्पर्य
सगठित हो सकता है
एक कुटुम्ब के आसपास
निर्वाचित हो सकता है बहुमत से
पृथ्वी पर उसका प्रतिनिधित्व।

रसोई से उठता धुआ
आश्चर्य बिना सुरक्षा-बलो के भी
सुरक्षित थी गृहस्थी पत्नी बेचारी
ईमानदारी की तरह खुश थी

नहीं-बराबर-जगह मे भी
साइकिल से स्कूल गया बच्चा
सकुशल लौट आया था
एक खूख्वार ट्रैफिक के जबडो से बच कर

पत्नी से बोले हरदयाल
''शायद मैं स्वप्न देख रहा था।
सुनो, अब हमारी खैर नहा
एक उत्तेजित भीड न हम
खुशी से गले मिलते देख लिया है
हम चारों तरफ से घिर गए हैं
कल खबर छपेगी कि हम
किसी मुठभेड मे
या भेडियाधसान मे मारे गए ।''

''नहीं ऐसा नहीं होगा '' उसने सरलता से कहा
''तुम डर गए हो
वे हमारे पडोसा हैं।
उनकी आखे हमारी खुशी से नम हैं
उन्हे अपने विश्वास का चेहरा दो-
वे भीड नहीं हम हैं।''

अशोक वाजपेयी

अगर वक्त मिला होता

अगर वक्त मिला होता
तो मैं दुनिया को कुछ बदलने की कोशिश करता।
आपकी दुनिया को नहीं,
अपनी दुनिया को
जिसको सम्हालने-समझने
और बिखरने से बचाने में ही वक्त बीत गया।

वैसे वक्त का टोटा नहीं था
-कुल मिलाकर ठीक-ठाक ही मिल गया
पर पता नहीं क्यों पूरा नहीं पड़ा।
अनन्त पर ध्यान एकाग्र रहा
कि शायद इतिहास पर नजर डालना भूल गया।

उस वक्त में प्रेम किया भोजन का जुगाड़ किया
छप्पर नहीं छुआ लेकिन लोगों के मन-माथ की गरमाहट ने सहारा दिया
कविताएँ लिखीं, कुछ दूसरों की मदद की-
कुछ बेवजह जिद में ऐंठा
नौकरी की और शिखर पर पहुँचने में सफल नहीं हुआ
इन्द्रियों के लिए [illegible]
पर न बहुत कुछ दे सका न पा सका।

गैब मे गुम होते रहे–
मुझे कोई भ्रम नहीं है
कि मेर बदले
दुनिया जरा भी बदल सकती है।
पर अगर वक्त मिलता
तो एक छोटी सी कोशिश की जा सकती थी,
हारी होड सही
लगायी जा सकती थी।

दुनिया यो बडी मेहनत-मशक्कत से
बदलती होगी
फौज-फॉटे और औजारो-बाजारो से,
लेकिन शब्दो का एक छोटा सा लुहार
और नहीं तो
अपनी आत्मा की भट्टी मे तपते हुए
इस दुनिया के लिए
एक नये किस्म का चका ढालन की
जुर्रत कर ही सकता था–

अगर वक्त मिला होता
तो दुनिया की हरदम डगमगाती सी गाडी मे
एक बेहतर चका लगाकर उसका सफर आरामदेह बनाने की,
उसे थोडा सा बदलने की गुस्ताखी तो की ही जा सकती थी।

दुनिया का मतलब

कभी-कभार
मैं दुनिया का मतलब समझने की कोशिश करता हूँ
पहली मुश्किल तो यह आती हैं कि दुनिया कहे किसे?
जो भी हमसे बाहर है
परिवार पुरा-पडोस शहर और देश

पेड़-पौधे-चिड़िया और कीड़े,
पतंगे, किताब और बच्चे
आवाज़ और रंग और लय
प्रेम, रेलगाड़ी और ऊँची छलांग
अगर यह सब हमसे मिलकर दुनिया बनाते हैं तो
इसका एक मतलब निकालना असम्भव है।
कीड़े और किताबों को एक मतलब में कैसे गूंथा जा सकता है?

दूसरी मुश्किल यह कि
न सिर्फ यह दुनिया इतनी सारी है
यह कई दुनिया हैं
एक के भीतर एक
दूसरी के भीतर तीसरी
तीसरी के अन्दर चौथी वगैरह।
एक दुनिया का मतलब निकालने बैठो तो
दूसरी दुनिया हावी होने लग जाती है।

तीसरी यह कि
यह कहां लिखा है कि दुनिया का मतलब है या होना हो?
बेमतलब का खेल भी तो हो सकती है दुनिया।
कौन कह सकता है कि दुनिया का मतलब निकालने की कोशिश करना
अपनी दुनिया बनाने जैसा नहीं है
अपना अपना मतलब निकालते हैं और
उसके निकालने में ही अपनी दुनिया गढ़ते हैं।

अभी उस शाम किसी ने पूछा
बीसवीं सदी के अन्त पर कैसी होगी दुनिया?
खून और कीचड मे सनी
फिर भी अपना हाथ ऊपर उठाये
कुछ थकी सी फिर भी बिना रुके चलती हुई,
समय को एक लबादे की तरह
अपने पर लपेटे,
जो एक बच्चे की चकित आँखो की तरह चमक रही है
अतरिक्ष को किसी खिडकी से देखो तो एक पतग की तरह थरथराती हुई–
नक्षत्रो के बियाबान मे एक हरी पत्ती की तरह काँपती हुई–
शब्द की नोक पर खतरनाक सी ठहरा हुई–
जो है
क्या वही है दुनिया
जिसका मतलब ढूढे नहीं मिल रहा है।

दुनिया कुछ ठीक सी

अब एक दिन क्या
थोडा सा समय भी नहीं होता
जब दुनिया कुछ ठीक सी लगे।
सुबह उठो तो हरियाली मे चहकती चिडिया
और हलकी ठण्डी हवा मे काँपती पत्तियाँ
सुन्दर तो लगती हैं
पर यह यकान नहीं दिला पातीं
कि सब ठीक चल रहा है।
कहने को यह उनका काम भी नहीं है।

सुबह-सुबह रेडियो पर आती है भजनावली
या कि गुजरी ताडी या अहार भैरव की सुरलहरियाँ
और नहीं तो कुक्कुट बिलावल
पर भरोसा नहीं होता कि
इतनी देर के लिए सही

दुनिया विन्यस्त हो गयी
अपनी धुरी पर आ गयी।

हर समय चलती रहती है दुनिया मे
गालियाँ दुश्मनो पर नहीं तो पडोसो पर
चुराते रहते हैं बच्चे गोदामो से नहीं तो
घूरो से जूठी रोटियाँ
और बिसूरता है एक अधेड कवि
अपने शब्दो के लगातार अनर्थ पर।
धरती के जिस भी हिस्से मे रात हो
सोते हैं कई बिना उजाले सपनो और लिहाफ के
जिस भी हिस्से मे दिन हो
भागते हैं कई बेकुसूर हथकडी, फाके और साहूकारो से।
बाजार मे हर चीज चमक-दमक के साथ मिल रही है।
लालच का पारा एकदम ऊँचा चढा हुआ है।
अण्टी मे न पूरा पैसा है न टिकाऊ धीरज।
समय बेतहाशा खर्च हो रहा है
ज़िन्दगी कम पड रही है।

लोगो के पास शब्द कम हो रहे हैं
जिनसे फूलो या सब्जियो के नाम ले सके,
अपने दुख और तकलीफ को नाम दे सके।
सिर्फ दुख कहने से दुख का ठीक पता नहीं चल पाता।
शब्दो के बिना
आँखो मे सूख गये आँसू की तरह
तकलीफ सूख जाती है
बाहर नहीं निकल पाती।

सुख के लिए तो छोडो
दुनिया अब दुख के लिए भी ठीक नहीं रह गयी है।
कइयो के पास अब ऐसा दुख है
जो न दुनिया मे समाता है न किसी मसीहा के रामझरोखे मे
न किसी दूकान के रगीन लिफाफे मे
न शब्दो के किसी रूपाकार मे।

शायद दुनिया लिखती है
अपनी असख्य चीजों, हरकतो, धडकनों और मौन से
शब्दो, दुखो, चिडियों, प्रार्थनाओं और अँधेरो से
कभी न खत्म होनेवाली एक कविता,
सदियो कल्पान्तो तक चलनेवाला एक रोजनामचा,
एक अथक उपन्यास,
जिसमे सब दर्ज है
हमारा सुख-दुख, तकलीफ और सपने-
हम ही ठीकठाकपन के चक्कर मे
उसे पढने की हिकमत नहीं जानते
हिम्मत नहीं कर पाते।
दुनिया से पूछो तो पलटकर वह कह सकती है
कि ठीकठाक क्या होता है
दुनिया धडल्ले से चल रही है
कठिन, सुन्दर और अन्तहीन
शब्दातीत सुख-दुख से, हमसे भी अतीत।

कोई कबीर नहीं

कभी-कभी हारा-थका मैं
अपनी मैली-कुचैली चादर के बारे मे सोचता हूँ।
याद नहीं आता कि यह चादर कब-कहाँ मिली थी
-अगर पुरखों ने दी थी तो बिलकुल सफेद तो शुरू से नहीं थी।
मैंने हरचन्द कोशिश की
कि उसे साफ रख सकूँ
पर बेदाग न थी, न रह पायी।
शरीर पर लपेटो
ऊपर तानो
खूँटी पर टाँग दो
या कहीं जतन से रख दो
तो दाग या धब्बा लग ही जाता है।

गुड की तरफ आनेवाली चींटियों की तरह
पता नहीं कहाँ-कहाँ से
दाग चादर की ओर खिचते से हैं।

फिर, साफ-सुथरी नहीं रही जिन्दगी
प्रेम और ईर्ष्या ने,
लालच और चाहत ने
औरो की बेहतर जिन्दगी से पैदा जलन ने
शब्द से बार-बार हार खाने की किस्मत ने
जिन्दगी को इतना और इतनी बार मैला किया है
कि बिचारी इस चादर की क्या बिसात
कि वह साफ-सफेद रह पाती।

झीनी हो गयी है चादर
ताने-बाने कुछ छितराने से लगे हैं,
पास-पडोस मे कोई कबीर नजर नहीं आता
जिस यह चादर दे आऊँ कि
वक्त मिले तो इसे रफू कर दे
या किसी भरोसेमन्द साबुन से धोकर
कुछ तो उजला कर दे।

धुँधली तसवीर

माँ की तसवीर
जो बैठकखाने मे रखे रैक मे रखा है
धुँधली होती जाती है–
अभी शाम का एक क्रोएशियन कवि
एक वरिष्ठ कवयित्री की तसवीर देखकर कह रहा था–
जिन्दगी कैसे हमे नष्ट करती है।
माँ को मरे अब बीस बरस होने आये
और कई बार सोचता हूँ तो लगता है कि
अब मुझमे ऐसा बचा ही क्या है जो उनका बटा कहाऊँ।

माँ ने अपने लाड से मुझे थोडा-बहुत बिगाडा भले हो
लेकिन बरबाद तो नहीं किया।
उसकी तसवीर धुँधली होती जाती है रैक पर
पर क्या मेरी शिराओ के बहते रक्त मे
मेरे विलम्बित सपनो मे
किसी का बुरा सोचने की मेरी झिझक मे
वही मातृछबि नहीं दमकती।

विफलता के बेराहत ओसारे मे बैठा मैं जानता हूँ
मैंने शायद तहत-नहस कर दिया अपने जीने के आशय को
हाशिये पर बैठा हुआ
उदास मन देखता हूँ
एक चकाचौंध दृश्य का
जिसमे मेरे लिए कोई जगह नहीं।
हार नहीं मानता हूँ
हालाँकि मैं जानता हूँ कि अन्तत मेरा जीत नहीं हो सकती।
कभी-कभी मुझे लगता है कि मुझमे बाकी है
हारकर भी अपनी लडाई जारी रखने का जिद
जो मेरी माँ की आदत थी।

अपनी अधेड आँखो से मैं देख पाता हूँ
अपनी धुँधलाती तसवीर से परे
माँ की अजेयता
जो अगर उसे बतायी जाती तो
वह बेहद हैरान होती।

धुँधली होती है तसवीर-
एक जिद एक आदत की तरह कडियल
माँ है
तसवीर से बाहर
तसवीर से परे
बची हुई
मुझमे।

घर की ऐतिहासिक याद

जब हम घर बनाते हैं
तब आकाश को गुफा मे बदल रह होते हैं
उतनी जमीन पर जगल या खेती को कम कर रहे होते हैं
हमारा स्वभाव एकदम उस घर जैसा होता जाता है
जिसमे जगल और जानवर और गुफाए शामिल रही हो

वीराने मे जड जमाये किसी खडहर म
जैसे कोई वनस्पति खिलने-खिलने को हो
हर नये मे एक खडहर होता है पहली बार टूटे दात सा
टूटे दात सा दिखता घर नये दात सा दिखने लग सकता है

हर चीज का जैसे एक आकार होता है
वैसे ही एक निराकार भी
जिसका होना दिखते ही न होना भी कौंध जाता है

जगल न होता तो स्थतिया इतनी जानी पहचानी न होतीं
जगल ने शुरू मे ज्ञान की तरह भय दिया
अज्ञान की तरह भोजन
फिर उसी भोजन ने उस भय को बढाया जिसे ज्ञान कहते हैं

जगल ने सन्नाटे ओर खामोशी को
एक से एक गध और एक से एक आवाज दी
भय और भोजन दोनो के लिए गुफाए दीं
उन सबका स्वभाव लेकर हम चले आये हैं

हर बार के प्रलय मे जो हवाए
चट्टानो के नीचे दबीं उनका बोझ उठाये बची रह सकती हैं
वे हवाए ही बनतीं हैं गुफाए

शुरूआत के बाहर भी हम घर की तलाश म थ
घर के भीतर भी हम घर की तलाश मे हैं
जगल और जानवर हमारे सस्कार मे भरे पडे हैं

गुफाए हमारा पीछा कर रहा हैं
अब वे ढूढनी नहीं हातीं बनानी हाती हैं
गुफाए किराये पर भी मिल जाती हैं
बनी बनायी बेची भी जाता हैं

जबकि दूर-दूर तक कहीं जगल नहीं है
अजब भीड भडक्के हैं और कुछ भी नजर नहीं आता
कुछ पालतू जानवर सडको पर ट्रैफिक राके खडे हैं
डर का उतना पुराना स्वभाव इतना नया बनकर मौजूद है

न जगल ढूढने कहीं जाना है न इतिहास ढूढने
गुफाए ढूढने भी
अब पहाडो ढूहो ओर नदा किनारो में जाने की ज़रूरत नहीं
जब हम घर बना रहे होते हैं
तब जमीन आर आकाश को गुफा म ही बदल रहे हात हैं

मकान बनात हैं जैस एक मूर्ति बनाते हैं
जगल की, जानवरो की और गुफाओ की एक मिली जुली मूर्ति
निर्गुण और निराकार के विरुद्ध हम घर बनाते हैं
मदिर मस्जिद और गिरजे बनाते हैं
हम शैलियो को भी मजहबी बना देते हैं

घर जमीन पर बनाते हैं। तोड-फोड आकाश की करते हैं
घर का मूर्त हाना ईंटगारे का इबादत म बदल जाना है
आकाश को अपने लिये ढाल लेते है
ओर देखते रहते है गुफा का मकान मे ढल जाना
घर का गुफा मे बदल जाना
स्वभाव के हिंस्र पशु इसी में रहते हैं

निरीह आकाश कोहराम से भर उठता है

आकाश की धातु लोहे की छडो और ईंटो की हो जाती है
निढाल आसमान हमारी तरह फसकर साथ रहने चला आता
सूनेपन को मिटाकर कभी सूनेपन को बढाकर
शून्य भी घर मे बदल जाता है

घर मे आकाश की धातु सास लेती है
गहरी नींद मे आकाश की धातु पिघलने लगती है
घर मे समायी गुफा और गुफा मे समाये घर के कारण
आकाश की भी छीछालेदर होती रहती है

आकाश म गढी गया एक मूर्ति जो जमीन म पाव गडा कर खडी है
घर की शैली मे ढली
(जैसे शख के भीतर का आकाश शख की शैली म)
हमेशा हमारा रास्ता देखती रहती है

उन्हे दूर तक देखती रहती है घर की आखे
जो कभी लौटकर नहीं आते
अपने हृदयाकाश मे घर बहुत सारी चीज छिपाय हुए रहता है

जगल और जानवरो से भरी गुफाए घर मे रह रही हैं
कहीं न कहीं रहते हुये भी दिल घर पर ही रहता है
घर की याद भी एक अच्छी खासी बुतपरस्ती है।

मुख्य चिता

जो भी नया था वह पुराना क्यो हो जाता है
जो पुराना है वह नया क्यो होना चाहता है
नये मे ज्यादा सुख और पुराने मे क्या ज्यादा दुख है?

पुराने मे भी कोन पुराना सबसे ज्यादा पुराना है
नये मे भी कौन नया सबसे ज्यादा नया है
जो गल गया है वह नश्वर था पुराना नहीं
पुराना लाखा साल नये को जीवन दे सकता है

उथल पुथल भरा सूर्य सबसे पुराना है
पर रोज वर्तमान मे शामिल हो जाता है
और उस का भरोसा भविष्य बन जाता है

इसलिए ज्यादा नया वह जो सबसे ज्यादा पुराना हो
और तब भी आगे-आगे और-और होने को हो
जैस कल सुबह का सूरज बनाम कल का दिन
सूरज के भरोसे हर हल के लिये कल का भी इतजार है

कल एक ससार होगा पुरानी पृथ्वी पर नया-नया फूटता हुआ
नयी उथल पुथल भरा पुराना सूर्य भी उसके साथ होगा
पुराने सूरज के कारण ही नयी सुबहे पैदा होगी पुरानी पृथ्वा पर

पुरानी पृथ्वी पर सबसे ज्यादा पुराने समय से कोई रहता है
तो वह समुद्र है
पृथ्वी पर पुराने समय से कोई जल रहा हे तो वह अग्नि है
पर समुद्र में भी सबस ज्यादा पुरानी कोई है तो वह है पृथ्वी
जो किनारो पर भा सबसे ज्यादा पुरानी है
अग्नि वायु और जल उसके समकालीन हे

हर ऋतु मे सबसे ज्यादा नयी कोई लगती है तो पृथ्वी
एक पत्ता एक फूल एक फल एक अन्न की बाली
बासी झोका ताजा झोका सब कुछ पृथ्वी है
इस आग मे जिसने खुद को झोका है वह सबसे पुराना पृथ्वी
सबसे ज्यादा नया हो जाता है
वह नया पानी बना सकती है
नयी वनस्पति के साथ पुरानी को भी नये कल्ले दे सकती है
अग्नि बार-बार एक फूल एक फल बन जाता है

हर पुरानी चीज सूरज और पृथ्वी और समुद्र जेसी है
हर नया चीज सूरज और पृथ्वी आर समुद्र जसा है
हर नयी चीज अपने दार्घकालीन समकालीनो के पुण्य से प्रज्वलित है

अगर कुछ हो और होने के बाद भी होता रहता हो

और होते रहने के बाद भी कल फिर और कुछ होने का हो
दिखते-दिखते फिर से कुछ और दिखाई देने को हो
जो पुराने पड चुके सिरे पर नये सिरे से दिख पडता हो
वह ही नया होता है
सूर्य जैसे प्रचड पुराने का तरह हर नये को रोज नया होना होता है

न हम उद्वेलित सूर्य हैं न अग्निगर्भा पृथ्वी जैसे धूसर
दोनो के बीच हमे खुद पैदा करनी पडती हैं अपनी घटनाए
खुद झलना पडता है अपना बासीपन और अपना सारा उद्वेलन

जो रोज-रोज नये-नये ढग से बासी होता जाता है
तो वह शराब हो जाता है या जहरीली गैस
कभी-कभी इस तरह का पुराना होना काफी महगा और मारक होता है

जब अघटित घटित होने को होता है तब साचा टूटता हे
टूटने वाला टूटकर नया होता है
बनाने वाला पुराना पड जाता है साचे की तरह

कभी-कभी वह भी नया होता है जो सबसे बाद मे आता है
कभी-कभी देर से आया हुआ भी नया होता है
अक्सर यह सोचना होता ह
कि हम कितने और कैसे नये हैं
हमने कितना पुरानापन देखा है
क्योंकि एकदम नया काफी कोरा होता है

न हमारा होना सूर्य की तरह है
न हमारा होना पृथ्वी की तरह
अस्थिरता मे चकरघिन्नी बन जाना ही
सूर्य और पृथ्वी के मुकाबले हमारा घटना बन जाना है

यहा अच्छ पुराना का और पुरान पडते अच्छे नयो का
रोज नये होने की नया-नयी चिन्ताए हैं
सूर्य और पृथ्वा से भी ज्यादा व्याकुल है मनुष्य
नया होना उसकी आदत नहीं उसकी मुख्य चिन्ता हे

किसके मुकाबले कितना और कैसे नया होना है हमे?

एक रात की जिन्दगी

एक रात की जिन्दगी भी चार दिन की जिन्दगी से कम नहीं
आधी दुनिया मे भूख, आधी दुनिया मे नींद बाट देती है
गोलार्ध पर गुफा मे आदिम घर सी छायी हुई लबी रात

जिसकी तारो जडी पारदर्शी छत पर
समुद्रो जैसी गहराई और पहाडो जैसी ऊँचाई मे
कई आधे-पूरे चाँद खिले हैं एक रात में कई तरह से

एक रात पहाडो से उतरती है और समुद्र तैर जाती है
एक रात तारो से उतरती है और ओस बन जाती है
एक रात आकाश से उतरी है और पाताल म समा जाती ह
रात मे समय की एक ताराख आती है और दिन भर नहीं बीतती

एक रात आखो से उतरती है मन मे
एक रात भीतर से बाहर फैल जाती है
दिन के उजाले मे भी अपना सफर तय करती है
कई तरह से आती है जो बीतती नहीं है रातो मे फैली हुई एक रात

हर रात समान नहीं होती
पर कोमल और समतल रात सबको समान देखती है अपनी अदृश्यता मे
रात के अपारदर्शी शरीर पर पडे पारदर्शी ओढने से
लाखो सितारो से टपकती है एक-एक बूद ओस
जो टकराकर वापस जाते दूर के मुसाफिर उजालो से झिलमिलाती हैं

रात की नाभि से सटी भूरे ग की एक अदृश्य चिडिया
नीले रग की आभा म डुबकी लगाती उड जाती है
नारगी उडान छोडती हुई

घनी-तनी रात मे भी अधमरे हरे से पीले सकेत आते हैं
रात का भा रग जावित रहते हैं
वह अपने रग मे दूसरे रगो को भी जीवित रहने देती है
यथास्थान गतिमय और जागे हुए

कीडो के बीच कीडो के क्या-क्या नाम हैं पता नहीं
पर कुछ रात के कीडे दिन खा जाते हैं रात भर मे
निकल पडते हैं नीले, पीले और काले मे भी काले
सफेद धारियो वाले पाँच तरह के भूरे और तीन तरह के लाल कीड़
उनका अरुणाभ सरदार आधीरात को सूर्य जैसा उदित होता है
पूर्णाभ रात के ढेर मे अपनी उद्विग्नता के साथ
जिसके सम्मान मे
रात एक काई लगे सावले आडबरहीन स्तूप म बदल जाती है

पृथ्वी को अपने होने से पहले राते नसीब नहीं थीं
पृथ्वी होती ही रात के लिए है
इस तरह रात कई तरह से आती-जाती है पृथ्वी पर
कभी चाँदनी मे खिले हुए गेदे की तरह
कभी खेतो मे फैले हुए यूरिया की तरह
कभी गाबर क ढेर की तरह आकाश को छूकर
उसे भी उर्वर बना देता हुई

दिन के पहले सिरे पर देखो तो रात है दूसरे पर भी रात
दो रातो के बीच एक दिन फल की तरह पक रहा है
दो रातो के बीच एक दिन पराग की तरह उड जाता है
दिन मे भी रात का परछाईं हमारे साथ रहती हे
खिले हुए हरे पत्तो के बाच रात छिपी हुई है
दिन भर पीछा करती है तारो भरी अधेरी रात

हर दिन की जिन्दगी मे रात सपुट की तरह है
चार दिन की जिन्दगी मे कमाल कर देती हैं पाँच राते।

कीडा प्रसग

एक मामूली कीडा
इतिहास म एक पूर पड को खा रहा है
दृश्य मे वह लगातार अदृश्य बना रहा है।

अप्रत्यक्ष मे धीरे-धीरे प्रत्यक्ष की तरह
एक केचुवा जमीन से बाहर आया
उसके सरकने से कोई सा दृश्य
किसी और सा दिखने लगा

एक और कीडा कुलबुलाता हुआ आया
और अपनी चमक छोडता हुआ
दृश्य बदलकर चला गया
भूगोल मे कोई दृश्य पहले जैसा नहीं रह गया है
हर दृश्य के अपने कीडे हैं
कीडे अपना काम करते हैं चित्रकला की सहायता नहीं

कीडो का चलना-फिरना कुछ करते रहना ही
उनका काम नहीं है
अक्सर लबा आराम भी उनका एक काम है
आराम मे भी उनका काम जीवित रहता है

पर किसी दिन किसी रात किसी क्षण मे वे
मरने का भी काम करते हैं
एक कीडा होने की दिव्य मौत मरते हुए

अपनी छोटी-छोटी लबाईयो मे
वे काफी लबे समय से सक्रिय थे
उनमे एक कीडा विशेष ध्यान खींचता है
जिसने एक पूरे पेड की ऊचाई ढहा दी
एक पूरे पलग को जमीन पर ला दिया
वसत को ढूँठ मे बदल दिया
आराम की नींद को हराम कर दिया
बिना इस बात पर विचार किये कि उसने क्या किया
क्यो किया किसके लिए वगैरह
अपने बनाये हुए दृश्यो के बीच वह मर जाता है
मरे हुए का दृश्य भी कुछ दिन बना रहता है
बिना जाने कि मर कर भी वह कुछ कर गया है।

चद्रकात देवताले

मैं मरने से नहीं डरता

मैं मरने से न तो डरता हूँ
न बेवजह मरने की चाहत सजोए रखता हूँ
एक जासूस अपनी तहकीकात बखूबी करे
यही उसकी नियामत है

किराए की दुनिया और उधार के समय की
केंची से आजाद हूँ पूरी तरह
मुग्ध नहीं करना चाहता किसी को
मेरे आडे नहीं आ सकती सस्ती ओर सतही मुस्कराहटे

मैं वेश्याओ की इज्जत कर सकता हूँ
पर सम्मानिता की वेश्याओ जैसी हरकत देख
भडक उठता हूँ पिकासो के साण्ड की तरह
मैं बीस बार विस्थापित हुआ हूँ
और जख्मो की भाषा और उनके गूगेपन को
अच्छी तरह समझता हूँ
उन फीतो को मैं कूडेदान मे फेक चुका हूँ
जिनसे भद्र लोग जिन्दगी और कविता की नापजोख करते हैं

मेरी किस्मत मे यही अच्छा रहा
कि आग और गुस्से ने मेरा साथ कभी नहीं छोडा
और मैंने उन लोगो पर कभी यकीन नही किया
जो घृणित युद्ध मे शामिल हैं
और सुभाषितो से रौंद रहे हैं
अजन्मी ओर नन्ही खुशियो को

मेरी यही कोशिश रही
पत्थरो की तरह हवा मे टकराए मेरे शब्द
और बीमार की डूबती नब्ज को थामकर
ताजा पत्तिया की सास बन जाए

मैं अच्छी तरह जानता हूँ
तीन बाँस चार आदमी और मुट्ठी भर आग
बहुत होगी अंतिम अभिषेक के लिए
इसीलिए न तो मैं मरने से डरता हूँ
न बेवजह शहीद होने का सपना देखता हूँ

ऐसे जिन्दा रहने से नफरत है मुझे
जिसमे हर कोई आए और मुझे अच्छा कहे
मैं हर किसी की तारीफ करते भटकता रहूँ
मेरे दुश्मन न हो
और इसे मैं अपने हक में बडी बात मानूँ

14 अगस्त 96

पुराने उम्रदराज दरख्तो से छिटकती छाले
कब्र पर उगी ताजा घास पर गिरती हैं
अतात चौकडी भरते घायल हिरण की तरह
मुझमे से होते भविष्य मे छलाँग लगाता है

मैं उजाड म एक सग्रहालय हूँ
हिरण की खाल और एक शाहा बाघ को
चमका रही है उतरती हुई धूप

पुरानी तस्वीरे मुझ पर तोप की तरह तनी हैं
भूख की छायाआ और चाखा के टुकडा का दबोचकर
नरभक्षी शेर की तरह सजाधजा बैठा है जीवित इतिहास

कल सुबह झण्डा फहराने के बाद
जो कुछ भी कहा जाएगा
उसे बरदाश्त करने की ताकत मिले सबको
मैं शायद कुछ ऐसा ही बुदबुदा रहा हूँ।

विष्णु खरे

अपने आप और बेकार

1982 की किसी शाम
गए होगे रघुवीर सहाय अपने शुभाकाक्षी सरक्षक वात्स्यायन के यहाँ
जब उन्हे बता यह दिया गया था उनकी अवनति होगी

दक्षिण दिल्ली क साकेत का उनका इलाका प्रैस एन्क्लव कोई दरिद्र जगह नहीं
लेकिन चाणक्यपुरी का पटेल मार्ग एक ज्यादा चौडी सडक है
और अग्रेजी मे लेन कहलाने के बावजूद केवेटर्स कोई पतली गली नहीं है

रईसो और राजनयिको के इस इलाके को मैं जानता हूँ
लेकिन उसकी महँगी कोठियो म इस जिदगी म तो रह पाने की सभावना नहीं
वात्स्यायन के निवास मे कभी नहीं गया
लेकिन उसके कृतकृत्य गद्‌गद् वर्णन सुने जाते हैं
कहते हे उस पर अब करोडो की कोई पारिवारिक कशमकश चलती है

कैसे पहुँचे होग रघुवीर सहाय
वहाँ जहाँ बेमौसम भी मोर और कोयल बोलते हैं
क्या शायद अपनी उसी अजीब पुरानी गाडी से जिसे वे अप्रत्याशित कौशल से चलाते थे
कहाँ पार्क किया होगा उसे कैसे दाखिल हुए होगे
यह शायद अवातर प्रश्न है

क्या अपनी किसी मार्मिक कविता की शैली मे कहा होगा
रघुवीर सहाय ने
कि मुझे दिनमान मे अपमानित किया जा रहा है
मुझे डिमोट करके नवभारत टाइम्स मे भेज रहे हैं
या फिर अपने किसी निबध या कहानी के रूप मे
वात्स्यायन तो उन सबसे सुपरिचित थे ही

लेकिन यह जरूर साफ कहा उन्होने
कि आप बोलिए आप कुछ कहिए उनसे कि यह क्या बदतमीजी है
मैं काम करने को तैयार हूँ
नौकरी की जो शर्ते हैं उन्हे मानता हूँ
लेकिन आप कहिए उनसे कि इस अपमान का मतलब क्या है

कुछ समय पहले स्वय बेनेट कोलमैन से निकाले गए वात्स्यायन
किससे क्या कह सकते थ यह पता नहीं चलता है
लेकिन रघुवीर सहाय सब जानते हुए भी उनके पास गए
इससे लगता है कि शायद वात्स्यायन तब भी मालिक परिवार मे
जिसकी कोठी वाकिंग डिस्टैंस पर ही थी
किसी शक्तिमान से कुछ कहने की कूवत रखते थे

चुप रहे लेकिन वात्स्यायन अपने सुरुचिपूर्ण बताए गए कक्ष मे
किस कोने किस कलावस्तु को निहारते हुए यह पता नहीं
जिन प्रश्नो के उत्तर उनके पास नहीं होते थे या वे देना नहीं चाहते थे
उन्हे निपटाने की उनकी यही शैली बताई गई है

अलग-अलग ढग से कहा शिल्प कुशल रघुवीर सहाय ने
देखिए मेरे साथ अन्याय हो रहा है
दुर्व्यवहार हो रहा है मेरे साथ
किंतु मौन रहे वात्स्यायन लाचारी अपराध बोध या खीझ मे मालूम नहीं

जब उदास रघुवीर सहाय अत मे अकेले चले होगे
और सब से भरी सडक पर मौन निहत्थे पहुँचे
तो क्या उन्हे याद आए होगे 1949-51 के वे दिन
और उसके बाद का वह लम्बा साथ तब तक का
क्या सोचते हुए उन्होने डाली होगी चाबी इग्निशन मे
और गाडी क्या स्टार्ट भी हुई होगी
या रोका उन्होने कोई स्कूटर रिक्शा

क्या इसमे रघुवीर सहाय ने कोई पहचाना हुआ सबक देखा होगा
कैसे नहीं हुए उनके वात्स्यायन से सम्बध यह तो साफ है

के अत मे कविता

लेकिन क्या उन्होने यह दुबारा नहीं सोचा होगा
कि उन जसे आदमा का जिंदगी मे कभी न कभी ऐसा वक्त आता है
जब कोई भी मदद नहीं दता कहीं कोई उम्मीद नजर नहीं आती
जिनके हाथ मे सत्ता ह ताकत है वे एक दिन अपमानित कर ही देते हें आदमी को
और जिनके हाथ मे उप-सत्ता एवजी ताकत थी वे रह जाते है चुप

अचानक पहचाना होगा फिर स रघुवार सहाय ने अपनी ही कविता
इस समाज म अपने मानव हाने का अर्थ और एक ओर अर्थ
और वह दर्पहीन लडने की एक अलग तरह की उदास करुणा बन कर आया होगा उनमे
जेसे पहचानता सा लगता हूँ मैं
जब मैं कल्पना करता हूँ अपनी अकथ विवशता मे बेठक म मोन
अकेले वात्स्यायन को उनके अज्ञात विचारो के साथ छोड
गेट तक विदा देने आई इला डालमिया को भरसक कृतज्ञ नमस्कार कर
सिर झुकाए रघुवार सहाय के धारे-धार सडक पर आने की ।

स्वर्ण जयती वर्ष मे एक स्मृति

आजादा क पहल पदा क्या हा गया इस स्वर्ण जयती क वर्ष म
जिस देखा वह 15 अगस्त 1947 के
मेरे अनुभव जानना चाहता है

कुछ इस तरह जेसे उस दिन भी
मैं साढे सत्तावन बरस का था
ओर अपने सारे तजुर्बों और विचारो का
एतिहासिक निचोड उन्हे तुरत तेयार द डालूँगा
और वे मर पास स इस तरह जाएँगे
जेसे किसी मदिर या युगपुरुष के सामन से

उन्हे क्या बताऊँ कि जिसने अभी एक वर्ष पहले ही अपनी माँ की मौत दखी हो
उस साढे दस बरस के लडक का
क्या स्मृति हा सकता है भारत माता के मुक्त होने की
सिवा सिफ इसके कि मुन्नू खाँ हेडमास्टर न

एलान किया था कि छिदवाडा मन बार्ड प्राइमरी स्कूल क सार लडक
और मास्टर सुबह जमा हाग पुलिस ग्राउड म
अच्छे कपड पहनकर जहाँ परड हागी झडा फहराया जाएगा
आर मिठाई बटगी

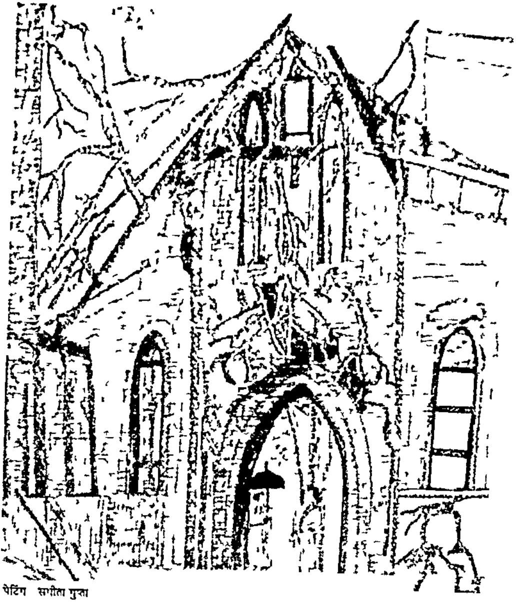
लगभग मुँह अँधर एक गिलास पानी पाकर
गया में ग्राउड का जहाँ छिदवाडा की बडी भीड जमा हा रही थी
छाटे लडका और बडे लडका के अलग-अलग घरा मे
स्कूलवार बैठाला गया खुले म
शामियाने के नाचे कुर्सिया पर बैठे थे
कायला खदाना क मैनजर ठकदार सिनमा क मालिक
शहर क बडे सठ और साहूकार
अफ्सर आर काग्रसा नता ता थे ही मास्टर कुछ दूर अलग बठाल गए थ

जमकर बारिश हाता था उन दिना सावन-भादा मे
लकिन आजादा क पहले दिन चटख धूप निकली था
सलामा आर भाषण हान तक सिर पर चिलचिला रहा था सूरज
कुछ खाने का तो बात क्या पाने को एक गिलास पानी नहीं था
मास्टर आर बडे लोग कोई चिता नहीं कर रहे थे
बारह बजते बजते जब छुट्टा मिली तब बिलबिलाए बच्चा म
स्वतत्रता अमर रहे और हिदुस्तान जिदाबाद के नारे लगाने लायक
जान बाकी नहीं थी
जिस मिठाई का वादा किया गया था वह शामियाने म ही बँट गई
किसा और को कुछ न मिला

लौटे हम लोग भूखे प्यासे
रास्ते के कुछ घरो से माँगा पाना आर पट दुखने तक पिया
कि अचानक नजर पडी छाँद के पता पर
लाई लगाए गए बदनबारा पर
टूट पड शराफ मास्टरा बड बाबुआ छोटे व्यापारिया वकीलों क बेट
जिनक साथ शामिल हो गए नए पजाबी सिधा सरदार लडक भी
सरकारा सजावटा दरवाजा पर सजी ज्वार ओर मक्क की लाई पर चिडिया-काआ का तरह
इस अभूतपूर्व नजार को दखकर लूट मे शामिल हो गए हिम्मत कर
वे निचले छाकर भी जा स्कूल नहीं जात थे

मुफ्त का चीज क लिए होड मचने लगी
काफा ऊँचाई तक छाँद की डालियाँ खा बठाँ अपनी समृद्धि

17 अगस्त 1997 का स्वतत्रता का देशव्यापी स्वर्ण-जयती क ब्योरा क बीच
जब अखबार म यह पढा कि लालकिल क मदान म इकट्ठा बच्चा का
तीन बार जयहिद कहन क बावजूद
सारे वक्त कुछ खाने-पीने को न मिला
ता मुझ याद आया कि पचास बरस पहल
छिदवाडा के छोटे तालाब क पास जा लाई हमन खाई थी
वह अब आठ रुपये के प्लास्टिक मे मिलता है
आर उस लाइ क नाम स काई नहीं पहचानता
उसे अब पॉप कॉर्न कहते हैं
उसस दरवाजे नहीं सजाए जात उस भूखे बच्च अब नहीं खात
पिछल पचास बरसा म कुछ दूसरी चीजा का लूट हुई है
जो उसम शामिल है वे उसे शाकिया खाते हैं
माइकेल जैक्सन ओर रातू बेरी के मेगा-शाज मे।



पेंटिंग संगीता गुप्ता

फेडेरिकोगार्सिया लोर्का (1898 को ग्रेनाडा मे जन्म। कवि, नाटककार चित्रकार और अभिनेता। कविताएँ, अदालुशियाई लोक गीतो की गेयता परम्परागत सगीत ग्रेनाडा की समृद्ध सास्कृतिक परम्पराओ और अतियथार्थवादी बिम्बो की सघनता से प्रचुर। जनकवि के रूप मे अत्यत लोकप्रिय। 1936 मे जनरल फ्राको के इशारे पर दक्षिणपथी ताकतो द्वारा अपहरण और हत्या।
प्रमुख कृतियाँ 'सेलेक्टेड पाएम्स', 'पोएट इन न्यूयाक', थ्री ट्रेजडीज' 'फाइव प्लेयज कामेडीज एड ट्रेजीकामेडीज' 'डीप साग एड अदर प्रोज')।

कुछ स्मृतियाँ, कुछ अनुभव

–फेडेरिको गार्सिया लोर्का

मेरा जीवन? क्या मेरे पास एक जीवन है भी? मुझे अपने बारे म लगता है कि मैं अभी भी एक बच्चा हूँ। बचपन की भावनाएँ अभी भी मर भीतर हैं, मैंने कभी उन्ह त्यागा नहीं। अपने जीवन के बारे मे बताने का मतलब यह बताना होगा कि मैं क्या हूँ। किसी का भी जीवन हमेशा उस सबका वृतान्त है जो गुजरा है। पर मरी सभी स्मृतियाँ यहाँ तक कि बचपन के शुरू के दिनो की मेरी स्मृतियाँ अभी भी मेरे भीतर आवेग के साथ मौजूद हैं।

मैं अपने बचपन के बारे म बताना चाहता हूँ। वह हमशा पूरी तरह मरा था। इतन अतरग तरीके से मेरा अपना निजी ससार कि मैने कभी इसका विश्लेषण करना नहीं चाहा। बचपन म मुझे प्रकृति के बहुत निकट रहने का अवसर मिला। सभी बच्चो की तरह मैंने हर चीज को कुर्सी टेबलो को, पेडो को, पत्थरो को उनका अपना व्यक्तित्व दिया। मैंने उनके साथ बातचीत की, उनस प्यार किया। हमारे घर के आगन मे कुछ चिनार के पेड थे। एक दोपहर मुझे लगा कि वे गा रहे हैं। हवा जब शाखो से गुजरती थी, उसकी स्वरलहरियाँ बदल जाती थीं मैंन जाना और कि यह सगीत है। चिनार के पेड जब गाते थे मैं घटा वहाँ बैठा रहता था। एक दिन मुझे आश्चर्य हुआ कि कोई मेरा नाम पुकार रहा है– "फे " मैंने आसपास देखा पर वहाँ कोई नहीं था। फिर यह आवाज कौन दे रहा था? मैने दर तक कान लगाये रखा और पाया कि बूढे चिनार की शाखाए एक अवसाद और एकरसता म एक दूसरे स रगड खा रही थीं।

मैं धरती का प्यार करता था। मरी सारी भावनाए मुझे धरती से जोड देता थी। मर बचपन की सबसे सुदर स्मृतिया ने धरती का स्वाद चखा है। धरती ने, ग्रामाचल ने मेर जीवन म महान

चीजो को जन्म दिया है। कीडे-मकोडो और जानवरो और दहात के लोगा मे थोड से लोग ही किसी तरह का सकेत पात हैं। मेरी आत्मा उनकी सकेतात्मकता को बचपन के दिना की तरह पकड सकती है। इसके बिना मैं 'एक परिणय' न लिख पाता। धरती से प्यार हा मरे प्रथम कलात्मक अनुभव का आधार रहा है। इससे एक छोटा सा किस्सा जुडा हुआ है और बताना उचित होगा।

शायद 1906 का समय था। मरे गाँव की धरती जो किसानो की धरती थी हमेशा उन काठ के हला से जाती जाती थी जो मुश्किल स उसकी सतह को खुरच पाते थे। उस वर्ष कुछ किसानो को बिलकुल नया ब्रेबेट हल (मेरी स्मृति में यह नाम बखूबी अकित है) मिला जिसे 1900 की परिस की प्रदर्शना म पुरस्कार मिल चुका था। मैं जिज्ञासाओ से भरा हुआ छोटा सा बालक था और मैं खता म उस शक्तिशाली हल क पीछे चलता रहा। यह देखना कितना सुन्दर था कि हल का विशाल इस्पाती फाल धरती को चीरता चला जाता था और रक्त की जगह इसम से जड निकलती थीं। एक बार हल किसी ठास चीज से टकराया और रुक गया। लोहे का चमकता फाल एक रोमन मोजेक को खींच रहा था जिस पर लिखा था नहीं, मुझे याद नहीं आ रहा। पर जाने क्यो मुझे शेफर्ड डफिन्स और क्लो का ध्यान आ रहा है। ता जीवन म जो सबसे पहला कलात्मक चमत्कार मैने अनुभव किया वह धरती से जुडा हुआ था। डफिन्स और क्लो के नामा ने भी धरती का स्वाद चखा था और प्यार को जाना था। मेरी पहली पहली भावनाए खेतो मे होने वाले कामकाज से जुडी हुई हैं। शायद मनाविश्लेषक इसे मरी 'कृषि ग्रथि' कहग।

धरती के इस प्रेम के बिना मैं अपनी दूसरी रचना 'यरमा' आरभ नहीं कर पाता। मुझे धरती बहुत गहरे रूप से दीनता का सकेत देतीर रही है। मुझे दीनता से किसी भी दूसरी चीज की बनिस्वत ज्यादा प्यार है- भूख से जुडी दुष्ट किस्म को दीनता नहीं वरन वरदान मे मिली अकिचन दीनता जो उतनी ही सादा है जितनी कि काली रोटी।

मैं बूढो को झल नहीं पाता। यह नहीं कि मुझे उनसे किसी तरह की नफरत है या उनसे भय लगता है, बस उन्हे देखकर मैं बहुत असहज-सा हो जाता हूँ। मैं उनसे बात नहीं कर पाता, मुझे समझ म नहीं आता कि क्या बात की जाये। मेरा मतलब सबसे ज्यादा उन वृद्ध लोगो से है जिन्हे लगता है कि केवल वृद्ध हो जाने से वे जीवन के सारे रहस्या को जान गये है। जिसे वे 'अनुभव' कहते हैं और उसके बारे मे इतनी बातें करते हैं मैं उसे कभी समझ नहीं पाया। बूढो की एक सभा म मैं एक भी शब्द नहीं कह पाऊँगा। व अधखुली, अश्रुओ से भरी भूरी आँखे वे फडकते हुए होठ वे सरक्षण भाव से भरी मुस्कराहट मुझे आतकित कर देती है और उनका स्नेह उतना ही अवाछित है जैसे कि वह रस्सी जो हमे एक अथाह खाई की तरफ खींचती है। बूढे व्यक्ति- एक गाठ यौवन और मृत्यु की अथाह खाई के बीच एक रस्सी।

मृत्यु ! वह हर चीज म बस जाता है। स्थितिप्रज्ञता मौन और निर्भता उसके पूर्वाभ्यास

के अत मे कविता

हैं। मृत्यु चारो तरफ है। वह एक महान विजता है। मृत्यु उस समय आरभ हाती है जब हम सुस्ता रहे होते हैं। अगली बार जब आप एक जश्न म हो और बहुत धीरज क साथ बात कर रहे हो तब हर आदमी के जूतो को देखें। आप पायगे कि वे स्थिर हैं और भयावह रूप स स्थिर हैं। आप पायगे कि वे मूक हैं शोक मे डूब हुए हैं। वे भावहीन वस्तुए है- पूरी तरह से अनुपयोगी और अपनी आसन्न मृत्यु के एकदम निकट। जूते और पाँव जब ठहर हुए होते हैं तो उनका मृत्यु बोध मुझे परेशान कर देता है। मैं ठहरे हुए पाँवो की जोडी को देखता हूँ- उन्ह ऐसी दर्दनाक स्थिति मे पाता हूँ जिसे सिर्फ वे ही जानते हैं। और मुझे लगता है कि और दस बीस चालीस वर्ष और -उसके बाद वे एक परम स्थिरता मे चले जायेगे या शायद केवल कुछ मिनट बाद ही। शायद घंटे भर बाद ही। मृत्यु उनके भीतर पहले से मौजूद है।

मैं जूते पहने हुए सोन की बात सोच भी नहीं सकता। कुछ मूर्ख जूता को पहने-पहने सो सकते है। मैं अपने पाँवो को दखता हूँ और यह एहसास होने लगता है कि मृत्यु मेरा टटुआ दबा रही है। किसी के पाँव जब उसकी एडिया पर विश्राम कर रहे हो तब उसके तलुआ का देखन से मुझे उन शवों की याद आती है जो मैंने बचपन म देखे थे। उन शवो के पाँव ऐस ही थे- एक दूसरे के निकट ठहरे हुए, नये जूता मे। मौत के बारे म अभी इतना ही।

यदि अचानक मैंन अपने सभी दास्ता को खो दिया होता, यदि में घृणा और ईर्ष्या स घिरा हुआ होता तो मैं जीत नहीं सकता था। मैं शायद सघर्ष भी न कर पाता। मेरे लिए इस बात का तनिक सा भी महत्त्व नहीं है। इसका महत्व कवल मर उन दोस्ता की वजह से है जा मेड्रिड म छूट गय या जो ब्यून आयर्स म बन। मैं जानता हूँ यदि मेरी किसी रचना का उपहास होगा तो उन्हे तकलीफ होगी। मुझे अपनी रचना के कारण नहीं अपने दोस्ता की वजह से दुख होगा। ये मित्र ही हैं जिनकी वजह से मै कुछ कर पाया। मैं कुछ कर पाया क्योंकि नहीं चाहता था कि मुझे जो प्यार और भरोसा मिला है उस पर आँच आय। जहा तक कला का प्रश्न है मुझ सचमुच उन लोगा की कतई परवाह नहीं है जो मुझे प्यार नहीं करते या जिन्ह मैं जानता नहीं।

मेरा सबसे मार्मिक अनुभव? यह अभी कल ही घटित हुआ। यहीं ब्यून आयर्स मे थियेटर म एक स्त्री मुझे तलाशती आयी। वह बहुत निर्धन थी। वह उन बैरको मे से एक मे रहती थी। उसने अखबार म मेरे यहाँ आने के बारे मे पढा था। मुझे रत्ती भर भी गुमान नहीं था कि वह मुझसे चाहती क्या है। मैने उसके बोलने की प्रतीक्षा की। उसने अपनी जेब से कुछ कागजात निकाले और बहुत सभाल कर उन्हे खोला। उसने मेरी आँखो मे झाँका और मुस्कराने लगी जैसे कि किसी बात को याद कर रही हो। "फेडेरिको भला किसने यह साचा था फेडेरिको" और जब उसने छाटे से पैकेट को खोला था उसमे एक पुराना पीला सा फोटाग्राफ था, किसी बच्चे का फाटाग्राफ। और यही चित्र मेरा सबसे हृदयस्पर्शी अनुभव था।

"क्या तुम इसे जानते हो फेडेरिको?"

"नहीं"

"यह तुम हो, जब तुम एक साल के थे। मैंने तुम्हें जन्म लेते देखा है। मैं तुम्हारे माता-पिता के घर के पास ही रहती थी। जिस दिन तुम्हारा जन्म हुआ, मैं और मेरे पति एक जश्न म जा रहे थे। हम लाग इस जश्न म नहीं जा सक क्योंकि तुम्हारी माँ की तबियत ठीक नहीं थी। मैंने मदद की। तुम्हारा जन्म हुआ। जब तुम एक साल के थे तो यह तस्वीर ली गयी थी। देखो तो यह गत्ता किस तरह से उखड गया है। यह फोटो जब नया नया था तो तुम्हीं ने अपने छोटे-छोटे हाथो से ऐसा किया था। तुमने इस गत्ते को तोड डाला था। फोटो मे पड़ी हुई यह दरार मेरे लिए एक अद्भुत यादगार बन गयी है।"

यह बात उस स्त्री ने कही और अवाक रह गया। मै रोना चाहता था मैं उसके गले लिपट जाना चाहता था, उस फोटोग्राफ का चूमना चाहता था पर इसकी जगह मैं बस फोटो मे पडी दरार को घूरता रहा। मैंने उस फाटो क गत्त का तोड दिया था। वह मेरा पहला-पहला काम था। मुझे मालूम नहीं कि अच्छा हुआ था या बुरा पर वह काम मेरा था।

आप यह अनुमान नहीं लगा सकते जब मैं अपने नाम को इतने बडे-बडे हर्फों मे पोस्टरा पर छपे देखता हूँ और ये पोस्टर जब सार्वजनिक स्थानो पर लगे रहते हैं तो मुझे कितनी शर्म आती है। मुझे लगता है जैसे मैं बहुत उत्सुक भीड के सामने नगा हूँ। मैं अपने नाम की नुमाइश को सहन कर ही नहीं पाता। हालाकि मुझे इसमे कुछ भी बुरा नहीं मानना चाहिए क्योंकि यह थियेटर की माग है। मैंन सबसे पहले अपने नाम को इस तरह प्रचार पाते मेड्रिड मे देखा था। मेरे मित्र मर पास आय और कहने लगे कि मैं प्रसिद्ध होता जा रहा हूँ। पर मुझे यह सबकुछ इतना अच्छा नहीं लगा। मेरा नाम हर सडक और चौराह पर था। लोग उस पर निगाह नहीं डालते थे आर कुछ लोग उसे उत्सुकता से पढते थ। यह 'मेरा नाम' था। उसे एक कागज पर चिपका दिया गया था और दुनिया उसका इस्तेमाल कर रही था। हालाकि इससे बहुत लागो को प्रसन्नता हुई होगी पर मुझे एक गहरे अवसाद ने घेर लिया था। ऐसा लगा मानो मेरा अपना वजूद अब खत्म हो गया है। मानो कि कोई अन्य आदमी मेरे भीतर आकार ले रहा है। एक दुश्मन जो उन पोस्टरा मे से मेरी ओर घूर रहा था और मेरे बोदेपन पर हँस रहा था। पर मित्रो यह ऐसा कुछ था कि मैं इसके खिलाफ कुछ भी नहीं कर सकता था।

(डीप साग एड अदर प्राज से)

यारिस पास्तरनाक (1890 मे मास्का म जन्म। 1914 में पहला कविता सकलन प्रकाशित। शुरूआत म क्राति क समर्थक बाद म स्तालिन युग म सरकार क कापभाजन। 'डॉ जिवागा' सर्वाधिक प्रख्यात कृति जिसे रूस म प्रकाशित करने की मजूरी नहीं मिली। 1958 म नाबल पुरस्कार अस्वाकार करने क लिए विवश किये गये। 1960 म निधन। प्रमुख कृतियाँ 'पोएटा ऑफ पास्तरनाक' सिस्टर माई लाइफ समर' 'प्राज एड पोएम्स' 'पोएम्स' उपन्यास- 'डॉ जिवागो' निबध- 'सेफ कन्डक्ट एड अदर वर्क्स')

लोग और प्रवृत्तियाँ

-बोरिस पास्तरनाक

मुझ मायकाव्स्की की शुरूआती गीतात्मक कविताए बहुत पसद थी। एक मसखरे दिन की पृष्ठभूमि म उनका गभीर, भारी दुर्धर्ष और कुछ कुछ शाकाकुल स्वर बहुत विलक्षण था। व कविताए एक मज हुए हाथ स लिखी गयी थीं। वे दर्प भरी थीं उन्मत्त थीं पर उसी समय उनम अपन विनाश का आक्रान्त कर देन वाला भाव भी था- जैस मृत्यु क कगार स सहायता क लिए का गयी काई पुकार-

समय तू एक लुज कलाकार
तुझसे कहता मैं एक उसास भरते
रग दे मेरे चहरे को कुरूपतम प्रतिमा पर
मैं तनहा
उस शख्स की अतिम आँख की तरह
जो बढता है एक अधे की ओर

उसने समय से जा कुछ कहा समय न सचमुच उस सुना। उसका चेहरा उस युग की प्रतिमा का खोल बनाकर रग दिया गया था पर इसके बावजूद कितनी मेधा चाहिए थी इस सबको देख लेने ओर इसका भविष्यवक्ता बनने के लिए। एक जगह उसन लिखा है-

तुम कस समझोगे
मे केसे शात स्थिर
मे केसे पेश करता हूँ अपने को
बातत हुए वर्षो के प्रातिभोज म

पुश्किन या अलेक्सी तालस्तॉय जैसे उन क्लासिक लखका स अलग (जिनके लिए

स्तुति प्रराचना और प्राथनाए अति महत्त्वपूण थीं) ब्नाक मायकाव्स्की या यसनिन क लिए चर्च क अनुष्ठान उच्चार आर प्रार्थनाए वास्तविक जीवन क कुछ आकस्मिक अन्तराला का तरह है जो किसी सडक घर या जनसामान्य की यालचाल की भापा क मुहावरा क समकक्ष ह। लगता ह जस कुछ प्राचीन लख मायकाव्स्की का दिय गय हैं जा उसकी कविताआ क ढाँच क लिए काई उदाहरण वन ही नहीं सकत पर उनम धर्मगृहीत विचारा के यहुत सार दृष्टात ह- जा सूक्ष्म हैं, जार द कर कह गय ह। य कवि का एक भव्य स्तर पर साचन क लिए उत्साहित करते हैं। य उसस यहुत शक्तिशाला हाथा का माग करत हैं। उसकी निर्भीकता और दिलरी का पासत हैं।

यह वहुत अच्छा यात थी कि मायकाव्स्की और यसेनिन दाना न ही अपनी याल्यावस्था से जा कुछ जाना था आर जा कुछ उनकी स्मृति म था उस खारिज नहीं किया। उन्हाने पर्तो क नाच दवी हुई उस साधारणता का उत्खनन किया अन्तर्निहित सौंदर्य का उपयाग किया उस किसी तहखान म छिपाय नहीं रखा।

* * * *

जुलाइ 1917 म एहरनवुर्ग न मरीना त्स्वतायेवा की कविताआ की वहद तारीफ करत हुए उसकी कुछ कविताएँ मुझे दिखायीं। क्राति क कुछ दिना वाद एक शाम मैं उस गाष्ठी म मौजूद था जहाँ मरीना त्स्वतायवा दूसर कुछ कविया क साथ अपनी कविताए पढ रही थीं। सदिया म एक दिन थाडी दर क लिए मैं उसक यहाँ पहुँचा और कुछ अर्थहान टिप्पणिया के साथ वाहर आया। मन कुछ यहद साधारण चीज सुनीं। त्स्वतायवा की चाज मुझ प्रभावित नही कर पायीं।

उस समय मैं जो सुनता था वह हर जाना-पहचानी चाज क अर्थो म की गयी ताड-मराड और एक तरह क तुरही-नाद स वाधित था। यह हमार चारा ओर फैला एक स्वाभाविक स्थिति वन गया था। काई भी चीज जो वड सामान्य ढग स अभिव्यक्त होती थी वह मुझ तक पहुँचती ही नहीं थी। मैं यह भूल रहा था कि शब्दा की अपनी स्वय की एक सत्ता हा सकती है और व भा कुछ कहना चाहते हैं। उनके ये अर्थ उन अलकारा-आभूषणो स अलग ह जिनक साथ उन्ह याधा जा रहा था।

त्स्वेतायवा का कविताआ म यह एक मूलभूत समरसता हा थी उनके अर्थो की स्पष्टता थी। उनकी गुणवत्ता और उनम त्रुटिया का अभाव ही मुझे उनक सारतत्व तक पहुँचन की राह म वाधा डाल रहा था। हर जगह मैं खाजता रहता था- कविताओं का सारतत्व नहीं उनम एक सतहा तीक्ष्णता।

एक लब समय तक मैं त्स्वतायवा का महत्व समझ नहीं पाया। ठाक उसा तरह जस मैंन अलग-अलग कारणा स वागरित्सकी खलब्निकाव मादलस्ताम आर गुमिलियाव का महत्व नहा समझा था।

बहुत से युवा कविया मे जा अपने आपको अर्थपूर्ण तरीके से अभिव्यक्त करने मे अक्षम थे, जिन्हाने अस्पष्टता को एक गुण मान लिया था और एक अतिवादी तरीके से पेश आत थे– मुझ केवल दो कवि असयेव और त्स्वेतायेवा ने प्रभावित किया क्योकि उनक पास कहने के लिए कुछ मानवीय था तथा वे क्लासिक भाषा और शैली का प्रयाग करत थे। अचानक ही दानो ने अपनी इम क्षमता की ओर स मुँह मोड लिया। ख्लेब्निकोव के उदाहरण ने असेयेव को अपनी गिरफ्त म ले लिया और मरीना त्स्वेतायेवा अपनी स्वय की भावनात्मक उथल–पुथल का शिकार हो गयी। पर इसके पहले वह पुरानी त्स्वतायेवा जिसने अपन अतीत स अपन सूत्रा को तोडा नहीं था अपने दूसरे जन्म से पहले वाली त्स्वेतायवा ने मुझ पर जादू सा कर दिया था।

मर लिए उसकी कविताआ म प्रवेश करना आसान नहीं था। पर एक बार जब उसकी कविताओं म प्रविष्टि मिली तो त्स्वेतायेवा की पवित्रता और शक्ति की विपुल सम्पदा देखकर मेरी सास जैसे थम सी गयी। उस जैसा कहीं भी कुछ नहीं था। मैं अपनी बात को सक्षेप म कहूँगा। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी यदि एनेन्स्की और ब्लोक को और कुछ हद तक आद्रे ब्नाइ का भी अपवाद स्वरूप छोड दिया जाय तो त्स्वेतायवा की शुरूआती कविताआ म वह सब कुछ है जिसे बाकी सारे प्रतीकवादी पाने की कोशिश करते रहे पर पा नहीं सक। जहाँ उनका लेखन बन–बनाये आकारो और नीरस पुरातनता क ससार म निरूपाय ठोकर खाता रहता है त्स्वेतायेवा वास्तविक रचनात्मक लेखन की कठिनाइया के ऊपर विचरण करती रही और अपने सम्मुख मौजूद कार्यो को एक बेजोड क्रियात्मक तेजस्विता के साथ निरायास पूरा करती रही।

1922 के बसत में जब वह विदश मे रह रही थी, मैंने 'वर्स' नामक उसका एक छोटा–सा काव्य सकलन मास्को म खरीदा था। त्स्वेतायेवा के शिल्प मे छिपी गीतात्मक ऊर्जा ने तुरन्त मुझ पर जादू किया। इस ऊर्जा म रक्त था यह एक विशाल हृदय से उत्प्लावित थी और इस सबके बावजूद यह कठोर तरीके से कसी हुई और सघन थी। यह वह कविता नहीं थी जो केवल अपनी कुछ पक्तिया म ही स्पदित होती थी इसने तो अपनी लय में बिना किसी रुकावट के कविता के समूची श्रृखलाआ को उनकी अवधिया क बहाव मे समाविष्ट कर लिया था।

इन विशेषताओ के पीछे कुछ छिपी हुई अनुरक्तियाँ थी। शायद हम दोनो पर समान प्रभाव पड थे। वे एक जैसी उत्तेजनाएँ थीं जिन्हाने हमारे चरित्रो को गढा था। वे भूमिकाएँ थीं जो हमारे परिवारो और सगीत ने हम दोनो के जीवन म अदा की थीं, हमारे शुरूआती दौर हमारी मजिलो और हमारी रुचियों-प्राथमिकताओ मे य समानताएँ देखी जा सकती हैं।

मैंने त्स्वेतायेवा को जो उन दिना प्राग मे थी एक पत्र लिखा। यह पत्र पूरी तरह उत्तेजना और अचरज से भरा हुआ पत्र था कि आखिर मै इतने लबे समय तक मैं उस अनदेखा कैस करता रहा। उसका जवाब आया। हम दोनो के बीच पत्राचार शुरू हुआ। तीसरे दशक क बाच के वर्षों में यह पत्र–व्यवहार खासतौर पर बडा जीवन्त था क्याकि उन्ही दिना उसका सग्रह

'क्राफ्ट' प्रकाशित हुआ था और उसकी कविताएँ अपनी ऊर्जा और अपनी सामग्री मे असाधारण थीं- जीवन से लबालब और नवोन्मेषी। ''पोएम्स ऑफ द एड', 'पोएम ऑफ द माउटेन' और 'रेट कैचर' ने चोरी-छिपे मास्को मे प्रवेश किया और वे वहाँ पढी गयीं। अब हम दोनों मित्र थे।

1935 की गर्मियो म जब मैं अपनी स्वाभाविक स्थिति में नहीं था और लगभग एक मानसिक रूग्णता के शिकजे म आ गया था, (क्योकि पिछले एक वर्ष से मैं लाइलाज अनिद्रा राग स ग्रस्त था) मैं फासिज्म विरोधी सम्मेलन मे भाग लेने परिस पहुँचा। वहाँ मुझे त्स्वेतायेवा के परिवार-उसके बेटे, बेटी और उसके पति के निकट आने का अवसर मिला। उसका पति मुझे आकर्षक, सवेदनशील और धैर्यवान किस्म का इसान लगा। त्स्वेतायेवा के परिवार के सदस्या ने जोर दिया कि उसे रूस वापस लौट जाना चाहिए। इसक पीछे कहीं उनके भीतर घर की याद और साम्यवाद के प्रति सहानुभूति भरा रवैया था तथा उनका यह भी सोचना था कि त्स्वेतायेवा का पेरिस म लब समय तक बने रहना सभव नहीं है क्योकि वह अपने पाठकों से दूर वहाँ वह एक शून्य म अपना जीवन नष्ट कर रही थी।

त्स्वेतायेवा ने मुझसे जानना चाहा कि मैं उस बारे मे क्या सोचता हूँ। मेरी इस बारे कोई स्पष्ट धारणा नहीं थी। मुझ समझ में नहीं आया कि क्या सलाह दूँ। मै कहीं बेहद डरा हुआ भी था कि हमारे दश म उसका और उसक परिवार का जीवन बेहद कठिन होगा और उसम शाति ता नहीं ही हागी। बाद म उस पूरे परिवार के साथ जो त्रासदी घटित हुई वह मेरी किसी भी आशका से बहुत-बहुत अधिक भयानक थी।

* * * *

आत्महत्या करने से पहले आदमी के भीतर जो भावनात्मक तूफान उमडता है मुझे उस बारे कुछ नहीं मालूम। यातना गृहो म यत्रणा दिये जाने के दौरान लोग अचेत होते देख गये हैं। यत्रणा से जन्मी पीडा इतनी विलक्षण है कि जब वह किसी के लिए असह्य हो उठती है ता उसके अत को करीब ले आती है। फिर भी यह शख्स जिसे मृत्युदड दिया जाता है, वह नष्ट नहीं हो सकता। वह पीडा से अपनी चेतना भले ही खो दे पर वह अतिम क्षण तक अपने साथ मौजूद होता है। उसका अतात उसके साथ होता है अपनी स्मृतियाँ उसके पास हाती हैं। वह यदि चाह तो उनका उपयोग कर सकता है और मृत्यु से पहले वे उसकी मदद कर सकता हैं।

पर आत्महत्या का इरादा करने वाला आदमी अपना साथ तज दता है। वह अपने अतीत स विमुख हा जाता है अपन का भावनात्मक रूप स दिवालिया घाषित कर दता है और उसकी स्मृतियाँ निर्बल हा जाता हैं। उस स्थिति म स्मृतियाँ उस व्यक्ति तक पहुँचन म नाकाम रहती हैं व उस छुडा नहीं पातीं उस काई सहायता नहीं दे पातीं। उसक भीतरी अस्तित्व का निरन्तरता छिन्न-भिन्न हा जाती है उसका व्यक्तित्व खा जाता है। शायद किसी एक घडी मे आदमी

स्वय को इसलिए नहीं खत्म करता कि वह अपने मूल निर्णयो के प्रति सच्चे रहना चाहता है, बल्कि इसलिए कि वह उस वेदना को नहीं सह पाता जिसे झेलने के लिए अब उसका कुछ बचा नहीं रह गया है। त्रास सहने वाले की अनुपस्थिति मे त्रास। एक रिक्त प्रत्याशा जिसके पास जीवन की निरन्तरता नहीं है कि उसे भरा जा सके।

मुझे लगता है कि मायकोव्स्की ने एक दर्प के तहत खुद को गोली मार ली थी, क्योकि वह अपने भीतर और अपने चारो ओर किसी ऐसी चीज की भर्त्सना करता था जिसे सहना उसके आत्माभिमान के लिए गवारा नहीं था। येसनिन ने बिना परिणामो की परवाह किये अपने के गले मे फदा डाल लिया और अपनी आत्मा की गहराइयो मे वह यह मानता था कि शायद यह अत नहीं है। शायद ही कोई यह कहेगा कि उसका काल आ पहुँचा था। मरीना त्स्वेतायेवा ने जीवन भर अपने को अपनी रोजमर्रा की जिदगी के कामो से दूर अपने लेखन मे बद कर रखा था। एक दिन जब उसे यह लगा कि यह एक अवैध किस्म का ऐश्वर्य है, अपने बेटे की खातिर उसे अपनी यह मोहक दीवानगी तजनी होगी और चारो ओर की दुनिया को ज्यादा मर्यादाबद्ध होकर देखना होगा तो उसे अचानक अपने चारो ओर एक भयावह दुव्यवस्था नजर आयी। इसे रचनात्मकता के द्वारा रूपान्तरित नहीं किया जा सका था। जो नजर आता था वह गतिहीन अपरिचित और जड था। वह भयाकुल होकर लडखडाने लगी। उसे समझ नहीं आ रहा था कि अपने भय से कैसे भागा जाये। हडबडाहट मे उसने मृत्यु के आगोश मे छिप जाना चाहा और रस्सी के फदे के भीतर अपने सिर को ऐसे घुसाया जैसे जैसे वह किसी तकिये के नीचे सिर छिपा रही हो। पाऊलो याशविली तो किसी भी चीज को समझने म असमर्थ था। वह जैसे शिगालेविज्म के दौर मे फस गया था (शिगालेव दॉस्तायव्स्की के उपन्यास 'पजेस्ड' का एक चरित्र है)। रात को सोयी हुई अपनी बेटी का चेहरा देखने के बाद उसे लगा कि अब अपनी बेटी को देखने की पात्रता उसने खो दी है। अगली सुबह वह अपने दोस्तो से मिला और दुनाली बदूक के एक धमाके से अपनी खोपडी उडा दी। जहाँ तक फेदेयेव का प्रश्न है मुझे लगता है अपनी उस शर्मीली मुस्कान के साथ (जिसके साथ वह तमाम तरह की राजनीति उठापटक के दौरो से सकुशल गुजरता रहा) वह अपने अतिम क्षणो मे यह कहते हुए विदा ले सकता था कि "ठीक है चलो सब खत्म हुआ जाता हूँ अलविदा।"

इस सबके बावजूद ये तमाम लोग अकथनीय यत्रणा और त्रास झेलते हुए गये। इन्होने स्वय को उस हद तक सताया जहाँ वेदना का भाव एक मनोरोग म बदल जाता है। हम सिर्फ इनकी प्रतिभा ओर विलक्षण स्मृतियो के सम्मुख ही नतमस्तक नहीं होते इनकी यातनाओ के सामने भी निवाक हो जाते हैं।

(सलेक्टेड राइटिंग एंड लेटर्स' से)

'क्राफ्ट' प्रकाशित हुआ था और उसकी कविताएँ अपनी ऊर्जा और अपनी सामग्री मे असाधारण थीं- जीवन से लबालब और नवोन्मेषी। "पोएम्स ऑफ द एड', 'पोएम ऑफ द माउटेन' और 'रेट केचर' ने चोरी-छिपे मास्को म प्रवेश किया और वे वहाँ पढी गयीं। अब हम दोनों मित्र थे।

1935 की गर्मियो मे जब मैं अपनी स्वाभाविक स्थिति में नहीं था और लगभग एक मानसिक रूग्णता के शिकज म आ गया था, (क्योंकि पिछले एक वर्ष से मैं लाइलाज अनिद्रा रोग से ग्रस्त था) मैं फासिज्म विरोधी सम्मेलन मे भाग लेने पेरिस पहुँचा। वहाँ मुझे त्स्वेतायेवा के परिवार-उसके बेटे, वेटी और उसके पति के निकट आने का अवसर मिला। उसका पति मुझे आकर्षक सवेदनशील और धैर्यवान किस्म का इसान लगा। त्स्वेतायेवा के परिवार के सदस्या ने जोर दिया कि उसे रूस वापस लाट जाना चाहिए। इसके पीछे कहीं उनके भीतर घर की याद और साम्यवाद के प्रति सहानुभूति भरा रवैया था तथा उनका यह भी सोचना था कि त्स्वेतायेवा का पेरिस म लबे समय तक बने रहना सभव नहीं है क्योंकि वह अपने पाठको से दूर वहाँ वह एक शून्य मे अपना जीवन नष्ट कर रही थी।

त्स्वतायेवा ने मुझसे जानना चाहा कि मैं उस बारे मे क्या सोचता हूँ। मेरी इस बारे कोई स्पष्ट धारणा नहीं थी। मुझे समझ में नहीं आया कि क्या सलाह दूँ। मैं कहीं बेहद डरा हुआ भी था कि हमारे दश म उसका और उसके परिवार का जीवन बेहद कठिन होगा और उसमें शाति ता नहीं ही हागी। बाद मे उस पूरे परिवार के साथ जो त्रासदी घटित हुई वह मेरी किसी भी आशका से बहुत-बहुत अधिक भयानक थी।

* * * *

आत्महत्या करने से पहले आदमी के भीतर जो भावनात्मक तूफान उमडता है मुझे उस बारे कुछ नहीं मालूम। यातना गृहो म यत्रणा दिये जाने के दौरान लोग अचेत होते देखे गय हैं। यत्रणा से जन्मी पीडा इतनी विलक्षण है कि जब वह किसी के लिए असह्य हो उठती है तो उसके अत को करीब ले आती है। फिर भी वह शख्स जिसे मृत्युदड दिया जाता है वह नष्ट नहीं हो सकता। वह पीडा से अपनी चेतना भले ही खा दे पर वह अतिम क्षण तक अपने साथ मौजूद होता है। उसका अतीत उसके साथ होता है अपनी स्मृतियाँ उसके पास हाती हैं। वह यदि चाह तो उनका उपयाग कर सकता है और मृत्यु से पहले वे उसकी मदद कर सकती हैं।

पर आत्महत्या का इरादा करन वाला आदमी अपना साथ तज दता है। वह अपने अतीत स विमुख हा जाता है, अपन का भावनात्मक रूप से दिवालिया घोषित कर देता है और उसकी स्मृतियाँ निर्बल हो जाती हैं। उस स्थिति म स्मृतियाँ उस व्यक्ति तक पहुँचने म नाकाम रहती हैं व उस छुडा नहीं पातीं उस काई सहायता नहीं दे पातीं। उसक भीतरी अस्तित्व की निरन्तरता छिन्न-भिन्न हो जाती है उसका व्यक्तित्व खो जाता है। शायद किसी एक घडी म आदमी

स्वय को इसलिए नहीं खत्म करता कि वह अपने मूल निर्णयो के प्रति सच्चे रहना चाहता है, बल्कि इसलिए कि वह उस वेदना को नहीं सह पाता जिसे झेलने के लिए अब उसका कुछ बचा नहीं रह गया है। त्रास सहने वाले की अनुपस्थिति म त्रास' एक रिक्त प्रत्याशा जिसके पास जीवन की निरन्तरता नहीं है कि उसे भरा जा सके।

मुझे लगता है कि मायकोव्स्की ने एक दर्प के तहत खुद को गाली मार ली थी, क्योकि वह अपने भीतर और अपने चारा ओर किसी ऐसी चीज की भर्त्सना करता था जिसे सहना उसके आत्माभिमान के लिए गवारा नहीं था। येसनिन न बिना परिणामा की परवाह किये अपन क गले म फदा डाल लिया और अपनी आत्मा की गहराइयो मे वह यह मानता था कि शायद यह अत नहीं है। शायद ही कोई यह कहेगा कि उसका काल आ पहुँचा था। मरीना त्स्वेतायेवा ने जीवन भर अपने को अपनी रोजमर्रा की जिदगी के कामो से दूर अपने लेखन मे बद कर रखा था। एक दिन जब उसे यह लगा कि यह एक अवैध किस्म का ऐश्वर्य है, अपने बेटे की खातिर उसे अपनी यह मोहक दीवानगी तजनी हागी और चारा आर की दुनिया को ज्यादा मर्यादाबद्ध होकर देखना होगा तो उसे अचानक अपने चारो ओर एक भयावह दुर्व्यवस्था नजर आयी। इसे रचनात्मकता के द्वारा रूपान्तरित नहीं किया जा सका था। जो नजर आता था वह गतिहीन, अपरिचित और जड था। वह भयाकुल होकर लडखडाने लगी। उसे समझ नहीं आ रहा था कि अपने भय स कैसे भागा जाय। हडबडाहट म उसन मृत्यु के आगाश मे छिप जाना चाहा और रस्सी के फदे के भीतर अपने सिर को ऐसे घुसाया जैसे जेसे वह किसी तकिये के नीचे सिर छिपा रही हो। पाऊलो याशविली तो किसी भी चीज को समझन मे असमर्थ था। वह जैसे शिगालविज्म के दौर मे फस गया था (शिगालेव दॉस्तायव्स्की के उपन्यास 'पजेस्ड' का एक चरित्र है)। रात को सोयी हुई अपनी बेटी का चेहरा देखने के बाद उसे लगा कि अब अपनी बटी को देखने की पात्रता उसने खा दी है। अगली सुबह वह अपने दास्ता से मिला और दुनाली बदूक के एक धमाके से अपनी खोपडी उडा दी। जहाँ तक फेदेयेव का प्रश्न है मुझे लगता है अपनी उस शर्मीली मुस्कान के साथ (जिसके साथ वह तमाम तरह की राजनीति उठापटक के दौरो से सकुशल गुजरता रहा) वह अपने अतिम क्षणों में यह कहत हुए विदा ले सकता था कि, "ठीक है, चलो सब खत्म हुआ जाता हूँ अलविदा।"

इस सबके बावजूद ये तमाम लोग अकथनीय यत्रणा और त्रास झेलते हुए गये। इन्होने स्वय को उस हद तक सताया जहाँ वेदना का भाव एक मनोरोग म बदल जाता ह। हम सिर्फ इनकी प्रतिभा ओर विलक्षण स्मृतियों के सम्मुख ही नतमस्तक नहीं होते, इनकी यातनाओ के सामने भी निर्वाक हो जात हैं।

(सलेक्टेड राइटिंग एड लेटर्स' से)

मलय

हो पाता समय

इस तरह तडफडाकर
भागता है
उम्र का हर दिन
बसा की डोर के काटे से

मुह छिदा मछली
आसपास पानी मे
जिन्दगी के तमाम धागे को खींचकर
भागती गहरे उतरती है

उतराती भी ता
ताकत ओर सोच म
तिरछी नाक से भिडती
अपने ही हाफने को

परास्त करती
दौडती आती सी
एक एक उछाल भर शक्ति?

इस तरह घेरता है अधेरा
जमीन पर ही
अपनी ही प्यारी पताकाए
झुकती हवा की झाक पर
तो धुआ फरफराती
अन्दर तक भी
घुटन की सास भर

चुक नहीं पाता
लडता है बार बार
मेरा हो पाता समय।

छल

हो ही जाता था प्रकट छल का छल बार-बार,
मानता कहाँ था पर छलने से छल।
हल इसका कोई भी नहीं था हमारे पास।
कभी-कभी दिखता नहीं था वह बहुत दिनो तक
क्या पता, भूल ही गया हो वह रास्ता,
या फिर अब बचा ही न हो हमसे वास्ता
कोई भी। ऐसा कुछ मानकर ज्यो ही हम चलते थे
शात या निरुद्विग्न आता था चुपके से
तीर-सा मारकर झपट्टा छिप जाता था।

उसके ठिकाने कुछ पता थे।
रहते थे हम उनसे दूर ही। प्रण तक कर लेते थे
पास भी न फटकेगे उनके।
फिर भी आसान यह कहाँ था।
जाने कब आ जाता ठीक वह आस-पास
बदले हुए भेष मे कभी-कभी औचक भी
उझक कर झाँकता बिराता मुँह हम को। पकड ले
बैठक मे अगर हम उसको झिझोड दे
दिखाकर बत्तीसी वह हतप्रभ ही कर देना चाहता।
कभा-कभी होता कुछ यो भी कि पकडो यदि
पूँछ से मुँह छिपा लेता पकडो यदि मुँह को
तो दुम को बचाने की कोशिश वह करता।

कभी-कभी बैठा अधेरे मे दूर से, रहता था
ताडता। छल के ढब हमको सब पता थे
इस तरह। "ले लो जो चाहिए माफ करो"
कह कर हम यह भी और वह भी दे देते।
इससे सतुष्टि पर उसे नहीं होती थी। शीलवान

बनकर वह आ जाता काचने, उल्टे बताने यह
अमुक दिन, अमुक समय ह्मों ने
उसको ठगा था। लेकिन था उसकी भी
मजबूरी इतनी टिके रहो, खेल मे
उसके न शामिल हो तो फिर वह
डरता था।
जाता था देने गुजर राह से निर्विघ्न।
लेकिन था डाह का मारा।
दल-बल भी थे उसके।
कभी-कभी अपने ही दलदल म धसे हुए भी
देखा उसको।
लेकिन छल करने को छल से
कभी जी नहीं चाहा-
वह होता उसके ही दल म
कहीं शामिल हो जाता।
ओर कर देता फिर अपना ही खात्मा।।

जब सोने जाता हूँ इन दिनो

कैसा हडकप मचा सकता हे
दिन भर की चीजो का।

लूट मची देश की
दिन बीते जाते हैं-

लूट चली रहता हे
आती है नींद जब
थकान की
सीढ़ी पर
रात बात जाती है-
लूट फिर सुबह अखबार आ
बताता है।

ईर्ष्या

ईर्ष्या को ईर्ष्या से ईर्ष्या नहीं थी
देखकर अपने भी कई रंग-रूप वह
बस प्रमुदित रहती थी।
हाँ इतना करती थी
तोलती रहती थी कहाँ वह ज्यादा है
कहाँ है कम।
इसमे भी रस उसे आता था
कल कैसे
ईर्ष्या ने ईर्ष्या को
किस तरह दे दी है पटखनी।

परदे म रहती था।
कभी-कभी ऊबकर बाहर आ
जाता थी या फिर भी
झाँकती-
कभी-कभी आँखो म बाँधकर पट्टियाँ
जहाँ-तहाँ जिस-तिस से
रह-रह भिड जाता था।

क्षण भर को सबको भौंचक्का
कर जाती थी
सुध-बुध भुलाने की
करती थी कोशिश।
होती जिस पर सवार
खुद उसे जलाता थी।

होश जिन्हे रहता था
उन पर थी
गुस्से से काँपती।
कभी बस महीन
वार करती थी।

सावधान!
वह चली आता है
वहाँ
ऐन सामने
थोडी सी आड ले
टोह मे
शिकार की।

प्रभात त्रिपाठी

शायद - 1

शायद आखिरी बारिश का शुरुआत है
यह रात
शायद पहली बारिश की स्मृति

शायद गर्भस्थ शिशु का अनखुली आँखो से
मैं देखता हूँ इस समय को
शायद बदहवास बूढे की विस्फारित दृष्टि मे
चित्र सी उभरती है आवाज
मढका और झींगुरा की

शायद अपने भय मे निरस्त्र प्रतीक्षा करता हू
जनमपत्री के फलादेश म छाये बादला का
शायद सोचता हू तहस नहस के नाटक म
अपना वर्बर भूमिका का दृश्य

शायद भविष्य
एक डरावने और अस्पृश्य समय का
सहजात
कोई वृक्ष है अवास्तविक
इस कमरे के धुँधले छाटे आईने मे
मनुष्य क आकार सा प्रतिबिम्बित
एक फूल

वृक्ष नहीं
मासमा पाथे के सिरे पर
नाले क आसपास का वजना रग
शायद उजास

अचानक बत्ती गुल की डराती बरसात म
शायद बुढापे की हवस
रस के किसी व्यतीत प्रसग सी
करुण कामना म
वासना है उद्दाम
पहाडी नदी की वन्या सी
अभी पल भर म ओझल

शायद अकलेपन का दर्पण है यह लौटना
उस घर की ओर
जो नहीं है कही भी
शायद तलाश है
मरने को दखत हुए मरन की
इच्छा क सुनसान मे

शायद आखिरी बारिश की शुरूआत है
यह रात

शायद– 2

शायद जागता हुआ सपना
नींद की राह मे
भूत सा खडा है

शायद लौटना ही नहा है
यहाँ आना
इस अति-परिचित बिस्तर की गन्ध मे
देखना
अपनी बेचैनी की वही की वही
तस्वीर

शायद भागकर आने की थकान मे

वीरान हो गयी वह जगह
जहाँ मेरा घर था
और जहाँ मैं धुत्त नींद म
सपने देख सकता था
मृत्यु और हत्याकाड के बाद
आजाद होती आत्मा की खिलखिलाहट से
रच सकता था
शौर्यगाथा की एक रोमाचकारी कविता

शायद भागते हुए सोचने के दौरान
छूट गये हरे मैदान म
मगन मन खेलती लडकी के
नन्हे स्तना का स्मरण
फिर हकालेगा मुझे
अधरात की सडक पर
शायद टूटते नशे मे
ईश्वर और उसकी समूची सृष्टि क नाम
गालियाँ बुदबुदाते
शहर के मुख्य बाजार का आलीशान दूकान के सामने
पेशाब करते करते
मे गिर पडूगा बेवजह।

वेणु गोपाल

कविता मे मर गया कवि

(1)
कवि कविता मे इतनी दूर
तो न चला जाये।
कि लौट कर आ ही न सके।

(2)
कवि
कविता मे चला तो गया
लेकिन अब
कविता का पछाड खाती
सुन्दर-सुन्दर लहर हैं
आर किनारा हे—और शान्ति है—

लेकिन कवि कहाँ है?
उसका क्या हुआ?

(3)
लोग परेशान है
कविता के किनारे
खडे हुए

कि कवि अगर डूब हा गया है
तो
उसकी लाश
ऊपर क्यो नहीं आ रही है?

(4)
कवि कविता म डूब गया
तो फिर वह कौन है
जो दिल्ली म है?

(5)
तो
लाश ऊपर आ ही गयी
आखिरकार।

कवि दिल्ली मे हे

(विष्णुनागर की कविता के प्रति आभार सहित)

कवि
चाहता है
कि उसका हर कविता
मनुष्य से शुरु हो

लेकिन
क्या करे
कि वह बेचारा
दिल्ली मे है।

शेष जीवन

कुछ नहीं बचा जीवन मे
न प्रेम न आनन्द न वैभव
सब कुछ बह गया समय-सलिला मे
अपने घर मे ही हो गया हूँ अकिचन
ढूढता रहता हू गुथलियो चिथडो के ढेर मे
हारो की खदाने
उत्खनन म जो कुछ मिला
वह सब मलिन और धूमिल है
खरादेगा नही काई उसे
कोडियो के माल
कौन डाल देगा पारसमणि
छेदो भरा मेरा झोली मे
कुछ नहीं वचा जीवन मे
अव तुम आ जाओ
भर लो अपना पुरातन भुजाओ म।

थका प्रेम

मार्ती की कविताए पढते हुए

क्या कभी ऐसा समय आयेगा
जब लोग स्वय अपने को
नियुक्त करेगे न्यायाधीश
धिक्कारेगे अपने को ही
दडित करेगे अपने को
पडे रहेगे एकाकी परित्यक्त
सीलन भरे अधेरे तहखानो मे
भोगते रहगे असीम यातना
जीवन के अत तक
देखते रहगे एक ही स्वप्न वार-बार
जिसमे आता रहेगा याद
देर से आता हुआ थका प्रेम
और कोई पुराना दुख
जो अभी तक नहीं गया होगा।

भगवत रावत

एक अभिनन्दन समारोह से लोटते हुए

सहने की इतनी सारी ताकत थी मुझम
इसके पहल पता न था

पता नहीं था किसी एक दिन
मेरा अपमान
विसर्जित करा दिया जाएगा मेरे ही हाथो
जिसका मैंने बहुत सुरक्षित रख छोडा था अपने भीतर

वह भी बल देता है
ठीक राढ की तरह तना वह उठ पडने म
अक्सर बहुत मदद देता है

वह मेरे भीतर जीवित था जिसक चलते
एक स्वय था इतना अलग कि अक्सर पहचाना जाता था
उस सिटाकर किसी एक खामोश नदी मे
लौटा हूँ जब खाली हाथो
घेरे है मुझको एक गुमनाम उदासी
देख न ले कोई उसको बस इस प्रयत्न मे
पता नहीं अब
कितने-कितने रूप धरुगा

इतनी सहन-शक्ति की द्विधा-व्यथा किस-किस
रास्ते होकर निकलेगी
क्या मैं उसका कोई रूप बना पाऊँगा अपने भीतर
रचकर उसे कहाँ किस ठौर-ठिकाने रख पाऊँगा

इतना अच्छा-अच्छा होकर कितना अच्छा रह पाऊँगा
सहने की ताकत तो थी पहले भी लेकिन इतना सारा
कब-कब पलती रही देह मे
इसके पहले पता न था।

अच्छा यह है कि ज्यादातर लोग ऐसे नहीं हैं

कुछ लोग कहीं कोई हाशिया नहीं छोडते
शब्दा के बीच छाडत नहीं इतनी सी भी जगह
कि जरुरत पडे तो 'शायद' या 'हो सकता हे' जसे शब्दो को भी
कहीं रखा जा सके

वे इतनी तय ओर व्याकरण सम्मत भापा लिखते-बोलते हैं
कि उसमे सुधार की कोई गुजाइश नही होता

अर्थात्
सज्जनता ओर शालीनता के कवच मे
उनका चेहरा देख पाना मुश्किल होता है

वे इतने शान्ति-प्रिय आर खामोश हाते हैं कि खतरनाक हो जाते हे
यानी कुछ इतने विनम कि आक्रामक हो जाते हें
कुछ इस तरह सहृदय कि कठोर हो जाते हैं

उनकी आँखे आपको देखते हुए भा कहाँ दख रहा होती ह
जान पाना कठिन हे

अच्छा यह है कि दुनिया मे ज्यादातर लोग ऐसे नहीं हे
पर ऐसे ही कुछ लोग ज्यादातर लोगो की नाक मे दम
किये रहते हैं

मैं यह सब इसलिए कह रहा हूँ कि कम से कम आप
ऐसे लोगा से सावधान रहे क्याकि उनके दिल ओर
दिमाग का दरवाजा कोई खटखटा नहीं सकता
व सपन म भा अपनी कोई खिडकी
खुली नहीं छोडत

आप कहगे कि मेरी सारी बाते गलत हैं
क्योकि वे कभा-कभी हमारी-आपका तरह भी
व्यवहार करते पाये जाते ह तो

इसीलिए तो कह रहा हूँ
ऐसे लोगो से सावधान रहिए

क्योकि वे अवसर पाते ही हमारी-आपकी सुख की नींद मे
घोडो पर सवार होकर आते हैं और हमसे
हमारी पहचान और पता पूछते हैं
फिर वे हमे हमारी नींद से बेदखल कर
इतिहास की अधी गुफाओ खाइयो और खन्दको मे
ले जाकर छोड देते हैं जहाँ से वापस आ पाना
आसान नहीं होता

आप तो जानते हैं कि ये ही वे लोग होते हैं जो
सारी दुनिया की चैन की नींद मे
मारकाट मचाते हैं

वे हमारे-आपके बीच अत्यत विनम्र सहृदय और
दयालु बनकर छिपे रहते हे
ऐसे लोगो को सिर्फ उनकी भाषा से पहचाना जा सकता है
और यह कोई अचरज नही कि इन दिनो वे
भाषा ही नष्ट करने पर उतारू हैं
कमसकम आप उनसे सावधान रहिए।

ऐसी केसी नींद

एक-एक पल घटते जाना ऐसे
जेसे कद घटता हो

एक-एक कर धीरे-धीरे
सबसे कटते जाना ऐसे
जैसे घर आगन का कोई
छायादार पेड कटता हो

यह अनुभव भी कैसा उनके लिए कि जिनने

दुनिया भर को सचमुच अपना घर माना हो

बचपन से ही कितना-कितना प्यार किया था
वह तो शायद अब भा वेसा का वैसा हो
लेकिन सबकुछ इतना बदला इतना जेसे
कुछ भी अपना नहीं
जिसे खूब जाना पहचाना जीवन भर तक
किसी एक दिन पता चले यह
वह भा अब कितना अनजाना
पकी उम्र तक आते-आते
इस जीवन का मर्म जानकर
रिश्ता को ता पहले स भी
ज्यादा घना-घना हाना था

इतना घार अकेलापन क्या वात हो गइ
कुछ तो था जो वहुत जरूरी कहीं खो गया
वरना भापा इतनी अवश तो न था
कि किसी तक एक दूसरे के खामोशा से राने की
आवाज नहीं पहुँचा पायेगी
कविता का यह बहुत पुराना रूपक है
कि प्यार कुछ नही सिवा इसके कि
आग के गोले जसा जलते-जलते
सिर्फ अकेल चलते जाना चलते जाना
और किसी एक दिन थककर
चूर-चूर हो जाना
निराकार-आकार-शेष मे
घुल-मिल जाना

किन्तु मृत्यु का भय मेरा भय नहीं
क्योंकि वह परम सत्य है
मैं तो जग के इस विराट मे
अपनी दुनिया खोज रहा हूँ
जिसे रचा था मन अपन हा हाथों स
कौन चुराकर उसे ले गया
ऐसी कैसी नींद लग गई।

इब्बार रब्बी

रोती हुई औरत

मैं भीग रहा था
वह रो रही थी।
ढीला हुआ तनाव
चाह कर भी
पोछ नहीं सका आसू।
यहीं बिल्कुल यहा
कविता लिखता रह गया।

कितने बूढे रोये तो
बने उपन्यास
कितने बच्चे बिलखे
तो कहानिया
कितनी औरते रोईं
तो उतरी कविता।

वह सिसकता रहा
मैं कुछ कर नहीं सका।
मैं भी रो न पड़ू
हाथ मे रख दिया
उसने हृदय।
क्या करू इसका
समझ नहीं सका।

बहने लगा सवेदना
डूबने लगा
तार तार मन।
मैंने बार बार रूमाल निकाला
पर कविता को पोछ नहीं सका।

हत्यारे पीते हैं खून,
तितलिया परागकण,
वकील थाम लेते हैं मुकदमा,
पत्रकार सूघ लेते हैं खबर
गये गुजरे हैं कवि
आसू से छानते हैं कविता।

चायघर मे धुआ,
दफ्तर मे शोर,
भीड और चेहरे,
नहीं मिला एकात
कहा मैं आसू पोछता।

पानी पर पानी के गिलास,
चाय के जाम और मठरिया।
वह बार बार माफी माग रही थी।
उसने तोड दिया विश्वास
जोडने की कोशिश मे
क्या-क्या तोड देते हम।

टूट गया सब कुछ
यही टूट यही छूट
जोड रही थी
मुझे उसे और कविता को।

रातो-रात रोती रही,
पति और बच्चो से छिप कर।

धुआ धुआ चारो ओर,
शोर पर शोर
टूटता जुडता हू मैं
जब जब रोती है वह।

मैं नहा रहा था
कि सिसकी सुनी
पी रहा था चाय सिगरेट

तोडता था रोटी
कि गले मे अटकी,
हिचकी उसकी।

दफ्तर मे सुने उसके आसू,
सडक गीली थी उनसे।
भीगी थी चाय की दूकाने
धुध और कोहरे के पार
चमक रहे थे आसू।

कितने रेगिस्तानो बीहडा
नदियो, समुद्रो के पार
मिलेगा वह एकात
जहा सुखा लू गीली कविताए
पाछ दू
उसके आसू।

कविता का जीवन – मॉस्को मे

–ओसिप मेडेलस्टाम

(रूस के दिग्गज कवि एव गद्यकार ओसिप एमिलेविच मेडेलस्टाम के बारे मे कहा गया है कि वे 'हमारी शताब्दी के साहित्यिक शहीद' हैं और किसी दूसरे युग मे उन्हे शायद सत या महात्मा मान लिया गया होता। यह भी माना जाता है कि मेडेलस्टाम की कविता को समझने के लिए उनके गद्य का अध्ययन अनिवार्य है क्योकि अपना समीक्षा में उन्होने कई ऐसे विषय उठाए हैं जिनका उनकी कविता मे महज एक आभास भर ही मिलता है। अग्रेजी समीक्षक हेनरी गिफोर्ड का कहना है कि मेडेलस्टाम के गद्य को उनकी कविता से जुदा नहीं किया जा सकता क्योंकि उसके भीतर से, और सभवत उसके लिए ही उनके गद्य का विकास हुआ है। योरोप की विभिन्न साहित्यिक राजधानियो मे सक्रिय रहने के बाद सन् 1911 मे मेडेलस्टाम ने सेट पीटर्सबर्ग से छायावाद ओर प्रतीकवाद के विरुद्ध अपनी लडाई की शुरूआत की। अगले बास वर्षों मे कविता और गद्य का उनकी प्रमुख रचनाए प्रकाशित और बेहद चर्चित हुई। 1934 मे स्टालिन के बारे मे एक व्यग कविता का पाठ करने के अपराध मे उन्हे गिरफ्तार कर शेरडिन और वोरोनेज म निर्वासित कर दिया गया जहा उन्हाने स्कूल की कॉपियो पर अदभुत कविताओ की रचना की। 1937 मे वे मॉस्को लौटे जहा 1938 के आरभ मे उन्हे पुन गिरफ्तार कर लिया गया। व्लाडिवोस्टक के निकट कैदियो के एक कैंप मे अतत 1938 का सर्दियो मे मेडेलस्टाम ने दम तोड दिया। स्तालिन युग की कठोर सेसरशिप के बावजूद मेडेलस्टाम की रचनाओ का सुरक्षित बचे रह जाना एक चमत्कार समझा जाता है। उनके अतिम दिनों की कहानी को उनकी पत्नी नादेज्दा मेडेलस्टाम ने बाद मे दो महत्वपूर्ण पुस्तको का रूप दिया है। अग्रेजी जैसा अजनबी भाषा के माध्यम से मेडेलस्टाम के गहन गद्य एव उनके दो–टूक विचारो को हिंदी मे प्रस्तुत करना दोहरे जोखिम का काम है इस स्वीकृति के साथ प्रस्तुत है मॉस्को की साहित्यिक गतिविधियो पर मेडलस्टाम के 1922 म प्रकाशित विवादास्पद लेख का एक अश जिसमे बतर्ज पॉप ग्रुप बॉन जोवा, उनके सुपरिचित 'ब्लड एड राजेज वाले' साहित्यिक तेवर साफ दिखाई दे जाएगे ऐसा उम्मीद है। यह बताना भी जरूरी है कि ब्रैकेटो मे के साथ दिए स्पष्टीकरण अनुवादक के हे मेडेलस्टाम के नहीं – जि भा)*

मॉस्को से पकिग के बीच फैला है इस महाद्वीप का विजयोल्लास इस 'मध्य साम्राज्य' की आत्मा, इसकी चेतना। यहा रेल की भारी पटरिया एक अटूट गठबधन म गुथ गया हैं

गाया कि यूरेशियन महाद्वीप अपने नाम का चिरतन उत्सव मना रहा हो।

जा भी इस 'मध्य साम्राज्य' मे अब तक उकताया न हो, उसका मॉस्को शहर में स्वागत होगा। लेकिन कुछ को फिर भी समुद्र की गध ज्यादा अच्छी लगती है और कुछ को इस दुनिया की।

टैक्सी वाले यहा शराबखानो मे ग्रीक फिलास्फरो की तरह चाय पीते दिखाई देगे, मामूली बहुमजिला इमारत की सपाट छत पर रात-दर-रात एक अमरीकी डिटेक्टिव कहानी परदे पर उतरती रहेगी, बूलेवार्ड पर बिना किसी का ध्यान आकर्षित किए कोई बाकायदा सभ्रात नौजवान रोटी-रोजी के लिए 'टॉनहॉसर' की उलझी हुई धुन की सीटी बजाता नजर आएगा और पार्क की बेच पर पुराने 'स्कूल' का एक कलाकार आधे घटे म चादी के मेडल पर आपकी तस्वीर उतार देगा। स्पर्धा की भावना से मुक्त सिगरेट बेचने वाले छोकरे यहा कुस्तुतुनिया के कुत्तों की तरह गिरोहा म घूमते मिलगे और परचून की दुकान की छाह मे सुस्ताते कॉकेशियनो क बीच यारोस्लाव के बाशिदे पेस्ट्री बेचते नजर आएगे। गर्मिया म आयोजित साहित्यिक गाष्ठियो मे भाग लेने वाला तकरीबन हर व्यक्ति यहा अखिल रूसी लेखक सघ का सदस्य निकलेगा और शहर-शहर जाकर कविताओ का पाठ आयोजित करने वाले कवि डोलिड्जे की प्रेरणा आपको गर्मियो के इन महीनो मे अजुरकेटा तक म दिखाई देगी जहा जाकर कुछ करने की असफल योजनाए डोलिड्जे पिछले बारह वर्षो से बना रहे हैं।

जब मायाकोव्स्की ने पॉलीटेकनीक म्यूजियम में कवियो का वर्णानुक्रम से सफाया कर दिया तो श्रोताओ मे बैठे बहुत से नौजवानो ने बारी आने पर अपनी खुद की कविताए पढने की पेशकश की जिससे मायाकोव्स्की का काम काफी आसान हो गया। ऐसा सिर्फ मॉस्को मे ही सभव हो सकता है क्योकि पूरी दुनिया मे शायद ही ओर कहीं ऐसे लोग मिल जो शियाओ की तरह साष्टाग लेट जाने के लिए तैयार बैठे हो ताकि महाघोष का नारा बुलद करने वाले का रथ उनके शरीर के ऊपर से होकर गुजर सके।

यह मॉस्को ही है, जहा ख्लेब्निकोव (*भविष्यवादी आदालन के सबसे मौलिक कवि जिनकी 1922 मे मृत्यु हुई) किसी जगली प्राणी की तरह लोगा की निगाहा से बचे रहने के बाद आखिरकार चुपचाप मॉस्को के अपने मनहूस कमरे को छोड नामालूम ढग से नोवागारोद की ठडी कब्र मे पनाह ले लेते हैं। लेकिन दूसरी तरफ यह भी मॉस्को ही है जहा अक्सेनोव (*एक अन्य भविष्यवादी कवि-आलोचक) उस महान कवि की कब्र पर विश्लेषणात्मक आलोचना का खूबसूरत गुलदस्ता रखते हे जिसम ख्लेब्निकोव के पुरातन-प्रयोगवाद का रिश्ता एक तरफ सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी के पुरातन रूसी नैतिक मूल्या और दूसरी तरफ आइस्टाइन के निरपेक्षता क सिद्धात स जाडा जाता है। इस बीच पीटर्सबर्ग का प्रबुद्ध 'लिटररी हेरल्ड' इस अपूरणीय क्षति की सूचना केवल एक छोट स बस्वाद एव गुस्ताख समाचार के जरिए ही दे पाता है। देखा जाए तो पीटर्सबर्ग म कहीं कुछ गलत जरूर है जो यह शहर आज समय और जगली शहद की जबान को बोलना भूल गया है।

लेकिन मॉस्को के लिए सबसे दुखद पूर्वाभास बनकर आयी है मैरीना तेस्वेतेवा की मैडोना जैसी पच्चीकारी, जो एक तरह से पीटर्सबर्ग की कवयित्री ऐना रेडलोवा की सदेहास्पद औपचारिकता पर जोरदार प्रतिक्रिया व्यक्त करती है। दरअसल मॉस्को की साहित्यिकता का सबसे रद्दी पक्ष है इसकी कवयित्रियो की रचनाए। लगता है जैसे पैरोडी की समूची विस्तृत दुनिया इस शब्द के सारे गभीर एव औपचारिक अर्थों सहित इन कवयित्रियो के पल्ले पड गयी है। स्त्रिया की कविता का उदय गवेषणात्मकता और याददाश्त की एक अनायास पैरोडी की शक्ल मे हुआ है और मॉस्को की अधिकाश कवयित्रिया इसी मुहावरे का शिकार हो चुकी नजर आती हैं। सोफिया पारनोक की ही तरह ऐडालिस और मैरीना तेस्वेतेवा भी भविष्यवक्ता हैं। लेकिन उनकी भविष्यवाणिया एक तरह की घरेलू कशीदाकारी है।

गवेषणात्मकता और स्मृति ये दोनों तत्व कविता मे साथ-साथ चलत हैं। स्मृति भी एक तरह का आविष्कार है। जो याद रखता है उसे हम आविष्कारक मान सकते हैं। मॉस्को की साहित्यिक अभिरुचि की सबसे मूलभूत बीमारी यह है कि उसे इस द्वद्वात्मक सच्चाई का जरा भी इल्म नहीं है। किसी भी कीमत पर केवल गवेषणात्मक बने रहने की महारत हासिल कर रक्खी है इस शहर ने।

गवेषणात्मकता और स्मृति वह मुह और नाक हैं जिनसे कविता सास लेती है। सिर्फ एक योगी ही सास लेने के इन उपाया को अस्वीकार कर सकता है। स्मृति के जरिए कवितामय सास भरने का यह आवेश हमे कहीं-कहा ही दिखाई देता है। मसलन इसे देखा जा सकता है उस उत्साह मे-जिससे मॉस्को ने पच्चीस वर्षों तक कविता लिख चुकने के बाद शुक्र है कि अचानक अपने-आपको एक नासिखिए नौजवान कवि का सा महसूस करने वाले खादासेविच (*मूर्द्धन्य रूसी कवि-आलाचक जो बाद मे पेरिस मे बस गए थे) के नव आगमन का स्वागत किया था।

साहित्यिक मास्को गोया कि सारी सीमाआ को तोड एम ए एफ (*मॉस्को एसोसिएशन ऑफ फ्यूचरिस्ट्स) से 'लिरिकल सर्कल' (*कवियो का एक और आयोजन जिसमे मेडेलस्टाम स्वय भी थे) तक फैला हुआ था। लगता था जैसे एक छोर पर गवेषणात्मकता थी और दूसरे पर स्मृति। एक छोर मायाकोव्स्की, क्रूशनिख और असीव का था तो दूसरे को परिभाषित करने के लिए स्थानीय प्रतिभा के सख्त अभाव मे मॉस्को को पीटर्सबर्ग के अतिथि कलाकारो पर निर्भर रहना पडा था। इसलिए मॉस्को के चमत्कारो के सिलसिले मे 'लिरिकल सर्कल' की तो चर्चा तक करना फिजूल होगा।

आखिर ऐसा क्या है जो विशुद्ध गवेषणात्मकता के इस दायरे मे घटित होता है? अगर जरा देर के लिए क्रुशेनिख जैसे असाध्य और फिजूल से नाम को छोड दिया जाए (इसलिए नहीं कि वे अति-वामपथी हैं बल्कि इसलिए कि दुनिया मे विशुद्ध कूडे का भी अपना वजूद है-बावजूद इसके कि कविता के प्रति अपनी करुणा और गहनता के कारण क्रूशेनिख एक दिलचस्प शख्सीयत हैं) तो हम पाएगे कि विशुद्ध गवेषणा क दायरे म मायाकोव्स्की ने

"अभिजात्य के लिए ही नहीं बल्कि सब के लिए" कविता रचने की इस मौलिक एव मुश्किल गुत्थी को सुलझा लिया है। बेशक कविता के दायरे को इस तरह बढान के लिए उन्हे गहराई, सारगर्भिता और काव्यात्मक तहजीब को दरकिनार करना पडा। अतर्राष्ट्रीय कविता की जटिलता और सपन्नता के बेहतरीन जानकार मायाकोव्स्की ने सर्वजन की कविता को स्थापित करने के लिए पहले हर दुर्बोध्य चीज को यानी हर उस चीज को जो श्रोता से कविता की जरा सी भी समझ की माग करती हो, आग के हवाले कर दिया। कविता का रत्ती भर भी ज्ञान न रखने वाले श्रोताओ के बीच कविताए पढना किसी काटेदार फेस पर बैठने की कोशिश करने जितना ही फिजूल और थका देने वाला काम है। बिल्कुल अशिक्षित व्यक्ति अतत बिल्कुल कुछ नहीं समझेगा। या फिर सारी तहजीब से मुक्त होने के बाद कविता शायद कविता नहीं रह जाएगी, और तब, मानव स्वभाव के किसी अजीब विलक्षण गुण की तरह वह असीमित श्रोताओ की पहुच के भीतर की चीज हो जाएगी। लेकिन इस सब के बावजूद मायाकोव्स्की कविता लिखते हैं, बेहद परिष्कृत कविता जिसमे उनका लहजा, उनका तलफ्फुज उनके मुहावरे, उनकी मात्राए सब अपने स्थान पर सही दिखाई देते हैं। लगता है कि मायाकोव्स्की फिजूल ही अपनी कविता को इतना निर्धन बना रहे है। यह खतरा भी दिखाई देता है कि वे कहीं कवयित्री मे तब्दील न हो जाए। और कुछ हद तक ऐसा हुआ भी है।

जहा एक तरफ मायाकोव्स्की की कविता सर्वव्यापी पहुच की आकाक्षा व्यक्त करती है वहीं दूसरी ओर असीव की कविता मे हमारे युग की व्यवस्थाजन्य बेचारगी दिखाई देती है। उनकी भाषा के चमकदार तर्कसगत बिब ताजा चाभी भरी गयी किसी चीज का सा आभास देते हैं। लेकिन बीसवीं सदी की उनकी यात्रिक कविता और अट्ठारहवीं सदी के नसवार के डिब्बे वाले काव्य म कोई खास फर्क ढूढना मुश्किल है। तर्कसगत यात्रिक कविता दरअसल पागलपन की या अतार्किक कविता की तरह ऊर्जा का सचयन नहीं करती बल्कि उसे गवा देती है। जितनी ऊर्जा शुरू मे थी, उतनी ही स्खलित हो जाती है। किसी चीज मे जितनी चाभी भरो उतनी ही वह खुलती है। एक स्प्रिग मे जितनी ऊर्जा डाली जाए, उससे अधिक का स्खलन नहीं हो सकता। इसीलिए असीव की बुद्धिवादी कविता विवेकशील नहीं बल्कि बाझ और अलैंगिक है। मशीन चाहे जितनी भी अर्थपूर्ण और प्रेरणादायक जिदगी जी ले उसम बीज पैदा होने की कोई सभावना नहीं होती।

इधर मॉस्को मे कविता का आविष्कारक बुखार अब ठडा पडने लगा है। सारे पेटटो की अर्जिया भरी जा चुकी हैं और अब बहुत दिनो से कोई नया पेटेट सामने नहीं आ रहा है। यह अभी समझा जाना बाकी है कि गवेषणात्मकता के साथ स्मृति का दोहरा सत्य उतना ही महत्वपूर्ण है जितना रोटी का यथार्थ इसीलिए मॉस्को मे न एक भी कविता का स्कूल है न एक भी जीवत काव्य आयोजन क्योंकि सारे गुट इस विभाजित सत्य के महज इस ओर या उस ओर चिपक कर रह गए हैं।

गवेषणात्मकता और स्मृति के दोहरे तत्वो न ही पास्तरनाक की कविता को गतिमान किया

है। उम्मीद करनी चाहिए कि उनकी कविता का अध्ययन करते समय बाल की खाल निकालकर उमे उन तमाम काव्यात्मक असगतियो से नहीं गुजारा जाएगा जो ब्लोक के बाद के हर रूसी कवि के हिस्से मे आयी हैं।

देखा जाए तो पेरिस, लदन और मॉस्को जैसे कॉस्मोपॉलिटन महानगर साहित्य के बारे मे आश्चर्यजनक रूप से व्यवहार-कुशल हैं वे खुशी-खुशी साहित्य को एक नामालूम दरार मे छिपने या बिना कोई अवशेष छोडे अतर्ध्यान होने, या फिर बिना वीजा क किसी फर्जी नाम से बगैर पते रहने की इजाजत दे सकते हैं। मॉस्का क साहित्य को विश्व साहित्य के बराबर तौलकर बात करना भी काफी हास्यास्पद है क्योंकि एक का वजूद केवल आलोचक की कल्पना मे है और दूसरे का सिर्फ पीटर्सबर्ग के एक प्रतिष्ठित प्रकाशन सस्थान के नाम मे। (*इशारा मैक्सिम गार्की द्वारा विश्व साहित्य के अनुवाद के इरादे से सस्थापित 'वर्ल्ड लिटरेचर' प्रकाशन गृह की ओर है)। दरअसल मॉस्को तशरीफ लाने वाले किसी आगतुक को अगर चेतावनी न दी जाए तो उसे लगेगा कि यहा साहित्य है ही नहीं। गलती से अगर उसे कहीं कोई कवि टकर भी गया तो वह अपनी बाह हिलाता और बहुत जल्दी मे होने का बहाना करता बूलेवार्ड के किन्हीं हरे दरवाजा के अदर गायब हा जाएगा। और उसका पीछा करती रह जाएगी उन सिगरेट बेचने वाले छोकरा की दुआए, जिनम आदमी की पहचान करने और उसके भीतर छिपी तमाम दुरूह सभवनाआ की शिनाख्त करने की काबिलियत किसी भी और व्यक्ति के मुकाबले अधिक है।

अनुवाद जितेन्द्र भाटिया

इयुजेनियो मोन्ताले (1896 मे इटला मे जन्म। प्रारभ मे ऑपेरा गायक बनना चाहते थे। 1927 म फ्लारस चले गये जहा एक प्रकाशक के लिए काम करते रहे। फासिस्ट शासको का नातियो से सदा असहमत रहे। युद्ध के वर्षों मे अत्यत कठिन परिस्थितिया मे जीवन-यापन। युद्ध के बाद पत्रकारिता से जुडे। 1946 मे चित्रकार का पेशा भी अपनाया। युद्धोत्तर वर्षों म ससार भर की यात्राए। 1968 मे सिनेटर नियुक्त हुए। 1981 मे निधन। युद्धोत्तर समय के इटली के एक सर्वाधिक चर्चित कवि जिनका ससार की सभी प्रमुख भाषाओ मे अनुवाद हुआ है। प्रमुख कृतियाँ 'द प्रोमिम्ड लैंड एड अदर पोएम्स', 'पोएम्स फ्रॉम मोताले', 'इमोटेशस' 'मोताले सेलेक्टेड पोएम्स 'बटरफ्लाई ऑफ डिनार्ड', प्रोविजनल कन्क्लूजस', 'जेनिया', 'द मोटेल्स आफ इयुजिनियो माताले' 'पोएट इन अवर टाइम' 'इयुजिनियो मोताले पोएट्री एड प्रोज', 'स्टोर्म एड अदर पोएम्स' 'सेलेक्टेड एसेज' इट डिपेड्स ए पोएट्स नोटबुक', 'द सेकेड लाइफ ऑफ आर्ट' आदि)।

एक कवि की नोटबुक

–इयुजेनियो मोताले

आदमी को आदमी का साध्य मानने की प्रवृति पहले कभी इतनी ज्यादा नहीं थी जितनी आज है। और यही वह जगह है जहाँ समस्या की जड है। लाखो- करोडो लोग प्यार के लिए तरसते हैं पर शब्द केवल पत्रकारिता के सबसे कुत्सित इलाको मे उच्चारित होता रहता है।

अखबार और किताबे पर्चे और समीक्षाए कैनवास या काँच के टुकडो पर अकित दृश्य और इनके सबके साथ जुडी हुई ध्वनियाँ हम भौतिक हलचला का एक गतिशील प्रभाव देना चाहती हैं। खबरो और अभिप्राया की हम पर बरसात होती है ताकि एक अकेले आदमी को सूचित किया जा सके कि तुम रह सकते हो, हम यहाँ भी हैं।

* * *

आज असख्य अलग अलग छितरे हुए लोग खुद को व्यक्त करना चाहते हैं, जीना चाहते हैं उनकी वैयक्तिकता का कोपल फूटना चाहता है। वे अपना स्वय का जीवन जीना चाहते हैं, उस स्तर तक – भावनाआ और सवदनाआ के उस स्तर तक जहाँ तक उनकी पहुँच है। और इस स्तर पर विशेषाधिकार का कोई प्रश्न नहीं है। सडक पर चलते आदमी को भी उतना ही विशिष्ट होने का अधिकार है। वह भी अपने बारे मे यह भ्रम रख सकता है सच्चाई का जिस तरह वह जानता है वह तमाम बुद्धिजीविया उपलब्धिया से ज्यादा मौलिक है। पर भीड का मनुष्य

भीड की तमाम बुराइयो का शिकार है। हममें से कोई इससे नही बचा है।

*   *   *

इस तथाकथित सभ्य ससार मे (यह सभ्य ससार जो जागरण काल की समाप्ति के बाद से ही विकसित होता रहता है और अब तो अभूतपूर्व गति से विकसित हो रहा है) सबसे खास बात हम पात हैं जिदगी जीने की भावना मे किसी भी दिलचस्पी का अभाव। इस स्थिति का मनुष्य की गतिविधिया से कोई सबध नही है। उल्टे जो शून्य है उसे निरर्थकता से भरा जा रहा ह। मनुष्य की अब मनुष्यता मे अधिक दिलचस्पी नहीं बची है। वह भयावह रूप से उबाऊ बनता जा रहा है।

*   *   *

बहुत वर्षों से कला, सगीत और कविता के क्षेत्रो मे सर्वश्रेष्ठ कलाकार अपनी कला को कुछ कहने की असभाव्यता पर आधारित करते रहे हैं। जो बहुत बोलते हैं वे सबसे बुरे कलाकार हैं नकली कलाकार हैं। यह असभव है कि घुटन की ऐसी अवस्था का इलाज किसी समाज व्यवस्था की औषधि से या किन्हीं नये मानवीय अनुशासना से हा सकता है।

नया मनुष्य बहुत बूढा पैदा हुआ है। वह नयी दुनिया को झल नहीं सकता। जीवन की मौजूदा स्थितियो ने अब तक अतीत के चिन्हा को मिटाया नहीं हे। हम बहुत तेजी से दौडते हैं पर फिर भी कहीं पहुँचते नहीं। दूसरे शब्दो म नया मनुष्य एक प्रयोगात्मक अवस्था मे है। वह देखता है पर विचार करने मं असमर्थ है। वह उस समय से दूर भागता है जो विचारो से बुना हुआ है और इसके बावजूद वह यह अनुभव कर सकता है कि यह उसका अपना समय है - उसका वर्तमान - जबकि वह अपने समय की वैयक्तिक भावनाओ की अभिव्यक्तियो को हास्यास्पद मानता है, उनमे तारीखो की गलती देखता है। उसे या तो पुन अतीत की ओर दोडने का निर्णय लेना होगा (यह असभव है) अथवा उस आर तजी स दौडना हागा ताकि वह एक दिखावटी सचरण अवरोध के बरक्स अतिशय गति का फायदा उठा सके। तेजी से दौडने का मतलब है अपनी स्वय की सस्कृति के बोझ से मुक्त होना पुरानी दुनिया से अपने सबध ताडना। इसका मतलब यह भी है कि वह एक ऐसा प्राणी बन जाये जिसके बारे मे हमे जरा सी भी कल्पना नहीं है।

*   *   *

मेरी कविता का (और मैं एसा मानता हूँ कि किसी भी कविता का) विषय माननीय स्थितियाँ है, न कि यह या वह ऐतिहासिक घटनाए। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि दुनिया मे जो कुछ भी घटता है उससे अपने को हटा लिया जाये। इसका अर्थ केवल इतना है कि एक जागरूकता और एक इच्छाशक्ति को बनाये रखा जाये, न कि जो सारतत्व है उसक बदले जो परिवर्तनशील है उसे अपना लिया जाये। पिछले तीस वर्षो म जा कुछ घटित हुआ है मैं उसके प्रति उदासीन नहीं हूँ पर यह नहीं कह सकता कि यदि घटनाए दूसरे तरीके से घटी होतीं तो

मेरी कविताओ का रूप बिलकुल अलग किस्म का होता। कोई कलाकार अपने भीतर जीवन के प्रति एक खास रवैया लेकर चलता है और इसकी व्याख्या करने म उसका एक खास विन्यास होता है जिसके नियम वह स्वय बनाता है। बाहरी घटनाओ की कलाकार हमेशा थोडी बहुत पूर्वकल्पना कर लेता है पर जब वे वास्तव मे घटती हैं तो एक खास अर्थ मे वे कलाकार के लिए बहुत रुचिकर नहीं रह जातीं। इन तमाम घटनाओ में, जिन्हे मैं 'बाहरी' कहने का दुस्साहस कर रहा हूँ, मरी पीढी के लेखक क लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना फासिज्म थी। मैं फासिस्ट नहीं था और मैंने फासिज्म की प्रशसा म कसीदे नहीं काढे थे पर मैं ऐसी कविताए भी न लिख सका जो उस नकली-क्राति का विरोध करती प्रतीत होतीं। यह सच है कि उन दिनों की सत्ता के खिलाफ कविताए प्रकाशित करवाना असभव था पर सच यह भी है कि यदि खतरा बहुत सीमित या नहीं के बराबर होता तब भी मैं वैसी कविताए नहीं लिखता। अपने जन्म के समय से ही मैं उस तमाम यथार्थ के प्रति एक प्रकार की असगति सी अनुभव करता आया हूँ जो मेरे चारो तरफ है इसलिए मरे लिए प्रेरणा का स्त्रोत कवल वही असगति है। मुझे इस बात से इकार नहीं है कि पहल फासिज्म से फिर युद्ध से और बाद के वर्षों मे गृहयुद्ध ने मुझे दुखी किया फिर भी मेरे पास दुख की ऐसी तमाम वजह थी जो इन सारी सच्चाइयो से बहुत अलग और उनसे परे की थी। मैं समझता हूँ कि असली मुद्दा अपने आपको स्थितियो के अनुकूल ढाल न पाने का है। यह एक मनोवैज्ञानिक और नैतिक असामजस्य है जो बुनियादी रूप से प्रश्नाकुल हर व्यक्तित्व का अभिन्न हिस्सा होता है। जो लोग कला को केवल कलाकार के परिवेश और सामाजिक स्थिति का ही उत्पाद मानते हैं उनके गले यह बात शायद नहीं उतरेगी।

* * *

एक कवि की सलग्नता सपूर्ण होती है और कवि एक व्यक्ति के रूप म किसी राजनीतिक दल का सदस्य भी हो सकता है (यह जरूरी नहीं कि वह सदस्य हो ही) पर कवि के रूप मे वह निश्चय ही 'राजनीतिक' कविताए लिखने के लिए बाध्य नहीं है। वह 'राजनीतिक' कविताए सकता है, उसे लिखना भी चाहिए यदि उसकी अन्त प्रेरणा उससे यह काम करवाती है। पर सामाजिक प्रतिबद्धता कभी भी सकीर्ण अर्थों मे घटित नहीं होती। क्या ऐसे क्रातिकारी लेखक (और कवि) नहीं हुए हैं जो यह सोचते थे कि वे प्रतिक्रियावादी विचारो की वकालत कर रहे हैं? (उदाहरण के लिए बादलेयर और दॉस्तायव्स्की)। कला केवल धारणाओ से नहीं रची जाती। हालाकि ऐसे उदाहरण हैं, जहाँ धारणाए किसी के जीवन का केन्द्रीय हिस्सा बन गयी हों और फिर वहाँ से वे कला की दुनिया मे आयी हैं।

* * *

कलाकार का अलग-थलग पड जाना (अक्सर यह स्थिति प्रचार पाने की एक बेहया प्रदर्शन प्रियता मे भी बदल जाती है) एक ऐसे समय में लाजिमी है जब कर्म और ज्ञान दो विपरीत दिशाओ के यात्री हैं और कभी-कभार केवल सयोग से ही मिलते हैं। भाषा पर सदेह करना

और यह धारणा बनाना कि सारे पुल ध्वस्त हो चुके हैं। कलाओ के अश्लील बनते चले जाने के साथ साथ ही घटित हो रहे हैं। एक सामूहिक चीत्कार म सहभागी होना, एक सर्वव्यापी निषेध का हिस्सा बनना ही जैसे आज एक आधुनिक कलाकार की एकमात्र आकाक्षा है।

* * *

चूकि कविता भी अब उपन्यास की तरह एक औद्योगिक उत्पाद बनती जा रही है स्पष्ट है कि इसमे भी माग और पूर्ति के सबधो की वजह से बाजार की ताकतो स एक हलचल पैदा होगी। इसलिए कविता पर भी किसी दूसरे उत्पाद की तरह का ही सकट है न उससे अधिक न उससे कम। वह यदि चलन मे नहीं है तो अपने सरक्षको को खो देती है।

पर यदि हम कविता को एक आध्यात्मिक किस्म की गतिविधि मानते हैं, तो यह बात प्रमाणित है कि सारी महान कविता का जन्म एक ऐसे निजी सकट से होता है जिसका भान कई बार तो उसक रचयिता तक को नहीं होता बल्कि मैं तो यह कहूँगा कि कविता का जन्म सकट से भी अधिक एक खास तरह के असतोष से–एक भीतरी शून्य से होता है, जिसे उपलब्ध हुई अभिव्यक्ति अस्थायी तौर पर भर देना चाहती है। यही वह इलाका है जहाँ से हर महान कला जन्म लेती है।

* * *

अब ऐसे कवि नहीं हैं जो इस अर्थ मे अपनी बात कहते हों कि उनकी पहुँच 'जनता' नाम के किसी अमूर्त प्रत्यय तक है लोकभाषाओ म लिखने वाले कवि भी अब ऐसा नहीं कर पाते।

एक जीवन्त काव्य रचना के लिए वैचारिक प्रतिबद्धता आवश्यक और पर्याप्त शर्त नहीं है, और न ही वह स्वय म कोई नकारात्मक स्थिति है। हर सच्चे कवि की अपन तरीके से एक प्रतिबद्धता होती है और उसने मुश्किल से चीन्हे जाने वाले नियामको और उत्पादन के मार्गदर्शकों से निर्देश की कभी प्रतीक्षा नहीं की। हाँ यह स्वाभाविक है कि पेशेवर कवियो ने अक्सर अपने सरक्षकों युवराजो और अभय दाताओ के प्रति अपने उद्गार व्यक्त किये हैं पर फिर भी कविता का इतिहास एसी महान रचनाओ का इतिहास भी है जिन्होने किसी भी किस्म की निरकुशता को स्वीकार नहीं किया है। कोई कविता अपन समय मे प्रचलित प्रतिबद्धता के अर्थ को पूरा कर या न कर पर वह अपने समय का प्रत्युत्तर जरूर होती है। गलती यह मान लेने म है कि यह प्रत्युत्तर विद्युत की गति से तेजी से और तत्काल उपलब्ध होना चाहिए। यदि दुनिया मे होल्डरिन क लिए जगह है तो ब्रेष्ट के लिए भी जगह है। एक दूसरी गलती यह सोचने मे है कि कविता क इस प्रत्युत्तर को आकडो से नापा जा सकता है या जिन कवियो के अधिक पाठक है वे ही अधिक महत्वपूर्ण हैं या बाजार की माग को सर्वश्रेष्ठ तरीके से पूरा करना ही सब कुछ है। और,इस तरह हम कविता को कुछ इस तरह की चीज बना देते हैं मानो उसका उद्देश्य बिकना ह।

*   *   *

अन्य जिन साहित्या क मानक मूल्य हैं वहाँ भाषा, प्रयोग, प्रत्यारोपण या व्युत्पत्ति इत्यादि की समस्याए नहीं हैं। प्रत्येक कवि अपन स्वय के ऐस उपकरण निर्मित करता है जिन्ह वह जरूरी मानता है। पर आज सभी कलाओ म हम देख रहे हैं कि तकनीक को बहुत भौतिक अर्थो म समझा जा रहा है। हम एक बात स्वीकार कर लेनी चाहिए कि कला अब बहुत रोचक नहीं रही है और अब उसकी अधिक माग भी नहीं है। कला की असफलता यह है कि अब उसे क्रमिक रूप म और योजनाबद्ध तरीके से नहीं रचा जा सकता। पर उसका मतलब यह भी नहीं है कि कला को एक पेश क रूप म अपनान वाल कलाकार अब नहीं हैं। सच्चाइ तो यह है कि जैसे जैस वास्तविक कलात्मक भावना का क्षरण होता जाता है उसी अनुपात म कलाकारों की सख्या भी बढती जाती है। ये बहुत अधिक सख्या म पैदा होने वाले कलाकार फार्मूला को सीखते और उनका इस्तेमाल करते रहते हैं। इन्ह मार्गदर्शन दिया जा सकता है इनकी दिशाए तय की जा सकती हैं और इन्ह विभिन्न धाराओ के हिसाब से विभाजित भी किया जा सकता है। यदि ऐसे कलाकार मौजूद न हो तो बौद्धिक बेरोजगारी बहुत गभीर समस्याए पैदा कर देगी। सच तो यह है कि अपने साथियो सरक्षको और रिश्तदारा क साथ ये लोग आर्थिक हितो की एक बेहद महत्वपूर्ण सपूर्णता को रचते है।

*   *   *

कविता की बुनियादी प्रकृति ही ऐसी है कि वह धीमी गति से प्रसारित होती है। फिर भी ऐसे नौजवान कविया की सख्या बढ रही है जिन्हान सभी युगा क और सभी तरह के कवियो को पढा है ओर वे यह समझते हैं कि वे किसी भी तरह की कविता लिख सकते हैं। वे यह समझ रह है कि कविता के उपकरण या ओजार ही कविता है। पर शायद मैं अपने समय की तेज गति म निहित अन्य गुत्थिया को अनदेखा कर रहा हूँ। दरअसल जो कवि यह मानता है कि वह काव्यात्मक तकनीक के हिसाब से पारगत ह वह बडी तेजी से अपने लिए स्थान चाहता है सफलता चाहता हे। यह सफलता चाह उसे एक छोटा सा समूह दे या एक साधारण सी समीक्षा। यदि निर्णायका की त्वरित स्वीकृति उसे नहीं मिल रही है तो वह अपनी शैली और अपना तरीका बदलने के लिए तैयार हो जाता है। वह यही मानता है कि ऐसा करते हुए वह स्वय को खोज रहा है, पर वास्तव मे वह केवल उस चीज को तलाश रहा है जो दूसरा द्वारा तुरन्त स्वीकार कर ली जाए जा सबस अधिक बिकन वाली हो।

*   *   *

किसी ने एक समय कविता की परिभाषा यह दी थी कि वह ऐसा स्वप्न है जो तर्क की उपस्थिति मे देखा गया है। यह बात उस समय सच थी और यह ब्लेक, मलार्मे आर 'सानट ऑफ ऑरफियस' लिखने वाले रिल्के क बाद आज भी उतनी ही सच है। हमेशा दो तरह के कविया क बीच एक फर्क मौजूद हागा-एक कवि जा रूपको की एक श्रृखला म कुछ कडियाँ

को खत्म कर देता है, और दूसरा कवि जा हर चीज कहना चाहता है। हर बात समझाना चाहता है। इन विभिन्न प्रकार की गतिविधिया मे तर्क की जरूरत तो हमेशा रहेगी। तर्क का उपयोग और दुरुपयोग तो उन अतियथार्थवादी कवियो के यहाँ भी मौजूद है जो यह दावा करते थे कि उन्होने स्वय को अववेतन की नदी में पूरी तरह डुबो लिया है।

पर यहाँ भी मैं इसका समर्थन नहीं करूगा कि कविता को किसी एक खास तरीके से ही लिखा जाये। मैं नहीं मानता कि केरवेन्टीस या गोगोल बादलेयर से ज्यादा तार्किक थे, मैं यह भी नहीं मानता कि कविता के क्षेत्र मे पतनशील तर्कवाद या किसी और तरह के तर्कवाद के बीच कोई फर्क किया जा सकता है। हाँ, खामोशी के तर्क और कला के तर्क के बीच फर्क जरूर किया जा सकता है – दोना का तरीका वही होगा पर उद्देश्य अलग होगे।

* * *

आज कविता और गद्य की सीमा रेखाए एक दूसर के बहुत निकट आ गयी है। कविता कई बार एक चाक्षुष भ्रम ही लगती है। किसी हद तक एसा हमेशा से ही रहा है। कविता की टाइपसेटिंग में हुई एक गलती कविता को नष्ट कर देने के लिए काफी है। उगारेत्ती की 'रिवर्स कविता मे यदि उसके अक्षर लम्बवत टपकते न रहते तो उस कविता को समझना मुश्किल था। आधुनिक कविता के एक बडे अश को केवल वही लोग सुन सकते हैं जिन्होने उसे पढा भी है।

कविता हमेशा गद्य से जन्मी है और वह उसी म दोबारा लौट जाना चाहती है। यह सिर्फ स्वर और अभिव्यक्ति की सघनता का मामला भर है। शब्द की कला म अर्थछायाओ के अनेक दर्जे हैं, सगीतात्मक सभावनाओ के अनक स्तर हैं और ये सभी इतिहास के केवल एक कालखड मे चुक नहीं जाते हैं। कुछ युग गद्य की बनिस्बत कविताओ के लिए अधिक अनुकूल रहे। जब मौखिक विमर्श की आवश्यकता (जो एक सच्ची कविता भी हो सकती है) प्रमुख होती है वह समय गद्य का होता है, जब ऐसे लेखक प्रकट होते है जो अत्यधिक सगीतात्मक सघनता की ओर उठते चल जाते हैं तो वह कविता का समय होता है। मैं ऐसे युगो की बात कर रहा हूँ जो बहुत छोटे थे और हाल के हैं। अन्य युगो में तो एक लबा तार्किक विमर्श भी पूरी तरह छदबद्ध कविता मे सभव था (उदाहरण के लिए 'डिवाइन कामेडी')। पर उस समय गद्य था ही नहीं। आज बहुत सारी चीजे कविता में नहीं लिखी जा सकतीं – और शायद गद्य मे भी नहीं। 'केन्टोस' या 'यूलिसिस' दाते के चमत्कार को दोहरा नहीं सकते।

* * *

कविता आज की कला म बखूबी अँट सकती है पर आज के समाज मे कवियो की स्थिति? सामान्यतया वह बहुत अच्छी नहीं है। कुछ कवि भूखे मर जाते हैं, कुछ जो दूसरा कुछ काम करते रहते है। वे बेहतर जीवन यापन कर लेते हैं। कुछ कवि निर्वासन मे चले जाते हैं, कुछ अपने पीछे बिना कोई निशानी छोडे अदृश्य हो जाते हैं। बाबेल और मादेलस्ताम कहाँ चले गये?

ब्लॉक और मायकोव्स्की यदि खुद को खत्म न कर लेत ता क्या करते? डायनो कैम्पाना एक पागलखाने मे न जाता तो कहाँ जाता? (मैंने इस सदर्भ को केवल आधुनिक कवियों तक सामित रखा है, यह सूची और भी लम्बी हा सकती है)।

पर ये सभी नाम किसी भी दृष्टि स बहद महत्वपूर्ण नाम हैं। ये आधुनिक कविता के गौरव हैं।

और दूसर अनेक कवियो की वजह से हमे वह अपकीर्ति भी समझ में आती है – वह खदक जिसमे आकर आधुनिक कविता का पशु गिर पडा है। यह केवल समाज की गलती नहीं है, एक बडी हद तक इसमे कविया का भी दोष है।

* * *

दैनिक अखबारो के पृष्ठो से आलोचना का गायब हो जाना लाजिमी है। जो बचा हुआ है वह केवल समीक्षाए हैं जिन्ह बहुत कम लोग पढते हैं। सचित्र पत्रिकाआ मे आलोचक इस तरह है जैसे चर्च में कोई कुत्ता खडा हो। डाक्टरेट की डिग्री के लिए लिखी गयी थीसिस हैं अथवा वे किताब जो कोई पुरस्कार लेने या प्रोफेसरशिप लेने के लिए लिखी जाती हैं और छपत ही निरर्थक साबित हो जाती हैं। कोई भी स्वतत्र आलोचक ऐसे माहौल म कैसे विकसित हो सकता है? वह यहाँ कैसे अपना काम करेगा? कौन उसे जीवनयापन के साधन देगा और उसे कुछ लिखने या न लिखने की सहूलियत दगा? कवल वही आलोचक आज बचा रह सकता है जो औद्योगिक सस्कृति के पहिये का एक छोटा सा पुर्जा बन गया है। जो धारा के साथ बहता है और दूसरे का एवजी चिन्तक है जिसके पास दूसरो के विचार हैं – अपने मित्रा के ग्राहको के, सहकर्मियो के। ऐसे आलोचक सैन्यदल के सिपाही हैं – विशेषकर बुनियादी कलाओ सगीत और नाटक के क्षेत्र मे। लेकिन किसी ऐसे प्रभुत्वशाली, आत्मनिर्भर आलोचक का हाना जिसका बात सुनी जाये या जिसको अपनी दुनिया हो वह भौतिक रूप से ही अब असभव है। आज की दुनिया मे कलाकार (लाखो-करोडा कलाकार) स्वय जन सामान्य की तरह हैं और व स्वय की आलोचना करते रहते हैं। वे अपना यह कार्य किसी दूसरे को नहीं सौंपना चाहत।

('द सेकेंड लाइफ आफ आर्ट
और पोएट ऑफ अवर टाइम से)

लबी कविता

सफ़ेद रात

पुराने शहर की इस छत पर
पूरे चाद की रात
याद आ रही है वर्षों पहले की
जगल की एक रात

जब चाद के नीचे
जगल पुकार रहे थे जगल को
और बारहसिगे
पीछे छूट गये बारहसिगो को
निर्जन मोड पर ऊँची झाडियो मे
ओझल होते हुए

क्या वे सब अभी तक बचे हुए हैं
पीली मिट्टी के रास्ते और खरहे
महोगनी के घने पेड
तेज महक वाली कडी घास
देर तक गोधूलि ओस
रखवारे की झोपडी और
उसके ऊपर सात तारे

पूरे चाद की इस शहरी रात मे
किसलिए आ रही है याद
जगल की रात
छत से झाकता हू नीचे
आधी रात बिखर रही है

दूर दूर तक चाद की रोशनी

सबसे अधिक खींचते हैं फुटपाथ
खाली, खुले, आधी रात के बाद के फुटपाथ
जैसे आगन छाये रहे मुझमे बचपन से ही
और खुली छते बुलाती रहीं रात होते ही
कहीं भी रहू

क्या है चाद के उजाले मे
इस बिखरती हुई आधी रात मे
एक असहायता
जो मुझे कुचलती है और एक उम्माद
जो तकलीफ जैसी है

शहर मे इस तरह बसे
कि परिवार का टूटना ही इसकी बुनियाद हो जैसे
न पुरखे साथ आये न गाव न जगल न जानवर
शहर मे बसने का क्या मतलब है
शहर मे ही खत्म हो जाना?
एक विशाल शरणार्थी शिविर के दृश्य
हर कहीं उनके भविष्यहीन तम्बू

हम कैसे सफ़र मे शामिल हैं
कि हमारी शक्ल आज भी विस्थापितो जैसी
सिर्फ कहने के लिए कोई अपना शहर है

कोई अपना घर है
इस के भीतर भी हम भटकते ही रहते हैं
भूख और प्यास का एक ऐसा सिलसिला है

लखनऊ मे बहुत कम बच रहा है लखनऊ
इलाहाबाद मे बहुत कम इलाहाबाद
कानपुर और बनारस और पटना और अलीगढ
अब इन्हीं शहरो म
कई तरह की हिसा कई तरह के बाजार
कई तरह के सौदाई
इनके भातर इनके आसपास

इन से बहुत दूर बम्बई हैदराबाद अमृतसर
और श्रीनगर तक
हिसा
और हिसा की तैयारी
और हिसा की ताकत
बहस नहीं चल पाती
हत्याए हाती हैं
फिर जो बहस चलती है
उसका भी अत हत्याआ म होता है

भारत में जन्म लेन का
मैं भी कोई मतलब पाना चाहता था
अब वह भारत भी नहीं रहा
जिस मे जन्म लिया

क्या है इस पूरे चाद के उजाले म
इस बिखरती हुई आधी रात म
जो मेरी सास
लाहौर और कराची ओर सिध तक उलझती है?
क्या लाहौर बच रहा है?
वह अब किस मुल्क मे है
न भारत मे, न पाकिस्तान मे
न उर्दू मे, न पजाबी म
पूछो राष्ट्र निर्माताओ से
क्या लाहौर फिर बस पाया?

जैसे यह अछूती
आज की शाम की सफेद रात
एक सचाई है
लाहौर भी मेरी सचाई है
कहा है वह नील का
हरे आसमान वाला शहर बगदाद
ढूढो उसे
अब वह अरब मे कहाँ है?

पूछो युद्ध सरदारो से
इस सफेद हो रही रात म
क्या वे बगदाद को फिर से बना सकते हैं?

वे तो खजूर का एक पेड भी नहीं उगा सकते
वे तो रेत मे उतना भी पैदल नहीं चल सकते
जितना एक बच्चा ऊँट का चलता है
ढूह और गुबार से
अतरिक्ष की तरह खलता हुआ

क्या वे एक ऊँट बना सकते हैं?
एक गुम्बद, एक तरबूज एक ऊँची सुराही
एक सोता
जो धीरे-धीरे चश्मा बना
एक गली
जो ऊँची दीवारो के साये मे शहर घूमती थी
और गली मे
सिर पर फिराजी रूमाल बाध एक लडकी
जो फिर कभी उस गली मे नहीं दिखेगी
अब उसे याद करोगे
तो वह याद आयगा
अब तुम्हारी याद ही उसका बगदाद है
तुम्हारी याद ही उसकी गली है उसकी उम्र है
उसका फिराजा रूमाल है

जब भगत सिह फाँसी के तख्ते क ओर बढे
ता अहिसा ही थी
उनका सबसे मुश्किल सरोकार
अगर उन्हे कबूल होता
युद्ध सरदारा का न्याय
तो वे भी जावित रह लेते
बर्दाश्त कर लेत
और धीरे-धीरे उजडते रोज मरते हुए
लाहौर की तरह
बनारस, अमृतसर, लखनऊ इलाहाबाद
कानपुर और श्रीनगर की तरह।

गगातट

गगातट, शुरू-रात की बेला
उस पार
पेडो की छायाभासी पट्टी के पीछे
चद्रोदय के पूर्वाभास-सा फैला
उजाला
एक बस्ती की बतियो का समवेत प्रकाश-स्वर
जिसे आँख सुनती हैं, अनायास
जब बँध कर देखती हैं
पारतट के क्षितिज पर
ईशान कोण मे
वह तुम्हारा तारा है
यानी मेरा तारा
एक खासा प्रभावान तारा
अभा तक जिसका कोई नाम नहीं रखा गया
मानवीय नाम
तारो की पारस्परिक प्रकाश-तरग-भाषा मे
रह-रह उचरता होगा उसका कोई नाम जरूर
जिसका हमें पता नहीं चलता
बहरहाल वह तुम्हारा तारा है
उसे उन्होने छोड दिया है तुम्हारे लिए
वे- जिन्होने तुम्हारे लिए जगमगाता बाजार सजा रखा है
मायावी बाजार जिसमे
नये जूते की नोक पर जो एक तारा दिपता है
वह ध्रुवतारे से बडा है और ज्यादा चमकीला

वे तुम्हारी इच्छाओ और रूचियो के नियन्ता
तुम्हारे भीतर जरुरते ही जरुरते जगाते

उस तारे को उन्होने
फालतू जान छोड दिया है
फालतू और गैरजरूरी
वह ब्लैकहोल मे बदल जाये, उनकी बला से

पर सच यह कि उस तारक क वहाँ न होने से
बिगड सकता है मदाकिनी का अस्तित्व-सतुलन

वह तुम्हारा तारा है
बाजार की बाँहो की पहुँच से ऊपर बहुत ऊपर
तुम्हारी दृष्टि के भुजपाश मे भर आता हुआ

उसे देखता हूँ मैं
जब तक कि तुम बाजार से घर लौटते हो
उसकी भास्वर कँपकँपाहट मे
आकाश खँगालती वेधशालाओ की दूरबीनो की दृष्टि-छुवन की सिहरन

वह उगा है
अपनी विदिशा मे
एकटक तुम्हे ताकता हुआ
कि तुम अपनी आँखे उठाओ
उसकी ओर
मोडो अपना माथा
बाजारू सदेशो से शिथिल अपना माथा
उसके निर्वाक् मौन के लिए

उस अनाम तारे से भरी आँखे
जब लौटती हैं
गगातट जहाँ बैठा हूँ वहाँ स दिखता है
इकली पुरानी नाव की अजलि मे
घाटो की बाँक पर दिपती रोशनिया के लिए
भरा है स्नेह
कि जिसमे बिजली-बत्तियो का भी अदृश्य बातियाँ
डूबी हैं

यह दृष्टिभ्रम है बेशक
लेकिन कौन कह सकता है दावे के साथ
कि इसमे
दो आँखो के पीछे के मस्तिष्क की इच्छा ही नहीं
उस नाव के मन की चाहत भी शामिल नहीं है

हम जिन वस्तुओं के निर्माता हैं
उनके भी अन्तरग को
हम भला कितना जानते हैं।

सब कुछ जाने हुए लोग
तुम्हे खींचते हैं दूसरी दिशा मे

आनन्द के बराबर अफसोस स भरा हुआ
उठता हूँ
कि दिखता है
बहुमजिली बिल्डिगो के लिए काट डाले जिन्होने
पृथ्वी पर के बरगद
उन्होने
हमारे शीश के ऊपर
छोड दी है सप्तर्षि की छाँह

मित्र मिलन

मित्र को मिलने गया
तनिक अकुलाया, उसके घर

क्योंकि पिछली शाम
जब वह आया था मेरे यहाँ
उसकी आँखे थीं लाल
क्रोध से नहीं और न ही उसने पी रखी थी सही-साँझ
सीधे दफ्तर से लौट रहा था

कम्प्यूटरज्ञ मित्र घर मेरा

लक्षण थे कि उसका रक्तचाप बढा हुआ था
आपे मे नहीं था उसका जी
माथा घूमता-सा था
और चित्त था उचटा-उचटा
जिसे कोई कविता तब बहलाती या सहलाती
जब उसे सुनना गवारा होता
आँकडे केकडो-से रेगते थे उसके दिमाग मे
और उनका 'कमाड' उसे बिसर गया था
जबकि कभी उसका दावा था कि उसके मस्तिष्क का 'माउस'
सदा रहता है उसकी मुट्ठी मे

वह चला गया था, जल्द ही
और अनकहे विषाद की एक अचीन्ह रेख
छोड गया था पीछे
मेरे मन पर

और लो अपने घर वह
तब तक लौटा नहीं था
कम्प्यूटर की आँखो मे आँखे डाले वह
घर से कार्यालय की दो-चार किलोमीटर की दूरी पर नहीं
मुझसे आधी शताब्दी के अन्तराल पर था
चौथी पीढी के कम्प्यूटर से था उसका अपनापा
और कहाँ पहली पीढी के कम्प्यूटर से भी मेरी मुलाकात न थी

बहरहाल फाटक था खुला
और मेरी तरह के किसी अप्रत्याशित की प्रत्याशा मे
एक कुर्सी भी रखी थी
नन्हे-से लॉन मे

मकानो के पीछे
सूर्य डूब रहा था

और झँवा रही थी
जून की तपती हुई धरती

कि अचानक निगाह गई
एक कमरे की खिडकी के बाहर
जहाँ कूलर लगा था
उसक बगल म ही
वह एक चमेली की गाछी थी
जिसकी एक शाख डोल रहा थी हवा मे
उसक आकाशीय छोर पर
वह था एक गिरगिट
एक युवा गिरगिट
पता नहीं नर या मादा
उसकी लम्बी दुम लटक रही थी नीचे
राढ पर का दृढ रोमाच क्षितिज मे दिख रहा था

निकट से जा देखा
एक कोपल को पिछले दाँये पैर की गिरफ्त मे लिये
और एक और कापल को अगले दाँये पैर के आलिगन मे-
गाछ की ओर मुँह किये
उस गिरगिट क दिख रह आँख-गोलक मे
सूर्यास्त का नीला पडा बिम्ब था
जो धारे-धीरे बुझ रहा था
मुँद रही थी उसकी आँख
दिन रहते शयन-मुद्रा मे यहाँ आ जमा था वह गिरगिट
उसके वजन से
चमेली की वह शाख धार-धीरे डोल रही थी

और अचानक याद आया मुझे
निरुक्त मे यास्क का निर्वचन
शाखा होती है ख-शया
आकाश मे सोने वाली
और यहाँ शाखाग्र पर

सोया हुआ यह गिरगिट
जिस चमेली की शाखा
धीरे-धीरे डुल कर
झूला झुलाती हुई

तभी बही बयार जो जुडाती
देखा आकाश मे
पचमी का चद्रमा शुक्लपक्षी
धीरे-धीरे प्रभा पा रहा था
धारे-धीरे डोल रही थी चमेली की वह शाख
सो रहे उस युवा गिरगिट के वजन से
अरे! जाने कब से
सुदूर प्रागैतिहासिक काल से
पृथ्वी पर आदमी के आगमन से पहले से

लोटा मित्र लोटा उससे मिल कर मैं भी
और अब मेरी चिन्ता मे
शयनकक्ष मे चलते कूलर के सम्मुख सोये
नींद की गोली गटक कर भी पहलू बदलते
बिस्तरे की चादर को सिलवटो से भरते
मित्र के बराबर ही शामिल है
कमरे के बाहर खुले मे
बित्ते-भर के लॉन मे
अब तक निफूली चमेली की मनफूली शाखा के
कोपलो-भरे आकाशीय छोर पर
धीरे-धीरे डुलता, सुखनींद सोया
वह गिरगिट।

एक नदी है पहाड़ी

एक नदी है पहाडी
होशगाबाद के रास्ते में
उफनती थपेडे लेती
लील जाने का आतुर
पृथ्वी का सारा मनोरम

और उज्जैन के रास्ते मे है
हादसा की आशकाएँ
उलटी पडी पृथ्वी
क्षितिज पर छितराया खून
अखबारो के मुख-पृष्ठो पर
मौत की खबरे

बेमौत मारे गए आदमियों की खबर से
हलकान हो रहा हूँ मैं
सदियो से
अपने कमरे मे बन्द

यह जो एक पेड है

यह जो एक पेड है
पृथ्वी पर

खोखलापन है एक
इसके तने मे
तने के आकाश मे

आकाश के अँधेरे मे
अँधेरे के अनन्त मे
          अनन्त के विस्तार मे
विस्तार मे है ईश्वर
और ईश्वर मे है एक दगा

अभी-अभी उडी एक चिडिया
अनन्त मे
यह जो एक पेड है पृथ्वी पर
इसकी पत्ती मे सिहरन है
          सिहरन मे भय है

ईश्वर के बारे मे

ईश्वर के बारे मे
जानता हूँ मैं
          इतना ही
कि दगा होता है जब शहर मे
तब ईश्वर होता है
          आकाश मे दौडता
          कानो कान
          घर-घर

          हरेक मे
          हरेक के साथ
          हरेक के विरुद्ध चाकू-चाकू

अपने होने को
साबित करते रहने की कोशिश मे
          होता है ईश्वर
          यो ।

मैं मारा गया

अति उत्साह भरी
भावुकता म

मैं मारा गया
ऐसे समय
जब समय भी समय का साथ नहीं दे पा रहा था।

कुछ भी नहीं था
ऊहापोह म
शब्दो के जाल मे फँसी दुनियादारी
अपने किये पर
पछता रही थी।

ऐसे समय
अतिशय चिता के बरकस धीरज
मुझ मे विसर्जित हो रहा था
मुझ मे असख्य किस्से कहानियाँ
भीड की तरह
आ-जा रहे थे।

चुप्पी साधे
दबे पाँव
अर्थ के अरोह-अवरोह स्वर मुझ मे डूब रहे थे
मैं उन मे डूब रहा था

ऐस समय
विलक्षण भाव से भरी कातरता

मुझे बहुत भीतर
खाली कर रही थी।

अति उत्साह की
पीडा मे

मैं फिर मारा गया।

हरी भरी होती रहती हे पृथ्वी

कितनी बार
बदल जाती है पहचान
जैसे बदल जाते हैं घर द्वार।

कितनी बार
बदल जाता है बदल जाना
बदल जाने मे
सब से जादा फजीहत
भाषा की होती है।

कितनी बार
विस्मय के साथ हँसी खुशी के दिन
आकर ठहर कर
बदल जाता है समय
समय के बदलने के पीछे
कितने अभिनय हो चुके होते हैं-समय मे।

कितनी बार
उजडती दुनिया के सिरहाने
खडे हो कर सोचा जाता है
इस की उजाडता

बदलते बदलते बच जाती हैं सवेदना
छूट जाती हैं कई स्मृतियाँ
निहत्थी!

कितनी बार
बीजो की बेचैनियाँ थामें
अपने को सभालती रहती है पृथ्वी
बदल जाये सब कुछ
अकुरण की अभिशप्त पवित्रता
वह बचाये रखती है अपने भीतर

कितनी ही बार
उजाडता के चलते
हरी भरी होती रहती है पृथ्वी।



पेंटिंग   संगीता गुप्ता

ओडिसिस इलाइटिस (बीसवीं सदी के प्रमुख यूनानी कवि। 1911 मे क्रेट द्वीप में जन्म। एथेस वि वि से कानूनी पढाई और बाद मे 1941 से 45 तक नाजी आधिपत्य के खिलाफ यूनानी प्रतिरोध मोर्चे के नेता। 1940 मे पहला कविता सग्रह प्रकाशित। कुल 11 कविता सग्रह, तीन निबध सग्रह और ब्रेख्त ज्या जेने आर्थर रिम्बो आदि की कृतियो के अनुवाद। 1979 मे साहित्य के लिए नोबल पुरस्कार। प्रमुख कृतियाँ 'एक्सिऑन एस्तो', 'सेलेक्टेड पोएम्स' 'ओपेन पेपर्स' आदि)।

फेडेरिको गार्सिया लोर्का

–ओडिसिस इलाइटिस

कोई भी निर्भय होकर, पृथ्वी को सचालित करने वाली चतुर शक्तियो के साथ, छेडछाड नहीं कर सकता। उन भटके हुए आदमियो के ऊपर जो कि अनत के साथ छेडछाड करते हैं, देवदूत के पखो की छाया पडे बिना नहीं रह सकती। एक दिन ऐसा आता ही है जब रात, खून, चद्रमा भाग्य, पृथ्वी की रहस्यमयी चीत्कारे, प्रेम का देवता, एक पवित्र मानवीय हृदय और पृथ्वी पर उपलब्ध वह सब कुछ जो आकर्षक है लेकिन जिसे चतुर आदमियो ने अस्वीकार कर पवित्र सुदरता को कहीं और से सरचित करने की कोशिश की थी – वह सब लौटता है, एक काले घोडे पर सवार, चादनी से नहाई हुई रात मे कुलाचे भरता हुआ और तब पृथ्वी एक ऐसे ताकतवर गीत की तरह लगती है जो दूर खडे पहाडो के पीछे गूजता हुआ गुम हो रहा हो एक ऐसा गीत जो प्यासी धरती के नाम होगा, या उन लोगों के नाम जिन्होने मुट्ठी भर स्वतत्रता के लिए अपना खून बहाया। तब कविता पुन खडी होती है पवित्र और शाश्वत क्रास के एक टुकडे पर केन्द्रित होते हुए।

सबसे सुदर और सुगठित साहित्य भी इसके आस-पास नहीं फटक सकता। महत्वपूर्ण यह नहीं है कि आप चमकदार मुहावरो को ढूढते हुए किताब के पन्ने पलटे बल्कि जरूरी यह है कि आप अपने आप को एक ऐसी ताकत के साथ एकात्म महसूस करें जो आपको पेड की जडो तक ले जाये जिससे आप दर्द से भर चेहरो को स्पर्श कर सके और अपने लोगों की नसो मे उस ताकत का सचार कर सके, महत्वपूर्ण यह है कि आप एक कवि के साथ अनत, अनगढ और थरथराते हुए विश्व मे यात्रा कर सके, कुछ इस तरह की अनुभूति के साथ जो आपने अपने बचपन म महसूस की होगी। ये अपने वर्तमान स्थान से पूरी तरह स्वतत्र हो जाने के समान होगा या कि पुराने ग्रेनेडा जैसे किसी शहर की सडकों पर अपने आपको पूरी



टिंग सगीता गुप्ता

म इकट्ठा हा जाते हैं। घुडसवार चार पहियो पर टिकी घोडागाडी पर काफी आग की ओर बैठा है जिसकी छत पर सूरज की किरणा से चमकता हुआ चिन्ह ला बेरका थरथरा रहा है।

ला बेरका! सब जानते है कि ये छात्रों का एक ऐसा नाट्य समूह है जो गाव मे प्रदशन के लिए आया हे सबने यह भी सुना है कि इस नाट्य दल की आत्मा लोर्का है, कवि फेडरिको गार्सिया लोर्का जो कि अभिनेता भी है सगीतकार भी, लेखक भी है और निर्देशक भी जिसकी कविताओ ने अदृश्य हाथा से हर समय उनका दिल छुआ है चाहे जितनी भी वार उन कविताओ को सुना गया हो। जल्दी ही सुन्दर लडकिया, बूढे किसाना पसीने से लथपथ आदमियो, नगे पाँव वाले बच्चा और सफेद वालो वाली माँओ का यह समूह रोएगा खुशी से कपकपाएगा जब एक तात्कालिक से बने मच पर लाप डिवेगा या कॉल्डेरोन या लोर्का के ही नाटक खेले जाएग। पहले येर्मा फिर एसिता फिर स्पीच आफ दी फ्लॉवर फिर जब्लेरा प्रोडिजीओसा और अत म प्रसिद्ध बोदास दी साग्र जो आगे चलकर मेड्रिड बार्सिलोना, पेरिस ब्यूनस आयर्स और मैक्सिको म अत्यधिक सफल हुआ। वो उस आदमी की तारीफ करगे जो इन नाटको का खलता है उनम अभिनय करता है और उन्हे दिलकश सगीत से सजाता है ऐसा सगीत जो हर समय लोकप्रिय प्रेम कथाआ पर आधारित होता है। उदाहरण के लिए 'गैलेसियन्स' या 'कान्ते होन्दोस' और अन्त म वे उसकी कविताए सुनेगे जिनमे प्रसिद्ध कविताए रोमनसेरोगिटानो रामान्स देलालूना एव प्रिसिआसा येल आयर शामिल होगी। वे घनीभूत सप्रेषण क ऊपर अपनी कल्पना को स्वतन्त्रतापूर्वक दौडायेगे तब तक जब तक कि वास्तविकता स्वप्न और स्वप्न वास्तविकता न बन जाये।

ईश्वर की कृपा है कि राजधानी के बुद्धिजीवी उनके पक्ष म नहीं हैं न ही अखबार उनकी खुशी मे जहर घोल रहे है, ये फुसफुसात हुए कि "सुबह के कधे प्रकपित नहीं हो सकते" या "तारे घटिया नहीं बन सकते" या "हवा आश्चर्य की बाह नहीं मरोड सकती" और ये सब घटिया पागलपन है।

वे कुवारी आत्माए भावना को अपनी छाती पर झेलती हैं और उसकी सहायता से कठिन से कठिन चीजें समझ लती हैं, शर्त यह हे कि उन चाजा को जीवित होना चाहिए। शुद्ध विचार सिर्फ पुस्तकालयो और मीनारा मे ही सिमटा हुआ रह सकता है।

1898 के नव जागरण द्वारा खडी की गई दीवारो के पीछे से, मिगुएल दे उनामनो की पीढी के – जिनमे आजोरिन पियो बारोजा एव रमो वैले इनक्लान शामिल थे – काम के बीच से दो गहरी काव्य धाराये पहचानी जा सकती हैं जिनका स्रोत सत्रहवीं शताब्दी म था और जो हमार बैचनी से भरे हुए समय म आकर एक डेल्टा के रूप मे परिवर्तित हो जाती हैं। इनमे से पहली, गोगोरा की कविता से उपजती है जो गहरी आध्यात्मिक सवेदना को सकेन्द्रित-सी करती दिखती है और जिसे आगे चलकर यूरोप ने मलार्मे के साथ जोडा ओर जो आज जार्ज गुलेन जैस कवियो मे समाहित दिखती हे। दूसरी अतर्धारा ताजगी और समृद्धि लिये हुए एक लोकगीत की उर्वरता और तात्कालिकता से भरपूर है जो लाप डिवेगा से शुरू होकर हमारे

तरह भुला दिये जाने के समान होगा, जिन पर हम जेब म हाथ डाले कमीज की बटने खोले सीटी बजाते हुए चल रहे होग, शायद उस आदमी के बारे म साचते हुए जिसे उसके सैद्धातिक विरोधियो ने गोलियो से भून डाला था – 37 साल का एक घुमतू आदमी जो सगीतकार अभिनेता और विद्रोही था जिसने एक बार सम्मानपूर्वक झुककर धरती को बोलते हुए सुना था और अपनी बात उससे कही थी। इससे ज्यादा कुछ न सुना जाए- धरती की आवाज कडवी है और हड्डियों तक छेद देने वाली है। मानवता से ओतप्रोत फेडरिको गार्सिया लोर्का की कविताओ को समझने के लिए हमे शायद स्पेन के बौद्धिक और आध्यात्मिक चरित्र को समझना होगा और उन अदृश्य बन्धनो को भी जो कि उसके रूपाकारो को, दृश्यावलियो को ओर ऐतिहासिक चरित्रा को बाधते हैं।

एडमवाद की प्रक्रिया का अध्ययन- जिसे कुछ आलाचको ने किसी प्राचीन स्पानी का एकान्त आत्मा का नाटक कहा है जो अनन्त दूरियो पर स्थित असभव तक पहुचना चाहता है, जिसे अतिम सत्य खोजने का पागलपन हर समय जकडे रहता है और जिसके भीतर नष्ट करने का भाव जीवन के प्रति गहरे प्यार के साथ-साथ उपस्थित रहता है जिसका सबसे प्रातिनिधिक शब्द है नादा (कसाऊ के अनुसार सबसे अधिक स्पेनी शब्द) – ऐसा कोई अध्ययन लोर्का की कविताओ और नाटको के अध्ययन पर ऋणात्मक प्रभाव डालेगा। इसके विरुद्ध स्थानीय रग और लम्बे समय तक अरब तथा यूरोपीय सबधा से उपजी अटपटी, कुछ कुछ झक्की परिकल्पनाओ, को समझना उसके आलोचनात्मक मूल्याकन के लिए बेहतर साबित होगा। 'रोमनसेरो गिटानो' के कवि का काम किसी व्याकरण की पुस्तक से उपजा हुआ नहीं था बल्कि वह अपनी धरती और खून से जुडा हुआ था।

कितन खूबसूरत होते हैं वलेनसियन खेत जब बसत एक नवजात बच्चे की तरह अपनी आँखें खोलता है और धूप भरे दिन नींबू के पत्तों से मेण्डोलिन बजाते हुए गुजरते है। जीवन प्यारा जीवन किसी से शिकायत नहीं करता। खूबसूरत औरते उत्तेजक औरते, गाव के चौक मे धूल उडाते हुए अपने रगीन लिबासो मे नाचती हैं और उनकी आँखे पूरी पृथ्वी का चक्कर लगाती हैं अपने अतिम लक्ष्य की खोज करने क पहले मोटे कपडा म लदे-फदे किसान अपने खच्चरो के साथ खेत पार करते हैं, बाड के ऊपर लटके हुए बिजूके निश्चित आकाश पर अपशकुन की तरह ताकते हैं, चिल्लाते और गालिया बकते नौजवान बैलो को उनके बाडों की ओर खदेडते हैं शनिवार की दोपहर बूढी माँए आँखा म अज्ञात दुख लिये खिडकिया से झाकती हैं तब जबकि वहीं पडोस म नग पाँव बच्च पत्थर फकते हुए शोर कर रहे होते हैं। क्यो वे सब कुछ छोडकर बाडो के ऊपर लटकते हैं या कि खेता मे कूद जाते हैं वे क्या य जानते हैं?

दूर कहीं चरागाह के किनारे उडती धूल के पीछे से एक जुलूस उभरता है और जैसे-जैसे वह पास आता है एक सदेशा पूरे गाव म चक्कर लगाता है एक मुह से दूसरे मुह तक और अचानक खुशी से भरे झुण्ड धूल म लिपटे घुडसवार का स्वागत करने के लिए गलिया

म इकट्ठा हो जाते हें। घुडसवार चार पहिया पर टिकी घोडागाडी पर काफी आगे की आर बैठा है जिसकी छत पर सूरज की किरणा स चमकता हुआ चिन्ह ला बेरेका थरथरा रहा है।

ला बरेका! सब जानते है कि ये छात्रो का एक ऐसा नाट्य समूह है जो गाव मे प्रदर्शन के लिए आया है सबने यह भी सुना है कि इस नाट्य दल की आत्मा लोर्का है, कवि फेडरिको गार्सिया लोर्का जो कि अभिनेता भी है सगीतकार भी लेखक भी है और निर्देशक भी जिसकी कविताओ ने अदृश्य हाथा से हर समय उनका दिल छुआ है चाहे जितनी भी बार उन कविताओ को सुना गया हो। जल्दी ही सुन्दर लडकियो बूढे किसाना, पसीने से लथपथ आदमियों, नगे पाँव वाले बच्चो और सफेद बाला वाली माँआ का यह समूह रोएगा खुशी से कपकपाएगा, जब एक तात्कालिक से बने मच पर लोप डिवेगा या कॉल्डेरोन या लोर्का के ही नाटक खेले जाएगे। पहले येर्मा फिर ऐसिता फिर स्पीच आफ दी फ्लॉवर फिर जब्लेरा प्रोडिजीओसा और अत म प्रसिद्ध बादास दी साग्रे जो आगे चलकर मेड्रिड बार्सिलोना पेरिस ब्यूनस आयर्स और मैक्सिको मे अत्यधिक सफल हुआ। वा उस आदमी की तारीफ करगे जो इन नाटको को खेलता है उनमे अभिनय करता ह और उन्हे दिलकश सगीत से सजाता हे, ऐसा सगीत जो हर समय लोकप्रिय प्रेम कथाआ पर आधारित होता है। उदाहरण के लिए 'गैलेसियन्स' या 'कान्ते होन्दास' और अन्त म वे उसकी कविताए सुनगे जिनम प्रसिद्ध कविताए रोमनसेरोगिटाना रोमान्स देलालूना एव प्रिसिओसा येल आयर शामिल होगी। वे घनीभूत सप्रेषण के ऊपर अपनी कल्पना को स्वतन्त्रतापूर्वक दौडायेगे तब तक जब तक कि वास्तविकता स्वप्न और स्वप्न वास्तविकता न बन जाय।

ईश्वर की कृपा है कि राजधानी के बुद्धिजीवी उनके पक्ष मे नहीं हैं न ही अखबार उनकी खुशी मे जहर घोल रहे है ये फुसफुसाते हुए कि "सुबह के कधे प्रकपित नहीं हो सकते" या "तारे घटिया नहीं बन सकते" या "हवा आश्चर्य की बाह नहीं मरोड सकती" और ये सब घटिया पागलपन है।

वे कुवारी आत्माए भावना को अपनी छाती पर झेलती हैं और उसकी सहायता से कठिन से कठिन चीजें समझ लती है, शर्त यह है कि उन चीजो को जीवित होना चाहिए। शुद्ध विचार सिर्फ पुस्तकालयो और मीनारा मे ही सिमटा हुआ रह सकता है।

1898 के नव जागरण द्वारा खडी की गई दीवारो के पीछे से, मिगुएल दे उनामनो की पीढी के – जिनमे आजोरिन पिया बारोजा एव रेमा वैले इनक्लान शामिल थे – काम के बीच स दो गहरी काव्य धाराये पहचानी जा सकती हैं जिनका स्रोत सत्रहवीं शताब्दी मे था और जो हमारे बैचेनी से भरे हुए समय म आकर एक डेल्टा के रूप मे परिवर्तित हो जाती हैं। इनम से पहली, गोगोरा की कविता से उपजती है जो गहरी आध्यात्मिक सवेदना को सकेन्द्रित-सी करती दिखती है और जिसे आगे चलकर यूरोप ने मलार्मे के साथ जोडा और जो आज जार्ज गुलेन जैसे कवियो मे समाहित दिखता है। दूसरी अतर्धारा ताजगी और समृद्धि लिये हुए एक लोकगात की उर्वरता और तात्कालिकता से भरपूर है जो लोप डिवेगा से शुरू होकर हमारे

आज क अदालूसियन कवियों तक आती है जिनमे राफेल अलबर्टी और सबस ऊपर फडरिको गार्सिया लोर्का शामिल हैं। शायद पहली बार लोर्का म ही एक लोकप्रिय कवि की अवधारणा स्पष्ट होती दीखती है।

लोर्का न तो उस सघर्षशील युवा कवि की तरह है जो कि राष्ट्रीय परम्परा का अनावश्यक रूप से सम्मान करता हुआ लोकगीता की तरह की कविता लिखता है और इस तरह साहित्यिक सफलता प्राप्त करना चाहता है और न ही उस अपढ तुकबन्दी करने वाले कवि की तरह जो सडको पर घूमते हुए कुछ छोटे-मोटे गीता का निर्माण कर लेता है। अपने देश की और यूरोप की काव्य परम्परा आर काव्य सवेदना से लोर्का का काव्य सौंदर्य शुरू से ही बल पाता रहा पर इसी के साथ अपने समय के क्रातिकारी आन्दोलन और उनके विजय के क्षणा स भी वो अनछुआ नहीं रहा। कैसे वह बाह्य यथार्थ स आतरिक यथार्थ की ओर यात्रा करता है, कैसे वह क्रियात्मकता और स्वप्निलता का अतर्विरोध ढहाता है और कैसे वह इस तरह को स्वच्छद छविया गढता है जो एक सामान्य मस्तिष्क की सीमाआ को पार कर जाती हैं (हालाकि ऐसा करते हुए भी वे विशाल और ठोस वैश्विक यथार्थ से जुडी हुई लगती हैं) - ये जानने के लिए उसकी एक कविता 'ओड-टू-साल्वाडोर डाली' पढना ही काफी होगा। काफी होगा यह समझने के लिए कि उसने अतर्राष्ट्रीय सरीयलिज्म के आदोलन से क्या ग्रहण किया और क्या छाडा किस चीज को उसने बदला, अवशोषित किया और किस चीज की उसने आलोचना की या अपने पर्यावरण मे उसे ढाला जिससे उसकी अपनी परम्परा की शुरूआत हो सकी। लोर्का उन सभी आकर्षणा को निरुत्साहित करने म सफल होता है जो उसे अपने भव्य लक्ष्यों से दूर हटा सकते थे।

चरित्र से नवोन्मयी एव क्रातिकारी हान क कारण वा कला मे भी कुछ नया काम करने के लिए जुटा रहा एक एसी नई क्राति जो कि छद्म बौद्धिक आत्मालाप और राजनैतिक प्रचारवाद से अलग काई चीज हो। दिल से एक रोमाटिक निराशावादी होने के कारण वह जिन्दगी की कडवाहट और उसकी रजकता को एक साथ प्रतिध्वनित करता रहा बिना नपुसक किस्म की आलाचना की शरण लिए हुए। इसी के साथ एक कलाकार के रूप म वह घिसे-पिटे सकेतों और अकादमिक मानसिकता से अभिशप्त तकनीका स भी बचता रहा। अपनी कविताओ को एक नए व्यक्तिगत स्थापत्य मे ढलते हुए देखकर मिलने वाली खुशी से वह कभी वचित नहीं रहा। उसका गीत गभीर और मर्दाना है। उसे सुनते हुए हम उस अभिशप्त कवि से बहुत दूर चले जाते हैं जो कि बेवजह ही अपनी बुराईयो को महिमामडित करता है, उन्हे भयावहता की हद तक बडा करता हुआ और अनत तक प्रक्षेपित करता हुआ। हमारा समय एक ऐसे बिलकुल भिन्न किस्म के व्यक्ति को प्रक्षेपित करन का सघर्ष कर रहा है जिसे लोर्का ने अपनी गहरी सवेदना से महसूस कर लिया था। वह हर समय इस तरह जिया जैसे कि कोई अपने लोगों के प्रेम म डूबा हुआ जिप्सी तब तक जब तक कि अपवित्रता के वाहक उस तक पहुच न गए।

रात और चद्रमा हर समय उसकी परिकल्पनाओ म गुथे हुए रहते हैं और एक रहस्यमय वातावरण बनाए रहते हैं एक ऐसा वातावरण जिसमे प्रेमियो की छाया नदी के किनारो पर पड रही है, जिसमे बच्चे घुमन्तू जिप्सियो के बीच स्वप्न देख रहे है, अनिद्रा से भरी हुई औरते ऊची बॉलकनियो से झाक रही हैं और भव्य बौने या देवदूत चुपचाप हमारे बीच काम कर रहे है। 'ऐन ला नोश प्लेटीनोश' यानी विश्व के होने का वह रहस्यमय कारण पेडो, चट्टानों और तारो से भाप बनकर निकलता है और विचार और आदमी की त्वचा के साथ एकमेक हो जाता है। मरे हुए लोगो को अपने पेट मे छिपाय धरती घास का धीरे से स्पर्श करते हुए रहस्यमय निर्देश देती है। लोर्का धरती से प्यार करता है मृत्यु की हद तक। धरती की सतह पर घूमते हुए उसके लोग एक रहस्यमय भाग्य के साथ जुडे नजर आते हैं, एक ऐसा भाग्य जो कि उनकी खुशियो और उनकी महानता के प्रति आक्रामक नहीं है बल्कि उनमे गर्व और भव्यता महसूस करता है, उसके अपने हीरो इग्नेशियो सावेज मीजियाज या वॉल्ट व्हिटमैन की तरह।

रोमान्सिरो गिटानो पूरी शिद्दत के साथ यूरोप मे सब्जेक्टिव कविता के अवसान को रेखाकित करती है। यहा जिस व्यक्ति से हम रुबरू होत हैं वो वायवीय किन्तु चतन- विश्व का सदस्य है, लेकिन फिर भी उसका लक्ष्य अपनी अकेली आत्मा पर जमी हुई काई का विश्लेषण करना नहीं है। वह तो आकाश मे ऐसे जड और चेतन तत्वो की तलाश करना चाहता है जिनके माध्यम से अपने पाठको मे अस्तित्व के निथरे हुए अमृत का सचार कर सके एक ऐसा अमृत जो कि उनके अपने किसी अनुभव या दृश्य सवेदना से भी प्राप्त हुआ हो सकता है। इस परिप्रेक्ष्य मे स्पष्ट है कि वर्तमान काव्य धाराओ को अवशोषित करते हुए और उनमे तादात्म्य बिठाते हुए लोर्का स्वय एक परम्परा बन जाते है एक ऐसी परम्परा जो उन लोगो के लिए आगे भी जारी रहेगी जो लोर्का के उर्वर रास्त पर चलना चाहते हैं।

मैं कल्पना करना चाहता हूँ कि कैस्टिले के असभव से लगने वाले शहरो से आने वाली हवा सिवाय इसके कुछ नहीं करना चाहती कि बरामदो और मेहराबो के बीच से गुजरती हुई धीमे-धीमे गीत गाती, काले बालो वाली महिलाओ के बिलों को छुए और उनके गीतो को धरती के चारो कोनो म अनिद्रा से भरे हुए कवियो के काना तक ले जाये। धरती से प्रेम, आदमी से प्रेम, ईश्वर से प्रेम और मृत्यु से प्रेम अत मे जाकर एक हो जाते हैं। प्रेम- सडकों पर नग-धडग खेलते हुए बच्चा की भावना का और क्या नाम दिया जा सकता है?

ओ पवित्र नीले प्रशात महासागर, ओ नगे जलते हुए अरेबियन समुद्र के किनारों जब तुमने आइबेरिया की धरती का खून और सपनो से इतिहास लिखा तो तुमने वहा के लोगो का भविष्य भी तय कर दिया था, उनकी कविता का रूपाकार और उसकी खुशबू तय कर दी थी। जब हवा धीरे-धीरे उस चट्टान को काट रही थी जिस पर कवि खडा था, तब उसने अपने हाथ म कुतुबनुमा उठाया जीवन ने अपने नाखून उसके खून से रिसते हुए दिल मे गाढ दिये और शब्दा ने जो कि हाड-मास का रूप धरके बाहर निकले थे समय की अनत यात्रा मे

घटने वाली छोटी से छोटी घटनाआ को भी अमरत्व प्रदान कर दिया।

हा, कविता कभी झूठ नहीं बोलती। उन आदमियों पर दया आती है जो लडाई के लिए खदक खादते हैं या रात के अधेरो मे खुशी की तलाश के लिए निकलते हैं। कौनसा नष्ट होना ज्यादा खराब है- क्या आप जानते हैं, क्या आप कह सकते हैं? हमे प्राप्त हाने वाले बहुमूल्य समय मे धरती की गध और भव्यता छुपी हुई है। आदमी की कहानी चलती ही जाता है पेड की छाला, मुस्कुराते हुए बादलों सघन होते लोहे और भयकर ज्वालामुखियों के विस्फोटों के बीच, उन हजारो हजार प्रतिरूपों के बीच जो प्रकृति हमे चौंकाने के लिए रचती है। तारों के पीछे छुपे अर्थ जानते ही एक स्त्री की छाती खुशी से धडकती है।

जैसे ही वह अटपटा विचार एक वैज्ञानिक सत या विद्रोही के दिमाग मे घर करता है दूर से दिखने वाला समुद्र चोटिल बैंगनी रग अख्तियार कर लेता है और किनारे तक आते-आते मछली पकडने वाली नौकाओ को आच्छादित कर देता है, और उसी समय प्रकृति तथा प्रेम के अर्तसबध अनत तक जाते नजर आते हैं। प्रेम- तुम नवयुवकों को मस्तूल से अलग करो, नाविको के बद हुए कान खोलो क्योकि दुनिया की सबसे विनम्र नन के ईश्वरीय काम से बेहतर होगा एक सायरन का बजना।

जीवन अपना ताज अलग तरह से पहने दिखाई देगा अगर हम महसूस कर सके कि हत्या धोखाधडी झूठ और वो सब जिसे हम पाप कहते हैं सिर्फ एक कडवी बहुत कडवी पराजय से उपजते हैं। जब तक कि चेतना पदार्थ मे वापस नहीं लौटती हमे दोहराते रहना होगा कि दुनिया मे कोई छोटे और बडे कवि नहीं- सिर्फ मनुष्य हैं कुछ ऐसे मनुष्य जो कविताए ऐसे लिखते है जैसे वो पैसा कमाते हैं या वैश्याओ के साथ सोते हैं और कुछ ऐसे मनुष्य जो ऐसे लिखते हैं जैसे प्रेम के चाकू ने उनका दिल चीर दिया हो या वो विशाल हरे खेत मे एक घोडे पर सवारी करते जा रहे हो आँखे बद किये हुए प्यास

फेडेरिको गार्सिया लोर्का जिस गोली ने तुम्हे अपने गाव की पत्थर की दीवार क पास गिराया था उसने कुछ हासिल नहीं किया। लोगा की ताकत, जिन्हे तुम प्रेम करते थे, तुम्हारे शब्दो को जिन्दा रखेगी। तुम अच्छी तरह जानते हो कि एक किसान की आँख से टपका आँसू बडे से बडे अकादमिक पुरस्कार से बडा होता है, कि कुहासो से भरी सुबह मे उत्तरी दिशा की ओर चलने वाली हवा के साथ उडते हुए पत्ते सघर्षशील विद्रोहियो के लिए जीवन के ज्यादा मायने रखते हैं- सोने से भी ज्यादा।

(ओपेन पेपर्स से)

अनुवाद सतोष चौबे

फोन पर हालचाल

(विष्णु खरे के लिए)

फोन पर हालचाल क्या बताया जाये
ठीक ही चल रहा है
जो कुछ है अच्छा है या फिर कुछ भी अच्छा नहीं
बतलाने को खास यही है कि समय
कहाँ चला जाता है कुछ पता नहीं चलता
दिन कब रात की विशाल ऐश-ट्रे मे बुझ जाता है
यह सप्ताह भी ऐसे ही एक शिकार की तरह
महीने के जबडे म चला गया
जैसे महीने जाकर समा जाते हैं साल के मुँह मे
क्या कहा जाये एक मनुष्य के भीतर क्या क्या
छिपा रहता है कैसे उसे दिखलाया जाये
सुख कितनी जल्दी दुख मे बदल जाता है
जैसे हथली पर रखा हुआ सिक्का पलट दिया हो अचानक
बाकी यही लगता है कि बात करते हुए भी क्या बात करे
स्मृति कोई बिजली का बटन नहीं है
कि घटी बजते ही आने लगे आवाज
फिर भी किसी तरह काम चलता रहता है
यह सुनकर कि कोई कुछ कह रहा है और उसके पास
कहने के लिए और भी कुछ है
आश्चर्य और खुशी की एक आहट आती और चली जाती है
या कोई अपने साथ हुए हादसे की सूचना देता है
तो कुछ देर को यही लगता है हमारे दौर का नायक
लेकिन कितने कम होते जा रहे हैं एस भी लाग
जो बताना चाहते हो मन का कोई बात
जिदगी चाहे कितना ही कठिन होती जाती हो
और उसकी कहानियाँ और भी टेढी उलझी हुई

जिन्द कभी मिलने पर ही बताया जाये तो ठीक
हालाँकि अब ऐसी तरकीब आने को है
कि बात करते हुए चेहरा दिखता रहे
ताकि आवाज चेहरे को जानने मे भूल न करे
और न चेहरा आवाज पहचानने म
और अब शिकायतो के लिए भी मुलाकात की जरूरत नहीं रही
उन्हे इसी तरह दर्ज कराते रह
तो शायद कभी सुनवाई हो
सभव है प्रेम के अभाव का रोना रोये
तो उधर से एक आवाज सुनाई दे हाँ या नहीं
और खुद से भी किसलिए कहा जाये कि अपने जुनून पर काबू करो
चुप रहो या इच्छाएँ व्यक्त ही न करो
जस जो पुरानी या बचपन की बात हैं
उन्ह सुनाने मे ही बहुत सारा समय बीत जाता है
इसीलिए लोग बात करते-करते चुपचाप फोन रख देते हैं
क्याकि बहुत कुछ इस पर भी निर्भर है
कि हम कितनी देर और कितनी दूर स बोल रहे हैं
उसका उतना ही अधिक दाम लगता जाता है
और जो दूरी हमारे होने मे पैदा हुई है
इसी देह और दिमाग मे
उसकी कीमत क्या हम चुकाते ही रहेगे इसी तरह से।

गाता हुआ लडका

(रघुवीर सहाय की स्मृति मे)

दिल्ली मे वह एक उमस का दिन था
बारह-तेरह बरस का लडका
भीड भरी बस मे गाता था एक खुशी का मीठा गाना
गले म नन्हा हरमोनियम लटकाये
उसकी चारेक बरस की बहन मागती थी पैसा
मुसाफिरो से घूम-घूम कर
जैसे यह भी एक खेल हो उसके बचपन का

लडका बीच-बीच म उसे डाटता अपन पास बुलाता था
कहीं गिर न जाये वह नीचे चलती बस से
वह बार-बार ऊपर करता अपनी फटी पैंट को
जो नीचे को खिसक रही थी
फिर भरपूर गल स गाता था किसा विकल राग क कच्चे-पक्के सुर
जिनम नदियाँ बहती थीं पहाड पिघलत थ
जो बस की गर्मी और ऊँघ कर जगे मुसाफिरो
के ऊपर बादल की सी छाया देते थे

उसके गाने से चुप हो गया वह फिल्मी गाना
जो दिल्ली की बस म कानफोड अश्लील ढग से रोज बजा करता है
यात्री देख रहे थे अचरज से उस नन्हे दीन-हीन को
टूटे थे जिसकी कमीज के बटन किसा औलिया जैसे
और वह गाता था उस्ताद सरीखा
जैसे गाता हो अपनी ही खातिर अपने ही भातर
लेकिन उसकी बहना अपना काम नहीं भूला थी
भाई के गाने के एवज मे आखिर मिल ही गये उसे कुछ पैसे
कुछ महिलाओ ने उस पर खास दया दिखलायी

मैने भी झप मिटान का रक्खा एक रुपैया उसक गूँज रहे हरमोनियम पर
मुझे पता था भीख गरीब को और गिरा देती है नीचे
और इसलिए ज्यादा नीचे गिरने से पहले ही
लडका बस से उतर गया बहन का हाथ खींच कर
शायद किसी और बस मे उस गाने के कुछ ग्राहक मिल जायगे
जिसको गा-गाकर कितने ही सफर किये होगे उसने
आये याद मुझे पडित भीमसन जोशा
आज के बडे प्रतापी गायक जो भागे थे घर से
सगीत सीखने जब वे ग्यारह के थे
क्या यह लडका भी निकला होगा इसी तरह

वह गया हुआ ओझल
रस्ते भर मेरे साथ रही वह मीठा धुन
जिसमे उम्मीदे थीं और खुशी थी

इस तरह महज एक रुपैये में मिली मुझे कविता
घर आकर मैंने वह धुन गायी मन मं और रो पडा
अरे कितना रहा अकारथ मेरा होना
कैसा विचित्र रात मे यह रोना।

जो बोलते हैं

जो बालते हैं जोरा से या ठडी डपटती आवाज मे
कहते हम फलाँ जगह से बोल रहे हैं
उनकी वाते याद रहती हैं दिमाग मे बजती हुई
हम ढोते रहते हैं उनका बोझ
जो बोलते हैं धीमे अपनी किसी दुर्बलता के साथ
कापती हिचकती आवाज मे कभी गुस्से मे भी
उनकी बात कभी-कभी याद आती है
रोजमर्रा के मामूली काम करते हुए
अचानक रुक जाता है हाथ या पैर या दिमाग
एक अकेलापन उठता है भीतर से।

नींद मे चलनेवाला आदमी

नींद मे चलनेवाला नहीं जानता
कि उसे नींद मे चलने की आदत है।

नींद म चलनेवाला आदमी आधी रात गये उठता है
घर भर की सारी बत्तियाँ जला देता है और
बाहर का दरवाजा खोल, निकल जाता है सुनसान सडक पर।
वो सचमुच की सडक पर इस तरह चलता है
जैसे चल रहा हो सपने की किसी सडक पर।
कह सकते हैं कि इस समय वह आधा स्वप्न मे है
और आधा यथार्थ मे।

मैं नहीं जानता कि नींद मे चलनेवाला आदमी
कब किधर, किस दिशा मे निकल जायेगा।
वो किसके दरवाजे पर दस्तक देगा किस की कुडी खटखटायेगा।
न जाने किन लोककथाओ के कौनसे पात्र मिलेगे उसे रास्ते मे।
वो न जाने किन किन छूटी हुई जगहो पर जायेगा
उसकी बेचैन आत्मा न जाने कहाँ कहाँ भटकायेगी उसे।

न जाने वो कौनसी अधूरी इच्छाये हैं कौन से अधूरे स्वप्न
न जाने वो कौनसे तनाव हैं कि नींद मे भी चैन नहीं उसे।

इस समय जब आधी रात ढल चुकी है और वो सडक पर है
उसका माथा चाँद क इतना करीब है कि कभी कभी
जब उसक बाल हवा मे उडते हैं तो चाँद को छिपा लेते हैं।
नींद मे चलनेवाले आदमी के कधे पर एक बादल
इस तरह टिका हुआ है
जैसे कोई बाज उसके कधे पर बैठा हो।

वो आसपास के हर दृश्य से बेखबर है
कोई भी आवाज उसके कानो तक नहीं पहुँच रही है

ऐसे मे अगर अचानक वो जाग जाये तो क्या होगा।
उसकी पुतलियो मे सोती हुई धूप के टुकडे
यहाँ वहाँ बिखर जायगे।

नींद मे चलनेवाला आदमी गुजर जायेगा हमारे सामने से
हम देखते रहगे उसे सशय से भरे हुए कि वो आईना तो नहीं
कि वो हम ही तो नहीं हैं नींद म चलते हुए।

प्रतिध्वनि

अब वो तुम्हारे बोले गये वाक्य के सिर्फ अन्तिम शब्द
दोहराती है।

तुम उसे देख नहीं पाते या देख कर अनदेखा कर जाते हो
लेकिन वो वीरान घाटियो से उदास स्मृतियो से भरे गुम्बदो से
कन्दराओ और सूख चुके कुँओ से लगातार दोहराती है
तुम्हारे वाक्य के अन्तिम शब्द।

तुम वो ही शब्द बोलते हो
जो तुम सुनना चाहते हो बार बार।

कहते हैं एक समय वो बहुत बातूनी थी, कतरनी की तरह
चलती थी उसकी जबान।
बातो के लिये उसे समय कम पड जाता था।

(स्त्रियाँ अगर पुरुषो की तरह कम बोलतीं
तो कितनी सूनी लगती यह धरती
और बच्चे कितनी देर से सीख पाते बोलना।)
वो इतनी ज्यादा बडबड करती कि नदियाँ

उसकी बातो म खो कर बहना भूल जाती थीं।
हवाएँ उसकी बाते सुनने को रुक जाता थीं
बादल गलत पडावो पर अपना डरा डाल देते थे
पर कहते है एक दिन 'हरा'* क श्राप न उसस
उसकी सारी बात छीन लीं।

इसलिए ता घने जगलो म अपना रास्ता भूल कर जब तुम
जार जार स पुकारत थ किसा का
वा सिर्फ तुम्हारे अन्तिम शब्द का दोहरा देती थी
वो जवाब नहीं दे पायी तुम्हार किसा प्रश्न का।

वो एक परछाइ की तरह चलती रही तुम्हारे साथ साथ
उसने खा दिये अपने सपने ओर अपना बातूनीपन
वो जिसे तुम अदेखा करते रह लगातार
वो अपना अनुपस्थिति मे भी रही उपस्थित
और दोहराती रहा तुम्हारे हर वाक्य क अन्तिम शब्द।

दृश्य और बिम्ब

एक सिनेमाघर के ठीक सामने छूटी हुई जगह मे
एक नये माडल की चमचमाती लम्बी कार
एक विकलाग बच्चे को डरा रही है।

कार धारे-धीरे आगे सरक रही हे
और डरता घबराता गिरता पडता
उलटे पाँव दोडने का काशिश कर रहा है
बच्चा।
ड्राइवर मुस्कुरा रहा है और आसपास खडे लोग

हेरा ग्रीक पुराण के अनुसार हेरा देव सम्राट ज्यूस की पत्नी थी जिसने 'ईको (प्रतिध्वनि) को श्राप दिया था कि वो अपने शब्द नहीं बोल पायगी और सिर्फ दूसर के बोले गये वाक्य के अन्तिम शब्द ही दोहरा पायेगी। ईको नारसीसस से प्रेम करती थी।

अदर ही अदर डर रह हैं तरस खा रहे हैं,
पर हँस रहे हैं।

यह एक दृश्य है जो हमारे समय के बिम्ब मे बदल रहा है।

बित्ताभर रोशनी

इस पुटरिया भर धान को लेकर
कौन जायगा ढेका पर कुटवाने ?
यहीं कहीं सडक पर लगा देग ढेरी
दो चार ट्रक या बस का पहिया फिर जायेगा
तो बीन लायेगे दाने।

सुबह सुबह सारे रस्ते पर दिखेगी बाबू
एसी ही न जाने कितनी छोटा छाटी ढेरियाँ।

रात गये काल समुद्र म कहीं कहीं टिमटिमाता
दिखती हैं जो वो हमारी हा लालटेने हैं बाबू
रात अधेरे म हम जात ह पकडन को मछलियाँ
एक आध छोटी मछली बाल-बच्चो के लिय बचाकर
बाकी के बदल खरीद लाते हैं
नमक और मिट्टी का तल।

थोडा सा नमक थोडा सा अन्न
और बित्ताभर रोशनी तो
सबको ही चाहिए न बाबू। '
नई बहू जब आती है घर मे
ता देहरी पर पाँव छुआ
क्या ढुलवाते हैं धान का कटारा?

पर एक कटोरा धान क लिय एक मछली के लिये
चिमटी भर नमक और बित्ताभर रोशना क लिये
कितनी मारा मारी है बाबू इस दुनिया म।

ओरते

वह औरत पर्स से खुदरा नोट निकाल कर कडक्टर से अपने घर
जाने का टिकट ले रही है
उसके साथ अभी जरा देर पहले बलात्कार हुआ है
उसी बस मे एक दूसरी औरत अपनी जैसी ही लाचार उम्र की दो-तीन औरतो के साथ
प्रोमोशन और महगाई भते के बारे मे बाते कर रही है
उसक दफ्तर म आज उसक अधिकारी न फिर मीमो भजा है

वह औरत जो सुहागन बने रहने के लिए रखे हुए है करवा चौथ का निर्जल व्रत
वह पति या सास के हाथो मार दिए जाने से डरी हुई सोती-सोती अचानक चिल्लाती
है एक औरत बालकनी मे आधी रात खडी हुई इतजार करती है
अपनी जैसी ही असुरक्षित और बेबस किसी दूसरी औरत के घर से लौटने वाले अपने
शराबी पति का

सदेह असुरक्षा और डर से घिरी एक औरत अपने पिटने से पहले बहुत महीन आवाज
मे पूछती है पति से – कहाँ खर्च हो गए आपके पर्स मे से तनख्वाह के आधे से
ज्यादा रुपये?
एक औरत अपने बच्चे को नहलाते हुए यो ही रोने लगती है फूट-फूटकर
और चूमती है उसे पागल जैसी बार-बार
उसके भविष्य मे अपने लिए कोई गुफा या कोई शरण खोजती हुई

एक औरत के हाथ जल गए हैं तवे मे
एक के ऊपर तेल गिर गया है कडाही का खौलता हुआ
अस्पताल मे हजार प्रतिशत जली हुई औरत का कोयला दर्ज कराता है अपना मृत्यु-पूर्व
बयान कि उसे नहीं जलाया किसी ने उसके अलावा बाकी हर कोई है निर्दोष
गलती से उसके ही हाथों फूट गई किस्मत और फूट गया स्टोव्ह

एक आरत नाक स यहता खून पाछती हुई बालती है
कसम खाती हूँ मेरे अतीत म कहीं नहीं था प्यार
वहाँ था एक पवित्र शताब्दियो लवा आग जैसा धधकता सन्नाटा
जिसम सिक रहा थी सिर्फ आपकी खातिर मेरी देह

एक आरत का चेहरा सगमरमर जैसा सफद है
उसने किसा से कह डाला है अपना दुख या उससे खो गया है कोई जेवर
एक सीलिग की कडी मे बाँध रही है अपना दुपट्टा
उसके प्रेमा ने सार्वजनिक कर दिये हैं उसके फोटो और पत्र

एक औरत फोन पकड कर रोती है
एक अपने आप से बोलती है और किसी हिस्टीरिया मे बाहर सडक पर निकल जा
है बिना बाल काढे बिना किन्हीं कपडो के
कुछ औरते बस अड्डे या प्लेटफार्म पर खडी हैं यह पूछता हुईं
कि उन्ह किस गाडी मे बेठना है ओर कहाँ जाना है इस ससार मे

एक ओरत हार कर कहता है - तुम जा जी आय कर ला मेरे साथ
बस मुझे किसी तरह जी लेने दो
एक पाई गई है मरी हुई बिल्कुल तडके शहर के किसी पार्क मे
और उसके शव के पास बैठा रो रहा है उसका डढ साल का बेटा
उसके झोले मे मिलती है दूध की खाली बोतल प्लास्टिक का छोटा-सा गिलास
और एक लाल-हरी गद जिसे हिलाने से आज भी आती है घुनघुने जैसी आवाज

एक औरत जो तेजाब से जल गई है खुश है कि बच गई है उसकी दायी आँख
एक औरत तदूर मे जलती हुई, अपनी उगलियाँ धारे-से हिलाती है
जानने के लिए कि बाहर कितना अधेरा है

एक पोधा लगा रही है
एक बर्तन माज रहा है
एक कपड पछीट रहा है
एक बच्चे को बोरे पर सुला कर सडक पर रोडे बिछा रही है
एक फर्श धा रही है और देख रही है राष्ट्रीय चैनल पर फैशन परेड
एक पढ रही है न्यूज कि ससद मे बढाई जाएगा उनकी तादाद

एक औरत का कलेजा छिटक कर थार से याहर गिर गया है
कहता है- मुझ फक कर किसी नाले म जल्दी लाट आना,
बच्चो को स्कूल के लिए जगाना हे
नाश्ता उन्हे जरुर दे देना, आटा मैं गूथ आई थी

राजधानी के पुलिस थाने के गेट पर एक-दूसरे को छूतीं हुई जमीन
पर बैठी है दो औरते, बिल्कुल चुपचाप
लेकिन समूचे ब्रह्माण्ड मे गूजता हे उनका हाहाकार

हजारो-लाखो छुपती हैं गर्भ के अधेरे म
इस दुनिया मे जन्म लेने स इकार करती हुई
वहा भी खोज लती हैं उन्ह भेदिया ध्वनि तरग
और वहाँ भी भ्रूण के अधेरे म उतरती है हत्यारी कटार।

कौए, और लेखक का दिल्ली मे देहात

उन्हे पजावी बाग ले जाया गया है आप साधे वहीं पहुचे
मुझे फान पर बताया गया
रिंग रोड वाली कोई भी बस ले ले राजा गार्डेन के बाद वाले स्टॉप पर उतर जाएँ
वहीं सब इकट्ठा हो रहे है
आकाशवाणी मे कपूर साहब को बोल दिया था उन्होने आश्वासन दिया है दोपहर की
न्यूज म आ जाएगा।
त्रिपाठी जी कोशिश कर रहे हैं कल हिंदी के अखबारो मे भी आ जाएगा
आप भी दस्तखत कर दे शाक सवेदना प्रस्ताव पर
अकादमी तो कुछ करेगी नहीं आप जानते ही हैं चौधरी साहब उन्हे सख्त
नापसद करते थे

राजा गार्डेन के बाद वाले स्टॉप पर दूकाने ठेले और रेहडियाँ हीं दिखीं
वसे और कारे आ जा रहीं थीं
फल बहुत बिक रहे थे हालाँकि धूल उन पर बहुत थी

मैं कहा जाऊ यहा तो कोई एकत्र नहीं है

जो एक साथ दिख भी रहे हैं वे अजनबी हैं एक-दूसरे से, और सब अलग-अलग
जगहों को जाएगे।उनमे कोई शोक भी नहीं दिख रहा किसी निधन का
निगम बोध होता तो आसानी से पहुचा जा सकता था
पता नहीं किसने सुझाव दिया उन्हे पजाबी बाग ले जाने का
हो सकता है सुविधाजनक रहा हो पजाबी बाग
उनके किराये के मकान से नजदीक पडा होगा

कहा जाता है निगम बोध मे बहुत मारा-मारी है
भ्रष्टाचार तो है ही
लकडी कम तौलते है वजन बढाने के लिए गीली कर देते हैं
कौन कितना जला इससे उन्हे क्या? किसकी अस्थियाँ किसके साथ मिल जाये
कौन जाने ?
शवो के साथ लाए गए नारियल तक बेचते हैं हर लाल-बत्ती पर
ठीक है कि पजाबी बाग में यमुना नहीं है लेकिन दिल्ली म अब यमुना भी कहा
सस्कार के लायक रह गई है
गनीमत है यहाँ कि कम से कम कुछ पेड ता हैं और कौवे भी दिखाई देते हैं
कहीं-कहीं बोलत हुए

बहुत देर बाद एक थके और पस्तहाल सज्जन जैसे कोई दिखे
रास्ता पूछ रह थ परिचय हुआ
राजा गार्डेन स पजाबी बाग तक का साथ दिल्ली म बहुत बडा साथ है
जैसे एक पूरी उम्र गुजरती है किसी के साथ
लगा उनका इतना जानन लगा हूँ जितना उनको भा नहीं जानता
जिनका आज सुबह हुआ है निधन

हमने बहुत बात कीं उस दिन दमे के बारे म भ्रष्टाचार के बार म
अपना सताना प्रदूषण महगाई अपराध और दिक्कता क बार मे
और कौवो के भी बारे मे जो अब खत्म होते जा रहे हैं लगातार
मद्रास मे अभी भी काफी हैं उन्हाने बताया
पिछले साल मैं गया था सच पूछिए तो मैं वहाँ
समुद्र नहीं कौवो को ही देखता रहा

मैंने भी निश्चय किया है कि अगर सयोग रहा और भाग्य ने साथ दिया

तो मैं भी मद्रास जाऊँगा
लेकिन आप तो जानते ही हैं कि हिंदी का स्वतंत्र लेखक
अपने वास्तविक पारिश्रमिक के दम पर मद्रास तो क्या
दिल्ली से आगरा भी नहीं जा सकता

लेकिन मैंने निश्चय किया है कि मैं कौवों के लिए अकादमी और संस्कृति सचिव और
मानव संसाधन मंत्रालय के सामने गिडगिडाऊँगा
और साहित्य के नंबर दो रास्ते से इस साल मद्रास जाऊँगा

जहाँ इतना सारा पतन हो रहा है
वहाँ एक स्वतंत्र लेखक का कौवों के लिए
यह पतन आप क्षमा नहीं करेंगे?

शरीर

मेरा एक डॉक्टर दोस्त जो एक अत्यंत प्रखर कवि भी है कहता है–
यह हमारा शरीर केवल एक जीवित इकाई नहीं
कई सौ जीवित इकाइयों का एक जटिल और अद्भुत तकनीक से संयोजित
एक कमाल का संगठन है

किसी बहुत विकसित राज्य के असंख्य संस्थानों न्याय पालिकाओं और कार्य पालिकाओं
हजारों विधि-विधानों और करोड़ों नागरिकों की सैकड़ों भाषाओं और उनकी अनगिनत
क्षेत्रीय और सांस्कृतिक भिन्नताओं
तथा हर नागरिक की अत्यंत मौलिक व्यक्तिगत विशेषताओं के समग्र जटिल-संश्लिष्ट
अंतर्सम्बंधों से भी ज्यादा जटिल रहस्यपूर्ण और संश्लिष्ट है
शरीर की इन इकाइयों का अंतर्सम्बंध

और किसी राज्य के अस्तित्व की तरह ही
अनगिनत संयोगों और संभावनाओं पर टिका है हमारा जीवन

उसके अनुसार हमारे शरीर के हर अंग का अलग है एक जीवन
एक अपना अलग स्वभाव अलग चरित्र, अलग किस्म की जरूरतें

और एक अलग इतिहास

मरा ही उदाहरण लीजिए मरी दायीं आख ने ज्यादा दुख झले हैं अपने जावन म
सबसे ज्यादा उसी म आत हैं आसू
बाया हाथ ज्यादा कापता है दाय के मुकाबले वह ज्यादा बूढा हो रहा है उम्र से पहले

गले म जहा कभा हुआ करता था सगात
एक अँधा कुआँ है जिसम से आता है मरे हुए पाना का भर्राई हुई आवाज
बीमार ओर ढीली हो कर तलवे तक गिर चुका है आत्मा
जिस पर असर नहीं करतीं दुआए न दवाए हर यात्रा म हर बार चुभती है कोई कील
घुटन जानत हैं सीढिया हा सीढिया हैं सारा ससार
इतिहास म दाखिल होने के पहले ही फिसल जाएगा कटोरी

रहा मस्तिष्क तो उसका भी अपनी अलग आत्म-कथा है
उसके कई हिस्से अभी तक उपनिवेश हैं किसी अन्य साम्राज्य क
कुछ हिस्सा मे दिखता हे कोई स्वप्न या दूर कहीं जलता है कोई बल्व
और बुझ जाता ह
एक गम है रोजगार का जा बुखार ह मनिजाइटिस का उसम आता हैं गड्ड-मड्ड स्मृतियाँ
और चीखत है तमाम काटरा म करोडो लोग
यह उच्च-रक्त-चाप है कहता है डॉक्टर

आमाशय ने बचपन से ही बहुत दुख झेले हैं
जीभ की स्मृति म बार-बार कौंधता हे माँ का चेहरा चूल्हे की मद्धिम आँच म
चद्रमा-सा

धुए ओर भूख के पार के आकाश मे दिप-दिपाता
गल रही है किडनी तम्बाकू क निकोटान मे

कलेजा ता नागरिक ह इस गणतत्र का पचास साला से प्रति व्यक्ति प्रति दिन पचास बार
छलनी हो कर हिंदी क मुहावर का सिद्ध करता हुआ

समाज की तरह हा मेर शरीर म भा हो रह हैं अत्यत महत्वपूर्ण ऐतिहासिक परिवर्तन
मेरे नियत्रण स दूर और स्वायत्त अपने ही नियमा म निमग्न
मरे विचारा रचनाआ आकाक्षाओ और सिद्धातो से बिल्कुल अप्रभावित

मैं हू एक दर्शक फकत
अपना ही दुनिया और अपनी ही देह का
अपना ही मरम्मत मे व्यस्त

कइ सौ अगा का चलता फिरता एक जटिल समुच्चय
अपने इतिहास आर रोगो को ढोता एक समस्याग्रस्त ढाचा
इस दिशा से उस दिशा किसी उम्मीद मे किसी उन्माद मे भागता-दोडता
एक उत्पीडित गुलाम गणराज्य

किसी दिन अपनी ही इच्छा या अपने ही दुखो से निष्पद हो जाएगा
काई एक अग
या हो जाएगा इतना स्वतत्र कि तहस-नहस हो जाएगी सारी सरचनाए

कहा जाएगा - कल तक तो ठीक-ठाक था
देर रात तक लिखता रहा कविताए
बिल्कुल भला-चगा था
बस दगा दे गया दिल।

कूट

दैनिक के पहले ही पृष्ठ पर छपा हुआ है
एक बडा-सा फोटोग्राफ

एक उदास स्त्री बैठी है एक समाधि स्थल के निकट
उसका पूरा कुटुम्ब मारा गया
नृप-तत्र के कुटिल षडयत्र और मर्मातक रक्तपात मे

बैठा है बगल मे गबन ठगी जालसाजी और गुप्त धन सग्रह के
अभियोगो म घिरा महामात्य
पीछे है रक्षापति जिस पर राजकोष से सारा स्वर्ण निकाल कर
भोथरे जर्जर और प्राचीन मोर्चा खाए अस्त्र-शस्त्र क्रय करक

अपने ही सैनिको की मेषा की भाति शत्रु के हाथो हत्या करवा देने का आरोप है

अर्द्ध वृत्त मे बैठे हैं समूचे राज परिषद के सदस्य
जिनके कृत्या पर बैठी हैं जाँच समितियाँ सिद्ध हो चुके हैं दर्जनो अभियोग
क्रुद्ध प्रजा और युवा विद्रोहियो से अपनी सुरक्षा के लिए उन सबको
चाहिए अभेद्य सुरक्षा व्यवस्था
जनपद की गलियो मे प्रजा के हाथो असुरक्षित हैं उनके प्राण

यह किसी राज्य-नायक का मृत्यु-दिवस है
कैसे कहे पुण्य-तिथि रोकते हैं नैतिक सस्कार

प्रश्न लेकिन यह है कि यह समूह चित्र
क्या कोई रूपक है इस गणराज्य का कोई अत्यत सरल अभिधार्थ
या बहु-अर्थी कोई कूट प्रतीक इस यथार्थ का
हमे लज्जित और ग्लानि मग्न करता हुआ

ऐसा है काल जहा सब कुछ है भग्न
या तो फिर सारा का सारा है नग्न

नमस्कार

पानी अगर सिर पर से गुजरा, आलोचको
तो मैं किसी दिन आजिज आकर अपने शरीर को
परात मे गूथ कर मैदे की लोई बना डालूगा
और पिछले तमाम वर्षों की रचनाओ को मसाले मे लपेट कर
बनाऊगा दो दर्जन समोसे

और सारे समोस आपकी थाली मे परोस दूगा

तृप्त हो जाएगे आप और निश्चित
कि आपके अखाडे से चला गया
एक अवाछित कवि-कथाकार

नमस्कार!

काई भरी अतिम सीढी पर
पीछे है जीवन, आगे मृत्यु का भँवर
नहीं जानता था मेरा होना न होना है निर्भर
एक हैवान की सनक पर
कि खिलखिलाता अशोक
मेहमान है एक ही वार का
रात मे दो बजे रुकेगी जीप अचानक
और सुबह नालो मे कुत्तो की लाशे
चींटी की जिन्दगी चुटकियो के बीच
हाथ के झोक पर मक्खी की जिन्दगी
मैंने उन्हे देखा आँख उठा के
जिनकी हथेली पर लिखा भाग्यफल मेरा
जिनके हाथ मे नक्षत्रो ग्रहो की रास
ये सारा खेल तमाशा ये चुम्बन हाहाकार
मेरा नाम ये पवित्र जीवन
गदे गिलगिल होठो की लार।

पुतली में ससार

और मैं देखता हूँ तो मुझे केवल पुतली नहीं
पूरी आँख दिख रही है गुरुदेव
और मछली और वह खम्भा
और आकाश और आप और ये सब जन धनुर्धर
इतनी भीड इतनी ध्वनियाँ
और मैं तो केवल नीचे ताक रहा हूँ
फिर भी पूरा आकाश घूमता लग रहा है
और मुझे मछली की पुतली म घूमती
एक और छवि दिख रही है देव
किसकी छवि है यह
मछली किसे देख रही है
और कोई मुझे उसके भीतर से देख रहा है
मेरी पुतली पर इतनी छायाएँ
इतनी बरौनियो इतने पत्तों की अलग अलग छायाएँ

कुछ मछली की चर्बी की गंध लग रही है देह
मेरी देह में इतनी गुदगुदी
इतने पंखों इतने डैनों की देह में इतनी गुदगुदी
लगता है मैं गले तक डूब रहा हूँ
सारी स्थिति निष्काम हो रही है
ढीली पड़ रही हैं उँगलियाँ
पसीने से मुट्ठी का कसाव कम
दो दाँत हिल रहे हैं
कंठ सूख रहा है
मुझे तो देखना था बस आँख का कमाल
और मैं इतना अधिक सब कुछ क्यों देख रहा हूँ देव।

रात की गाथा

नरेन्द्र जैन

कलकत्ते मे फुटबाल

वह फुटबाल के मैदान का रोमाच
लगभग जुनून मे डूबे दर्शक
बिजली की तरह कौंधता वेग फुटबाल का
धूल और पसीने मे लिथडे
धावक खिलाडी
गिरते बार-बार और
भागते फुटबाल के पीछे
जैसे अपनी धुरी से बार-बार उछलती
टप्पे खाती पृथ्वी

कहीं रखी होगी
वह फुटबाल
जिसके चमडे पर होगी
आल्बेयर कामू के हाथो की छाप

खेल के दौरान वे ध्वज नहीं होते
लगभग राष्ट्र उठाये जाते कधो पर
स्टेडियम मे कोरस की लय
लगातार उठती
समुद्र मे ज्वार की तरह उठते हाथ
प्रकाश की गति से दौडता
धावक पिण्डलियो में लहू

कलकत्ता गतिमान है जैसे फुटबाल
नजरे दौडतीं एक टप्पे से दूसरे टप्पे तक।

सभवत:

कुछ लिखे इससे पहले ही चीखने लगती है कलम
वहाँ होता आर्त्तनाद शब्द के उच्चारित होने से पहले
कोई सवाद अब पूरा नहीं होता
साफ-सुथरे चमकीले शब्दो से
भाषा के अधड मे उडता अर्थ
लगभग जैसे दिशाहीन पत्ता
इस ऊची सीढी की सबसे निचली पायदान पर लोग
धूल-मिट्टी-पसीने और थकान स लगातार लिथडते
तय है कि अगली पायदानो पर पहुचे सभी
कुचलते आये हैं उन्हे

गहरी अनुनय के साथ
अपनी तकलीफों का आभास लिए
करते लोग अपनी सबसे पेचीदा तकलीफो का वर्णन

शुक्र मनाओ कि नहीं ऊबे
आवेदनो की करुण भाषा से वे
कुछ कहते, कुछ लिखते, कुछ निवेदित करते
कर लेते अपने दुखो का भार हलका इस तरह

आवेदन के सबोधन
करते व्यक्त पीडा
सीढी-दर-सीढी त्रस्त रहे आये जो

यहाँ भटकते आवेदन भाषा की जर्जर बैसाखी लिए
सभवत
कल समाप्त हो आवेदनो की यह प्रथा जो
मरणासन्न रही आयी
हो दरकार
सभवत कल
वह सीधी
शब्दहीन
कार्यवाही

प्रस्तावना

एक सरल दिनचर्या का अभ्यस्त
मैं
जटिल तरीके से मारा गया
उत्सव दूर होते चले गये
शब्द होते गये
शोकगीत की प्रस्तावना

जीवन का उजाड़ शायद इसी को कहा जाये
स्थलों का उजाड़ रूदन से भर देता मुझे

इस रक्तहीन हथेली पर
जीवन के हाथ का अंतिम छापा
इस तरह मिलाया हाथ उससे मैंने

शोकसभा की शुरूआत में
इतना अनौपचारिक रहा आया

उत्सव का कारण
वहाँ ढूंढ लिया मैंने

यात्रा

हर जगह फैला हुआ है भ्रम
जितनी चीजें हैं उतने ही भ्रम
संदेहास्पद लोगों में हुआ शुमार
सबसे पहले मैं ही
यह भी अच्छा हुआ

सारे भ्रमों को छोड़कर

एकाएक गुजरा एक शख्स
धीरे-धीरे
लकडी का एक पैर लिए

मुलायम पजे का वह पहला स्पर्श
और लकडी के पाँव का वह अगला
ठकठकाता स्वर

यात्रा वह शब्द हुआ
जिसकी गूज
दिगत तक सुनायी देती रही

आप बीती

सामने आता है जब कोई
उसके साथ पूरा कालखण्ड चला आता
दुखो की एक दीर्घ परपरा
किसी की आपबीता सुनते हुए
खामोश ही रहा करता मैं

बयान करते अपना दुख
वह गहरे विस्तार मे चला जाता
वह कहे सक्षेप मे
बहुत कुछ केवल सकेतो मे

कभी देखता मेरी ओर विषादपूर्ण आँखो से
शब्द जान पडते अनुपयुक्त
शब्दो के बगैर वह खालीपन
देखा नहीं जाता

मैं जो आदी हो चुका शब्दो का
किसी तकलीफदेह वृत्तात मे

निरंतर पसीटता हूं उन्हें
फिर भी छूट जाते हैं स्थल
जहाँ रख नहीं पाता मैं शब्द

बहुत कुछ कह दिया करता
वह विषाद जो उसके
चेहरे से ढलकर इस ओर आता।

नींव

किसी भी पल
भरभराकर ढह जायेगी यह नींव
इतिहास के सारे संदर्भ
और तारीखवार ब्यौरे
क्रूरता घृणा और दरियादिली के किस्से
दब चुके होंगे इन पत्थरों के नीचे

खालीपन ने पहन रखी है
ठोस पत्थर की शक्ल
यह नींव और उस पर खड़ा यह जर्जर किला
जैसे कांपता याचना करता कोई

मैं जहाँ हूं वहाँ जमीन
जमीन से दूर होती जाती

जब
भरभराकर गिरेगा यह किला
इसके आकार का आसमान
अधिक उजला दिखलायी देगा।

भापाहीन पड़ावों पर

हर रोज धूप सुखा जाती है चेहरो से थोडी मुस्कुराहट
सपनो से उम्मीद के रग। भाषा से करुणा। सबधो से विश्वास।

मुझे कुछ शब्दो का इन्तजार है। इन्हीं दिनो। उन्हे हमारी परास्त स्मृतियो से
निकलकर आना है। नृशसता की इस ऋतु मे।

लालसाओ के भारी जलयान को समुद्र की तलहटी मे
ले जाते शराबी दोस्तो के जाने के बाद। कोई किस्सा बयान करना जरूरी होगा।
जरूरी होगा जोर से कुछ कहना।
धुँधले भाषाहीन पडावो पर।
चीख पडना। या बिना सकोच के रो पडना कम से कम।
स्तब्धता को तोडने के लिए। जो जाते हुओ की पीठ से लटकती।
रस्सियो से कस लेती घसीटती जाती मेरी आत्मा का क्षत विक्षत घट।

असमजस के बीचोबीच मेरी उगलिया। नोचकर फेकती हैं।
छिलके सा काली रात। साथ चलती छायाए लिए।

इन्हीं हालात मे

अक्सर। जब निरीह भलो की जान ली जाती है
तो बडे करीने मे पैदा की जाती है वैसी कोई बात।
कि लगे आमफहम दुर्घटना। और यह भी कि
पिछला जुलाई में। या उससे पहले। या उसके बाद भी।
कई बार। कैसे हम बचे थे बाल-बाल इन्हीं हालात मे।

प्रागैतिहासिक पशुओ का सामना करते हुए।

फिलहाल जीवन है जिस तरह का। उसमे। यह बात बात बचना
मुहावरा भर नहीं है।

जान लो जाये और लगे। कि गयी जैसे जाती है। या
जानी ही थी। कुछ भी न खटके सुबह की चाय पाते। या
रस्मी तौर पर घर से निकलते बच्चों की तरफ हाथ हिलाते।
गरीब के विरोध की। सकल्प की पवित्रता।
दिखाई दे हास्यास्पद या कि दकियानूसी अबोधो की।
लगे। होता हुआ सारा जायज है इस मध्य प्रदेश म।

तो वहीं से। शुरूआत होती है। आत्महत्या की। किश्त दर किश्त।
धुधले होते आइनो मे। जो नहीं दिखती किसी सूरत। और
जिसे कहने जतलाने का कोशिश मे। देर रात गये। या
मनहूस खबरा म लुकती छिपती। मन के निचाट मे।
दरवाजा पाटती है कविता। अपना सर्वस्व जलाती हुई।

स्वर्ग में सुख

स्वर्ग मे कोई दुखी नहीं है
किताबो मे लिखे इस आप्त वाक्य से
स्वर्ग मे किसी के सुखी होने या न होने पर
तत्काल कोई रोशनी नहीं पडती।
यानी किताबो के वर्णित स्वर्ग मे
सोमरस कल्पवृक्ष और अप्सराओ वगैरह के बावजूद
सुख के वजूद का कोई वर्णन नहीं मिलता।

अब एक सहज जिज्ञासा यही है
कि जो है वहाँ
उसे सुख किस वजह से कहा जाये
कि कौन जान सकता है उसे
एक दुखी के अलावा।

किताबो से जरा हटकर
इस बारे में एक अनुमान यह है
कि स्वर्गवासियो को
दुख के अनेक प्रकारो मे से
कम से कम एक सालता है बार-बार
कि जो है वहाँ उसे जाने बिना
सुख कहना पडता है हर बार।

वैसे इस आधे अधूरे अनुमान का कोई आधार नहीं है
किताबे ज्यादा ठोस हैं इस बारे मे
जो कहती हैं स्वर्ग मे कोई दुखी नहीं है
और ज्ञानियो के मुताबिक
यह पूरी शाब्दिक सरचना एक कूट वाक्य है

और जिसका अर्थ है कि स्वर्ग म सुख है
और इसमें कोई विवाद नहीं होना चाहिये।

स्वर्ग मे कोई दुखी नहीं है
किताबो मे लिखे इस आप्त वाक्य से
अगर यह आशय निकाल भी लिया जाये
कि चलो कोई सुख है वहाँ स्वर्ग मे
तो निश्चय ही वह लौट आता है बार बार
कि धरती पर अपार दुख हैं
और उन्हें सुख की पहचान करने में
एक क्षण भी नहीं लगता कभी।

स्वर्ग मे दुखी होकर
अपरिचित सा भटकता सुख
अपनी पहचान के सुख से सुखी होता है
इसी धरती पर।

(एक बौद्ध कथा के आधार पर)

- मनुष्य की कोई कथा कहें भंते।
- मनुष्य की कथा कैसे संभव है आनंद? उसके पास दुख ही दुख हैं।
- तब देवताओं की कथा कहें भंते।
- देवताओं के पास सुख है आनद। कथा उनके पास भी नहीं।

हमारी मौत असली थी

क्योंकि हमारा इतिहास नकली था
हमारी चिन्ताएँ नकली थीं

क्योंकि हमारी चिन्ताएँ नकली थीं
हमारी हँसी नकली थी

क्योंकि हमारी हँसी नकली थी
हमारी मौत असली थी।

सपने मे सपना

सपने मे
मुझे सपना आया
मैं बचपन मे पहुँच गया

लेकिन वह मेरे बच्चे का बचपन निकला
उसमे मैं उन खिलौनो से खेल रहा था
जो मैंने अपने बच्चो को दिलाये थे

मैं ठीक अपने बच्चे की तरह ठुनक रहा था
लेकिन माँ मेरी ही माँ निकली
उसे मेरा ठुनकना बर्दाश्त नहीं था
उसने मुझे पीट दिया
बदले मे मैंने उसका हाथ काट लिया
रो-रो कर उसने मुझे ढेरो बद्दुआएँ दीं

हकीकत यह कि मैं 47 साल का अधेड
कुछ असफल,
कुछ सफलता के चूतिया-चक्कर मे फसा
कुछ गधा, कुछ दूसरो को गधा समझने वाला
मैं अपनी माँ के सामने टिक नहीं पाया
मैंने हथियार डाल दिए।

जब मैं हताश जागा तो पसीने से तरबतर था
लेकिन फिर मुझे अच्छा लगन लगा
कि मैं एक मध्यवर्गीय हूँ
जिसका कि अपना शहर मे एक फ्लैट है
जिसकी कीमत बढती है हर साल
जिसके बच्चो ने कभी माँ को गुस्से मे नहीं काटा
जो हकीकत को भूलकर हकीकत मे जिये जाता है
देखता जाता है स्वप्न-दर-स्वप्न
अपने बचपन से जो कभी मुश्किल से ही टकराता है
जो अपनी माँ को एक फिल्मी माँ की तरह याद करता है
उसकी पूजा करता है
फोटू के आगे चदन अगरबत्ती जलाता है
ताकि माँ उसकी यादो मे लौटकर
उसका खाना न खराब करे।

तोदुयुश रौजेविच (1921 मे रोडोमस्को में जन्म। युद्धोत्तर यूरोपीय कविता क सर्वाधिक चर्चित कवियों मे एक। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान भूमिगत सैनिक दस्तो के साथ रहे और छिपे तौर पर कविताए प्रकाशित कराते रहे। युद्ध के दौरान नाजियो के खिलाफ सघर्ष। युद्ध के बाद कला के इतिहास का अध्ययन। कविताओ के अलावा नाटक, कहानियाँ और उपन्यास भी लिखे हैं। 19 कविता सग्रह प्रकाशित। 1966 मे पालैंड सरकार का राजकीय साहित्यिक पुरस्कार। प्रमुख कृतियाँ 'पैसेज ऑव एग्जाग्टी', 'द रेड ग्लाड' 'फाइव पोयम्स एड इमेजेज', 'द प्लेन', 'सिल्वर ग्रेन', 'कलेक्टेड पोयट्री', 'एन अनफिनिश्ड एक्जेमिनेशन', 'सेलेक्टेड शार्ट स्टोरीज', 'व्हाइट मैरेज एड अदर प्लेज' आदि)।

मनुष्यता के पदचिह्न

–तोदुयुश रौजेविच

क्या 1989 का, जिसे 'क्राति का वर्ष' कहा गया है, कला और साहित्य पर कोई प्रभाव पड़ा है? मैं वर्ष 1889 को वर्ष 1990 से जोडना चाहूगा क्योकि यह समय एक विशाल धारा में विलयित हुआ है। उस अवधि के दौरान जो कुछ घटित हुआ था या जो घट रहा था और हमारी आँखो के आगे आज भी घट रहा है, हम उसे समाचारपत्रा और टेलिविजन के मार्फत जानते ही हैं। इसलिये मैं घटनाओ का कोई इतिवृत नहीं दूगा। तो क्या पूर्वी यूरोप मे हुए राजनीतिक परिवर्तनो का कला और साहित्य और सगीत पर कोई प्रभाव पडा है? मेरा जवाब है – नहीं। हाँ, कुछ नयी पत्रिकाए और नयी किताबे जरूर सामने आयीं पर ऐसा नहीं हुआ कि साहित्य, कला सगीत या थियेटर मे भी कोई नये रूपविधान सामने आये हो। साम्यवाद विरोध किन्हीं नये कला रूपों को सामने नहीं ला पाया। यदि हमे यह जानना है कि कला के क्षेत्र मे क्या घट रहा है तो हमे वस्तु की बजाय रूप को जानने का यत्न करना है। बेहतर यह कि मैं अपनी बात को अपने देश और अपने निजी अनुभवो के सदर्भ तक सीमित रखूँ। पोलैंड में नाटक और थियेटर पर उन कलाकारो का प्रभुत्व है जिनकी युवावस्था और कलात्मक प्रौढता को दूसरे विश्व युद्ध के तुरन्त बाद आकार मिला है।

यदि मुझे छात्रो और शिक्षको के लिए कोई सास्कृतिक, कलात्मक और साहित्यिक कैलेडर तैयार करना हो तो मैं परिवर्तन की घडी को थोडा पीछे ले जाना चाहूगा– 1969 में। मई 1968 में हुई 1968 क्राति और वर्ष 1969 की क्राति ने उस विस्फोटक कच्चे माल को तैयार किया था जिसने सही अर्थों मे दीवारो को धराशायी कर दिया। कवल बर्लिन की दीवार ही नहीं, बल्कि वे सभी दीवारे गिरीं जो पूर्वी यूरोप के देशो, सोवियत रूस और पश्चिम यूरोप के बीच

सीमा रेखा खींचती थीं। केवल राजनीतिक संधियाँ ही नहीं, बल्कि थियेटर, कविता और संगीत के कलारूपों मे भी 1969 के काफी पहले ही एक ध्वंस शुरू हो चुका था और हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि ऑरवेल, कोस्लर और दजिलास की किताबें सोल्जेनित्सिन और कोलाकोव्स्की की किताबों से करीब चौथाई सदी पूर्व आ चुकी थीं।

कला मे ध्वंस और अराजकता राजनीति के क्षेत्र के ध्वंस और अराजकता से कतई अलग होते हैं। आर्थिक क्षेत्र की टूटन और अराजकता वही नहीं होती जो सभ्यताओं और परम्पराओं मे घटित होती है। समय को देखने वाला एक सतही दर्शक ही मार्क्सवाद, साम्यवाद में ध्वंस और कालाकोव्स्की, सोल्जेनित्सिन और मिवोश में भौतिकवाद के स्रोतों को ढूढता रहता है। इन स्रोतो को काफी पहले से ढूढने की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए ओस्वाल्ड स्पेगलर म, उसके मौलिक कार्य 'डिक्लाइन इन वेस्ट' मे जो *प्रथम विश्वयुद्ध के तुरत बाद प्रकाशित* हुआ था। यात्रिक शिक्षा और असावधानी से की गयी पढाई सतही निर्णयो, विश्लेषणों और निष्कर्षों की ओर लेकर जाती है। यह स्पेगलर था जिसन कहा था "मजदूरो को मार्क्सवाद के भ्रम से आजाद हो जाना चाहिए मार्क्सवाद खत्म हो चुका है" और स्पेगलर ने यह बात सत्तर वर्ष पूर्व कही थी। पर 'प्रूशियाई समाजवाद' के भार स्पेगलर को यह पता नहीं था कि उसका यह विचार "राष्ट्रीय समाजवाद का" एक दैत्याकार और अमानवीय रूप धारण कर लेगा और यह हिटलर के 'मेन काफ' मे प्रकट होगा। यह स्पेगलर ही था जिसकी 'सच्चे' दार्शनिको और कलाकारों ने उपेक्षा की, जिसने सत्तर वर्ष पहले कहा था "जनतत्र के बारे *मे कोई चाहे जो सोचता हो पर यह हमारी इस सदी का रूपाकार है जो एक दिन सच्चाई बन* जायेगा। राष्ट्रो को अब जनतत्र और असारता म से किसी एक का सामना करना है। पुरातनपंथियो का सचेत समाजवाद या सहारवाद म किसी एक को चुनना है।" प्रथम विश्वयुद्ध के बाद जर्मनों ने जनतत्र को खारिज कर दिया और हमे याद रखना चाहिए कि उसकी जगह निर्बंध चुनावो मे हिटलर और राष्ट्रीय समाजवाद को चुना जो सारहीन था, नाशवाद का रूप था। इसलिए टॉमस मान के कई दशकपूर्व स्पेगलर ने जर्मन राष्ट्र की नियति को देख लिया था। सगीत के रूपाकारो के विकास को उदाहरण के रूप मे इस्तेमाल करते हुए मान ने अपने 'फाउस्ट' में इस प्रक्रिया का विश्लेषण दिया था और बुर्जुआ कला और साहित्य को प्रतीति का प्रत्यक्षीकरण कहते हुए *अलविदा कह दिया था।*

यदि हम मलबे के ढेर को 19वीं सदी के पूजीवाद के एक निर्दय और आदिम रूप मे ढालने पर नहीं तुले हुए हैं तो इस मलबे के ढेर पर कब्जा कर लेने का आनद दयनीय ही नहीं, बहुत सतही है। *हम अपनी इस दोबारा हासिल हुई स्वतत्रता की सीमाओ को यदि स्पष्ट* रूप से पहचान नहीं पा रहे हैं तो जल्दी ही इसे खो देंगे, क्योंकि सीमाविहीन स्वतत्रता केवल सपनो मे होती हैं। ऐसी स्वतत्रता राजनीति या अर्थशास्त्र मे या किसी व्यक्ति या राष्ट्र के जीवन मे कभी मौजूद नहीं रही। ताज्जुब की बात तो यह कि कला मे भी नहीं। कला मे रूप उसकी सीमाए तय कर देता है। यहाँ तक कि सर्वाधिक महान इरादे भी कला को अराजकता से बचा

नहीं पाते। कई बार मेरे मन में अराजकता के प्रति सहानुभूति जगती है पर मेरा दिमाग इसे खारिज कर देता है। यदि नौजवान अराजकतावादियों के प्रेम और घृणा को जनतंत्र के साथ जोड़ा जाता तो वह इस जनतांत्रिक व्यवस्था के लिए एक शक्तिशाली जीवनदायी प्रेरक तत्व बनता जो अक्सर स्वयं से ही बहुत क्लान्त दिखाई देती है।

साम्यवाद और सोवियत रूस के प्रति शत्रुता भाव साम्यवादी राजनीतिक ढाँचे का टूटना और इस विघटन में साम्यवादियों का स्वयं का सक्रिय योगदान उन ढाँचों की तरफ दोबारा लौटना जो दूसरे महायुद्ध के समय टूटकर बिखर गये थे चर्च का सैद्धान्तिक और सामाजिक प्रभुत्व-इनमें से कोई भी घटना अपने साथ संगीत, कला थियेटर नाटक कविता या दर्शन के नये रूपाकार लेकर नहीं आयी है। इस अवधि के दौरान कोई नये रचनात्मक कला विचार सामने नहीं आये हैं। कला और दर्शन के हाशिये पर विभिन्न रूपाकार और घटनाएं जरूर उभरीं पर कोई नया दार्शनिक विचार उभर कर नहीं आया। हम जन्मोत्सवों को मनाने के बजाय भड़कीले तरीके से शवों को कब्रों में लिटाने और मिट्टी देने के कार्य में सहायता करते रहे हैं। करोड़ों लोग साम्यवाद मार्क्सवाद लेनिनवाद और स्तालिनवाद को दफनाने में सहायता कर रहे हैं और जब वे यह कार्य कर रहे हैं तो वे मार्क्स, एंगेल्स बाबेल लसली और रोजा लक्जमबर्ग को डजिरजियनस्की स्तालिन बेरिया येजोव और येगोडा के साथ घालमेल कर रहे हैं। जो लोग पूर्वी यूरोप मे साम्यवाद को दफना रहे हैं वे साथ साथ समाजवाद तर्कवाद और डार्विनवाद यहाँ तक कि पुनर्जागरण काल और सुधारवाद को भी दफना दे रहे हैं। और ये सभी प्रक्रियाएं उतनी ही विचित्र हैं, जितनी कि हडेगर के दर्शन का 'मेन काफ' और नीत्शे को गोएबल्स के साथ मिला देने की भ्रामक कोशिश।

खेद की बात है कि यह तथाकथित 'मानवता' कितनी तत्परता से उस विवेक को तज दे रही है जिसे इतनी कठिनाई के साथ हासिल किया गया था। और यह हमे इसकी तार्किकता पर शक करने के लिए मजबूर कर रहा है। मुझे पूरा विश्वास नहीं है कि धर्म (मेरे दिमाग मे दुनिया के सभी बड़े धर्म हैं) स्वयं का पुनर्जीवित करने में सक्षम हैं। धर्म की ओर, विभिन्न सम्प्रदायों की ओर लौटने के पीछे भय की भावना है। हमारा विवेक समस्त प्रजातियों के आसन्न विनाश के भय से धर्म मे शरण ले रहा है। उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम की खाइयाँ और चौड़ी होती जा रही हैं। इन खाइयों को शायद युद्धों के शिकार लोगों से भरा जायगा। कच्चे तेल और पेट्रोल की कीमतों से अधिक कंपन फैल रहा है बनिस्बत ईश्वर की मृत्यु के। मैंने इन सभी मुद्दों को साठ के दशक मे लिखे अपने नाटकों - 'द कार्ड इन्डेक्स' 'नेचुरल ग्रोथ' और 'अवर लिटिल स्टेब्लाइजेशन' मे उठाया था। पर उस समय नाट्य समीक्षकों ने इन्हे एब्सर्ड नाटक कहा जबकि न केवल पोलैंड मे, बल्कि समूचे यूरोप में ये यथार्थवादी नाटक माने जा रहे थे। जी हाँ यथार्थवादी, समाजवादी-यथार्थवादी नहीं।

एक दूसरा धक्का जो मानवता को लगा है वह है मनुष्य का अंतरिक्ष मे विचरण और एक चांदी के ग्लोब पर उसके चरणचिह्न, और मेरे जैसे लोग जो दूसरे विश्वयुद्ध की बाढ में

किसी तरह अपने को बचाय रख सके थे दावारा एक भोले बच्चे की तरह मनुष्य का प्रगति म भरासा करन लगे। मुझे लगने लगा था कि व पदचिह्न। वे कदम मनुष्यता और मुझे- दानों का और कला कविता, नैतिकता व सौंदयशास्त्र सभी का मुक्त कर दगे।

मनुष्यता के पदचिह्न! मुझ याद आता है कि जर्मन यातना शिविरा और सावियत श्रमशिविरों के दौर म राष्ट्रो को समाप्त कर दिये जाने के उस दौर मे एक साधारण सी बूढी औरत न मुझसे कहा था "एक समय आयेगा जब मनुष्य धरती पर मनुष्य के पदचिह्न को चूमेगा। गैस चैम्बरों और सामुदायिक कब्रो के बाद के समय मे मनुष्य को धरती का सबसे दुर्लभ खजाना बन जाना था। और मेरी बची खुची पीढी मनुष्य म भरोसा करने आयी थी- समूची मनुष्यता में नहीं। और वह एक बार फिर ठगी गयी। दूसर विश्व युद्ध के सिपाहियो और लडाकुआ की वह पीढी अब विदा ल रही है और मर रही है- पूरी तरह लुटी हुई और एक दु स्वप्न म घिरी हुई। बाकी तो सब सन्नाटा है। मैं एक कवि हूँ। मेरे बार म इसी रूप मे बात हाती हैं और लिखा जाता है। पर इस सबके बावजूद मैं अपनी पीढी का कवि हूँ। एक ऐसी पीढी का कवि जो सरकारों, पार्टियो, विचारधाराओ विश्वासो और स्वय अपने ही द्वारा छली गयी है। एक कवि और एक मनुष्य के रूप म मरा अनुभव 'सर्ववाइवर' कविता और 'दे केम टू सी ए पोएट' शीर्षक कविता के बीच फैला हुआ है।

(अदम जिग्नावस्की द्वारा अनूदित यह पाठ दिसम्बर 1990 म वारविक विश्व विद्यालय में रोजेविच द्वारा कविता पाठ के समय भूमिका के रूप में रखा गया था)।

जोसफ ब्रॉडस्की (रूस के निर्वासित कवि जो बाद मे अमरीका मे बस गये। जन्म 1940 मे लेनिनग्राड मे। 1964 मे 'परजीवी' करार दिये गये। गिरफ्तारी और पाँच वर्ष का आन्तरिक निर्वासन। 1972 मे रूस से निष्कासित 1987 मे साहित्य के लिए नोबल पुरस्कार। प्रमुख कृतियाँ 'ए हाल्ट इन द डेजर्ट' 'ए पार्ट ऑफ स्पाच' 'सेलेक्टेड पोएम्स' आदि (कविता सग्रह)। 'लेस देनवन' 'ऑन रीजन एड ग्राफ' (निबध सग्रह) आदि)।

कविता गद्य को शब्द की कीमत पहचानना सिखाती है।

–जोसेफ ब्रॉडस्की

साहित्य मे सुरुचि विकसित करने की एक राह कविता पढना है। पर यदि आप सोच रहे हैं कि यह बात मैं किसी पेशेवर पक्षपात की वजह से कह रहा हूँ और इसस अपनी जमात के लोगो के हिता की रक्षा मे लगा हूँ तो आप गलत समझ रहे है। मेरा किसी से गठबधन नहीं है। बात सिर्फ यह है कि मानवीय अभिव्यक्ति का सर्वश्रेष्ठ रूप होने के नाते कविता न केवल सार तत्व मे अपनी बात कहती है, बल्कि यह किसी मानवीय अनुभव को सम्प्रेषित करने का सबसे घनीभूत रूप भी है। यह किसी भी भाषिक कार्यकलाप का विशेष रूप से ऐसा कार्यकलाप जो कागज पर घटित होता है, उसके उच्चतम सभावित स्तर को प्रस्तुत करती है।

कोई जितना अधिक कविता पढने लगता है उतना ही उसके लिए किसी भी तरह की लफ्फाजी को फिर चाहे यह लफ्फाजी राजनीतिक या दार्शनिक विमर्श के प्रपच मे हो या इतिहास समाज विज्ञान या गल्प की कला मे हो, इसे सह पाना मुश्किल होने लगता है। गद्य में एक अच्छी शैली हमेशा कविता के वाक्य विन्यास की यथार्थता गति और सूत्रशैली वाली तीव्रता की मोहताज होती है। कविता कब्र पर लिखे किसी कतबे और नुक्तादारी की सतान है। ऐसा लगता है कि इसका गर्भधारण किसी भी मनागम्य विषयवस्तु तक पहुचने के सबसे छोटे रास्ते के रूप में किया गया। कविता गद्य को अनुशासन मे रहना सिखाती है। यह गद्य को न केवल हर शब्द की कीमत पहचानना सिखाती है बल्कि उसे विभिन्न मनुष्य जातिया की जिदादिल और चचल मानसिक सरचनाओ के बारे मे बताती है– यह राह किसी भी सरल

गठन का विकल्प है। यह जो स्यत प्रमाणित है उस छोड दने, विवरणो के आग्रहा से बचन और किसी भी पराकाष्ठा क प्रतिकूल जाने के गुर सिखाती है। सबसे बडी बात तो यह कि कविता गद्य मे उस अतींद्रियता की भूख को बढाती है जिसके कारण कोई भी कलाकृति किसी सजावटी वस्तु स पृथक हा जाती ह। परन्तु इसे मान ही लेना चाहिय कि इन सब गुरो को सीखने मे गद्य बहुत आलसी साबित हुआ है।

मुझे गलत न समझ मैं गद्य को कम करके नहीं आक रहा। सच्चाई महज इतनी है कि कविता गद्य से ज्यादा पुरानी है और इसलिए उसने ज्यादा लबा सफर तय किया है। साहित्य कविता के साथ शुरू हुआ- एक खानाबदाश क गीत के रूप म यह एक घर मे बसे हुए आदमी के कलम घिसन से पहले की चीज थी। हालाकि कहीं मैंने गद्य और कविता के बीच के फर्क को वायुसेना और पैदल सेना क बीच का फर्क बताया है पर यहाँ जो मैं सुझाव देना चाहता हूँ उसका साहित्य की श्रेणीबद्धता या मानवशास्त्रीय उद्‌गम से कुछ लेना देना नहीं है। मैं सिर्फ व्यावहारिक होन की कोशिश कर रहा हूँ और आपकी आँखो और दिमाग की कोशिकाओ को बहुत सारी व्यर्थ की मुद्रित सामग्री से बचाना चाहता हूँ। कहा जा सकता है कि कविता का आविष्कार केवल इसी उद्देश्य के लिए हुआ है – क्योंकि वह किफायतसारी की पर्याय है। इसलिए करना यह चाहिए कि दो हजार वर्षों के दौरान सभ्यता मे जो प्रक्रिया चली है उसे सक्षेप मे सार रूप मे कहीं रखना चाहिए यह काम आप जितना सोचते हैं उससे कहीं अधिक सरल है क्योंकि कविता की काया गद्य की काया की तुलना में बहुत कम जगह घेरती है। और यदि आपकी दिलचस्पी केवल समकालीन साहित्य म है तब तो यह काम बहुत ही सरल है। आपको केवल यह करना है कि कुछ महीनो तक अपनी मातृभाषा के कविया के कृतियों को पढना है- विशेपकर वे कवि जो इस सदी के प्रथमार्द्ध मे हुए। मुझे लगता है कि आपके पास एक दर्जन से अधिक किताब नहीं होगी और कुछ महीनो बाद आप बहुत कुछ जान चुके होगे।

यदि आपकी मातृभाषा अग्रेजी है तो मैं राबर्ट फ्रॉस्ट, थामस हार्डी, यीट्स टी एस इलियट डब्ल्यू एच ऑडेन मैरिन मूर और एलिजाबेथ बिशप के नामो की सिफारिश करूँगा। यदि भाषा जर्मन है तो रेनियर मारिया रिल्के ज्यॉर्ज ट्रैकल पीटर ह्यूशेल और गोटफ्राइड बेन का नाम लूगा। यदि इस्पहानी भाषा का सवाल हो तो एतोन्यिो मेकाडो फेडेरिको गार्सिया लोर्का लुइस गेनेडा रफाएल अल्बर्टी जॉन रेमन जिमनेज और आक्तोवियो पाज के नाम काफी हैं। यदि आप पोल भाषा जानते हैं (यह तो बहुत सुदर बात होगी क्याकि इस सदी की सर्वाधिक विलक्षण कविता इसी भाषा म लिखी गयी है) तो मैं लियोपाल्ड स्टाफ चेरवाव मिवाश, जिब्ग्न्यू हर्बर्ट और विस्लावा शिम्बोर्स्का के नाम लूगा। फ्रेंच भाषा मे ग्युलेयुम आपोलिनियर ज्युलिस सुपरवेल, पियरे रेवेर्दी बेलाइस सेन्ड्रास, थोडा सा पॉल एलुआर बहुत थोड़ा सा अरागाँ, विक्टर मेगालेन और हेनरी मिशाऊ को पढना पर्याप्त है। ग्रीक भाषा मे आपको कॉन्सटनटाइन कवाफी, ज्यार्ज सेफरिस यानिमी रित्सोस को अवश्य पढना चाहिए। यदि डच भाषा हो तो मार्टिनस

निन्ग्लॉफ का पढना हागा – विशेपकर उसकी हतप्रभ कर देन वाली कविता 'एवाटर'। पुर्तगीज म आप फेरनान्डो पसोआ को और शायद कार्लोस ड्रुमन्ड अन्द्रादे का भी पढ सकत हैं। स्वीडिश भापा म गुर्नार एक्लॉफ, हैरी मार्टिन्सन टॉमस ट्रासट्रोमर को पढा जा सकता है। जहाँ तक रूसी भाषा का सवाल है मरीना त्स्वेतायेवा आसिप मादेलस्ताम अन्ना आख्मातोवा, बोरिस पास्तरनाक, व्लादिस्लाव खादासविच वेलमीर ख्लब्निकोव, निकोलाई क्लुएव को पढना चाहिए, इतालवी भाषा के बारे म यहाँ इस सभा म कोई नाम सुझाना उचित नहीं है फिर भी मैं क्वासीमोडो साबा, उगारत्ती और मोन्ताले का नाम लूगा क्याकि यहुत लबे समय से मै इन चार असाधारण कविया के प्रति अपना निजी और वैयक्तिक आभार प्रदर्शित करना चाहता रहा हूँ क्याकि इनकी पक्तिया ने मेर जीवन को निर्णयात्मक ढग से प्रभावित किया है।

इनमे से किसी भी कवि की रचनाओ को पढने के बाद यदि अल्मारी से निकाली गयी गद्य की काई किताव आपक हाथो से छूट जाती है तो इसमे आपकी कोई गलती नहीं होगी। पर इसके बावजूद अभी भी आप गद्य पढते हैं तो इसका सारा श्रेय केवल उस लेखक को दिया जाना चाहिए। इसका अर्थ यह भी हागा कि ऊपर बताये गये इन थोडे स कविया का हमारे अस्तित्व के बारे जो सच्चाइयाँ मालूम थीं यह गद्य लेखक इसक अतिरिक्त भी कोई नयी बात उनमे जोडना चाहता है। इससे यह सिद्ध हागा कि कम स कम यह गद्य लखक अभी फालतू नहीं हुआ है और उसकी भाषा म अभी एक आत्मनिर्भर ऊजा और लावण्य बाकी है। या फिर इसका अर्थ यह भी हा सकता है कि किताबे पढने की आपको एक लाइलाज लत है। वैसे तमाम दूसरी लतो के बीच यह कोई ज्यादा बुरी लत नहीं है।

('ऑन ग्रीफ एड रीजन' से)

कुबेर दत्त

तुम्हीं ने कहा था: कहना जरूर

(कवि राजेश शर्मा की याद मे)

तुम्हारे ही शब्दो की वीथियो मे
ढूढता हू तुम्हे
तुम नहीं मिलते
पत्थरो की रगड के बीच
कल तक तुम थे आग,
सूखती नदियो
सीझते पेडो के बीच
तुम ही थे सेतु
आज वहा तुम्हारे आँसू तक नहीं
तुम्हे खोजने
मैं गहरे समुद्रों मे गया
तुम वहा नहीं थे
दोस्तो के पास तो थे ही नहीं
सभ्यता और सोच से भी पुराने
किस व्यक्ति की तलाश मे
निकल गये तुम?

क्या वह
वही व्यक्ति है
जिसे तुम कहते थे–
आदमी यह कोई नया नहीं
वही पुराना आदमी है–
शातिर तेज
रिंदो का रिंद
हर काल को
मात देने वाला
अब न वह आदमी है
न तुम

क्या उसी आदमी ने तुम्हे
किसा जगल मे जमींदोज
कर दिया?–
जिसे हर बार तुम
गझिन जगल म जमींदोज करते थे?
जमींदोज करने के पूर्व
तुम्हीं बताते थे उसे
कि कैसे धीरे-धारे
धुएँ मे घिरती हैं लडकिया
कि खेत से लेकर
अदालत तक
कैसे घिसटता है काश्तकार
कि जगल
एक सिरे से दूसरे सिरे तक
कब और कसे होता है लाल
कि वियतनाम मे
घास खाकर कैसे लडा आदमी
कि लदन शिकागो रूआँदा
प्रीटोरिया दिल्ला जोहानिसबर्ग बम्बई,
मुजफ्फर नगर दिल्ली ब्रथानीटोला मे
हलाक होता है वही आदमी बार-बार
चूकि
तुम्हीं ने कहा था
कि कहना जरूर
इसीलिये
कहता-पूछता हूँ
कि ऐसा तो नहीं–
जिसे तुम जमींदोज करते थे
वह आदमी भी तुम थे
और जो जमींदोज हुआ–
वह आदमी भी तुम हो?
क्या तुम
वाकई जमींदोज हो?
पर कहाँ?
कहाँ फटी थी धरती–
तुम्हे गोद देने के लिये?

लडकियाँ घास नहीं हैं, माँ।

(अपनी बेटी के लिए एक कविता)

यह लडकी अपनी दूसरी आँखो से देखा करती है
मेरे चित्रो जैसे अमूर्त सपने।
अपना माँ के प्रति क्रूरता मे निपुण
अक्सर अपने विवश पिता को लगभग अनदेखा करते।

अतरिक्षा के न जाने किस हिस्से से
अनजाने पुण्य के प्रतिफल की शक्ल मे

उदासी और हँसी अवसाद और प्रफुल्लता
के नितान्त गोपनीय हिस्सो मे बँटी
अज्ञात शारीरिक कीमिया से
रोज बदलती अपना शक्ल
अपनी बढती देह से लगातार शोक और
सन्ताप चिन्ता और हास्य पैदा करती
कठिन पहेला की तरह
अनजान भविष्य के बन्द दरवाजे खटखटाती
किसी बात पर गुस्सा हो कर अभी
दूसरे कमरे सोई
है अपना अनुपस्थिति म भा
उतनी ही सुन्दर और मुखर।
यो वह हमे भविष्य म अकेले रह जाने के दारुण नियति का अभ्यास
सिखला रही है- कितनी आसानी से।

कहा है लालटेन

यह कोन सा क्षण हे मरे भीतर झिलमिलाता हुआ?
क्या यह एक प्रतीक्षा है किसी अधेरे प्रेम की जिसम तुम
एक उजाले की शक्ल मे दिखती हो स्मृति? बाते हुए
मासमा और भविष्य क काठ का छीलता हुआ समय
हमारी इच्छाओ का काल हे। एक बहुत लबा कछार जिसम
बदलती हुई सूरतो क दरख्त हिलते हैं। पराजय की घास नहीं
हो सकती। न वह पत्ता जो मन के कुड मे किसी अपरिचित
वर्तमान से झरता हे। धुध लगातार उडती हे और बादल पाना क बोझ
से फट कर बरसते हैं। कत्थई दिशाआ को इतजार
का सराता काटता है। दृश्य क अतिम छार पर हिलता है कोई एक
रग। वहाँ आज भी बुझते हुए जुगनुओ के
दिए टिमटिमा रहे होगे। सतीत्व सिर्फ एक शब्द ही हे। देह के
सागर का कोई अनत तरग। स्पर्शों के भीतर चले आते हैं कुछ
बेचैन ओर उदास वार। सुलगता एकात। उडकर जाती हुई
चिडियो की पीली चहचहाहट। पानी उलीचती हुई नाव हरे कच्चे
सिघाडो के तालाब को काटती है। बार-बार चिट्ठिया की बाट
जोहना। शुभकामनाओ के वाक्य। रसीला और कुछ आर्द्र लगातार
बहता है हमारे भीतर। स्वाद के किनारे वह जो खडा है
स्तब्ध जिज्ञासा जैसा उसी से हमे शुरू करना होता है
अपना जीवन। कष्ट कहाँ नहीं है? शब्द मे जो बहुत
कुछ अनकहा है-उसी के हाथो मे सौंप कर
मैं अपना 'होना' तुम्हारी तरफ चलता दिखता हूँ खुद को
ताराख और वर्ष आँधी मे उथल-पुथल होते जाते हैं। कौन बताएगा
लालटेन किधर रखी है? आखिर यह क्या है? जिसे सुविधा
के लिए हम समय का नाम देना सीखते हैं
अपने लिए बचाए गए जीवन मे।

लगातार देखने से एक तारा पालतू हो जाता है। इतना पालतू कि देखने वाले के न होने पर भी रोज वहीं ऊगकर उसकी राह देखता है। अपने अकेलेपन के खिलाफ पालतू होकर निकट होते जाना है।

पालतू होकर मैं तुम्हारी ओर आऊँगा जैसे मै तुम्हारा नही, तुम्हारी आँखो का पालतू था। वहाँ कोई आकाश था जिसमे इन्द्रधनुष था जिसे देखते-देखते मैंने गँवा दिया। दूब मे लेटा पत्थर दूब का पालतू था एक दिन जिसपर सिर टिकाकर मैंने आकाश से कुछ शब्द मागे थे। पेड पर बैठे शब्द बिना पिजडे के पालतू थे। वे आँखो के आकाश मे थे । मैंने उन्हे आवाज दी। वे उतरे साध्य कविता की तरह उनकी परछाईं से लिखी मेने कविता।

ऊँगने-डूबने की दिशा

ऊँगने की दिशा के ठीक सामने है डूबने की दिशा। पेड जहाँ ऊँगा था उसके ठाक सामने फैले उजाड मे वह कहीं रही होगी। किसी दिन डूबने के लिए पड न उसे दखा हागा। आसमान के साथ टढे होकर तारों को एक-साथ डूबना था। गर्दने उठाकर ऊँगने की दिशा को देखते-देखते उन्हे डूब जाना था। आँखे तय करती हैं ऊँगने और डूबने की दिशा। ऊँगने के साथ ही तय हो जाती है डूबने की दिशा। धरती के साथ नदियाँ पेड-पहाड घूमते हैं अपनी डूबती दिशाओ के साथ। मैं चलता हूँ अपने ऊँगने को दिशा के बर-खिलाफ मानो ढूँढता होऊ डूबने की दिशा। किसी गहरे सम्मोहन मे चाजे बढती रहती हैं अपने-अपन डूबने की दिशाओ मे नदी-नाले अपने डूबने की दिशा मे बढते रहते ह। समुद्र के डूबने की दिशा आकाश है जैसे बादलो के डूबने की दिशा है पृथ्वा की ओर। जैसे डूबती दिशा मे होती आवाज अपने ऊँगने की दिशा की तरफ जा रही होती है। किसी दिशा मे कुछ शब्द लिखकर जैसे तय करता हूँ उनके डूबने की दिशा और वह अक्सर उन्हे पढती आँखो की तरफ होती है। अपनी ओर लौटने के लिए, डूबने की दिशा से ऊँगना चाहिए।

पालतू होना

आबादी के निकट के पेड पालतू हो जाते हैं जैसे घरो मे आने से चिडियाँ। "बुजुर्ग पेडो पर चिडियो के गाने से वे चिडिया के पालतू हो जाते हैं" मैदान मे बाँसुरी, अलगोजा बजाते चरवाहे प्रकृति को पालतू बना रहे होते हैं। आबादी के निकट से गुजरती जगली नदिया पालतू हो जाती हैं। उनके घाट उनका पालतू होना बताते है।

जो चीजे खाती नहीं नमक पालतू नहीं। धरती अपना नमक खिलाकर सबको पालतू बनाता है। जैसे समुद्र का जीव-जगत उसका नमक खाकर पालतू है। हवा तक चाटकर उसका नमक उसे उडाने में उसकी पालतू हो जाता है।

लगातार देखने से एक तारा पालतू हो जाता है। इतना पालतू कि देखने वाले के न होने पर भी रोज वहीं ऊगकर उसकी राह देखता है। अपने अकेलेपन के खिलाफ पालतू होकर निकट होते जाना है।

पालतू होकर मैं तुम्हारी ओर आऊँगा जैसे मैं तुम्हारा नहीं तुम्हारी आँखो का पालतू था। वहाँ कोई आकाश था जिसमे इन्द्रधनुष था जिसे देखते-देखते मैंने गँवा दिया। दूब मे लेटा पत्थर दूब का पालतू था एक दिन जिसपर सिर टिकाकर मैंने आकाश से कुछ शब्द मागे थे। पेड पर बैठे शब्द बिना पिजडे के पालतू थे। वे आँखो के आकाश मे थे । मैंने उन्हे आवाज दी। वे उतरे साध्य कविता की तरह उनकी परछाईं से लिखी मैने कविता।

स्वप्निल श्रीवास्तव

एक ओरत की रहस्यमय चुप्पी

उस ओरत की रहस्यमय चुप्पी
आर पथराले चेहरे के बारे मे
कोई विश्वसनाय जानकारी नहीं ह

दरअसल वह बद दरवाजा है
दस्तक क बाद भा नहा खुलता

तिलिस्मा दरवाजे के सामने भविष्यवक्ताआ
की भीड हें
वे इस औरत की किंचित् मुस्कराहट से
नये अर्थ निकालने को उत्सुक हे
उनके सकेत से तय होगा
दश का भविष्य
    कुछ लाग वहा खड-खड पत्थर
    हो गये है
    कुछ लोगो का भविष्य खतरे मे
    पड गया है
    कुछ को उम्मीद है खुलेगा यह दरवाजा
    उनके अधेरे चेहरे पर फैल
    जायेगी रोशनी
    अफवाह यह बताती हैं, जल्दी ही कुछ
    घटित होन वाला है
    कुछ लोग मारे जाने वाले हैं
    कुछ लोगो को मिलेगा अभयदान

इस किले के रहस्य के बारे में
कविता लिखने का दुस्साहस

मैं फिलहाल नहीं करूँगा
इसके बारे मे पुरातत्ववेत्ता एव जादूगर
ज्यादा जानत होगे।

तरू-पुरुषो के लिये

मैं उन वृक्षो से दूर हूँ
जो मुझे फल देते थे
उनकी छाह मेरी प्रतीक्षा मे है

जिन लोगो के साथ, मैं बडा हुआ
जिनके आशीष से पल्लवित पुष्पित हुआ
उनकी आँखे मेरी प्रतीक्षा मे हैं
मैं शहर क भयानक जबडे मे
फँसा हुआ शिकार हूँ
बहुत सारे लोगो का पथराया
हुआ स्वप्न हूँ
मैं क्रूर नौकरशाहो की फाइलो मे
गुम एक अच्छा दिन हूँ
मैं लम्बी इमारत से निकलना चाहता हूँ
पहरेदार, मुझे राक देते हैं
–अभी तुम्हारा समय नहीं हुआ है
अभी तुम्हारी सुनवाई होनी हे
राजदण्ड से पुरस्कृत किया जाना है
मेरे तरू-पुरुषों मुझे क्षमा करना
मैं अपने परिन्दो के साथ, नहीं
आ सकता तुम्हारे पास
मेरे चारा ओर बाजा की एक फौज है
उनकी नुकीली चोच मे टँगा हुआ
है मेरा भविष्य।

विनोद कुमार श्रीवास्तव

इन्तजार

रखे तो दोनो थे
एक ही पाल मे
दुख और आँखो मे मोतिया
मोतिया पहचाना गया
शायद जल्दी पका

टपका कुछ दिन साथ साथ
औंधा फोडा
लेकिन दुख नहीं था
उसके रिसाव मे

'दुख पकेगा
समय के अन्तिम छोर तक
रखा जब होगा
औरो के दुखो के साथ'
बताया मुझे
दुख पकने का इन्तजार करते बूढे ने
ढके हुये अपनी आँखे
सफेद बरौनियो और
भौंहो के फाहे से।

कुछ कवायदे आसान जीवन के लिये

एक
'मुझ अकेले से क्या हाता है'
दुहराना होता है बारबार
जादूगरो के मत्र की तरह

पकडे रहनी होती हैं
कसकर
कुछ सुविधाये

सोचनी होती हैं आसान बाते
या कुछ भी
जो बहला सके काफी देर तक

बच कर निकलते
उसी टेढी जगह मे
बनानी होती हे सुरग

घुस जाना होता हे
एक दम सीधे
किसी बडी दूकान मे

पहले लौटती है राहत
फिर आजादी
नजरे घुमाने की

लौटने के बारे मे फिलहाल
मुल्तवी रखने होते हैं विचार

दो
'बहुत छोटी होती है जिन्दगी'
बताना होता है
सब को

उसकी अनिश्चितता पर
जारी रखनी होती हैं
चर्चाये

आगाह करना होता है
भाग्य के बारे म

फिर खोजना होता है
अपने लिये अलग
एक समय

आनन्द के क्षणो मे
याद रखनी होती हैं
सिर्फ त्राटक कृयाये

आ, सुरक्षित कर लेने होते हैं
सुन्दर विचार
सिर्फ अपनी कलम के लिये

तीन
भोजन के समय
गोठना होता है
थाली के चारा ओर

ध्यान लगाना होता है
स्वाद के इर्द गिर्द

सोचना होता है
पाक कला के बारे मे
बहुत सारी कलाओ को
याद करते हुये

मनाही होती है
बातें करने की उस समय
या फिर सोचना
भूख और
उसकी तेजा क बारे मे।

नरेन्द्र गौड

हरिनारायण व्यास

हरिनारायण नाम मेरा
व्यास गद्दी रही होगी अतीत मे
जिला शाजापुर का कस्बा सुदरसी
चौदह अक्टूबर सन तेईस को
हुआ जन्म

दूसरे सप्तक का कवि
मृग और तृष्णा
त्रिकोण पर सूर्योदय
बरगद के चिकने पत्ते
कविता की पोथियाँ
सन बयासी तक छपीं
और अब आउटर पर
रुकी ट्रेन
हाथ मे थैला लिए
सोच रहा सुदरसी का
करूँ रुख
या कि चल पडू पूना

चार दिशाओ मे छितराए
बेटे बेटियाँ
कविता के सग
कुनबा भी फैला

जमीन का टुकडा
जो था पुश्तैनी घटते
घटते इतना घटा
कि फकत टूटा टापरा बाकी बचा

दिशाओ दिगत मे
विजय पताका फहराते आए
दिग्विजय
पकडा गए भवभूति अलकरण

खीसे निपोरता
पूछ रहा
यह कागज का टुकडा
कुर्ते के किस खीसे मे रखूँ
विद्वज्जन।

फोटो छपी अखबार के
चेहरे पे
पुरस्कार ले रहे
हरनारान
सुदरसा वालो ने
क्या पढी होगी यह खबर
घास का तिनका दबाए
सोच रहा
इस बजर जमान पर
हल की मूठ पर
हाथ धरे
प्रेमनारायण के छोरे
कतरने ही दे जा नरेद्र
क्या बताऊँगा
पूना वालो को
सुदरसा जाता होगा
अखबार
पढी होगी गाँव वालो ने
यह खबर

खबर कि दौडियो रे दौडिया
कुँआ मेढ खेत खलियान

ढोर डगर टनाटन
पुरस्कृत हुए
हत्यारान।

यह कच्चा रास्ता
वैसा ही कच्चा है
जैसा छोडा था
मैंने इसे
बूढा पीपल वैसा है
भूत के किस्सो के साथ जीवत
शाम के धुधलके मे
हवा वैसी ही है
इठलाती इतराती
धूल धुँआ धुँध
बरसो पहले सरीखा

खडित यात्राएँ
वैसी ही हैं
आधे अधूरे साक्षात्कार
वैसे ही हैं
ताप के ताए हुए दिन
ठीक वैसे ही हैं
मेले ठेलो मे बिकती
तेल की पकोडियाँ
वैसी ही हैं
पेडो के झुरमुट मे
उगने के लिए
डूब रहा सूर्य
ठीक ठीक वैसा ही है
एक बूद मेरी आँख से टपकी
अभी अभी
वैसी ही है।

जागरणकाल

जब लूटने को कुछ न बचा तो उन्होने सपने लूटने की सोची वे दिन दहाडे आते
रात के अधेरे मे आते अपनी डायरिया खोल तय करते सपनो की कीमत,
सपनो के लुट जाते ही गायब हो जाते डायरी के पन्ने।

महीनो बाद किसी ने ढूढ लिए डायरी से गायब पन्ने नुक्कड पर गर्भ से गिराए
तीन माह के मानव शिशु के मुह मे से निकल रहे पन्ने लोगो को विश्वास हुआ देर
सही अधेर नहीं।

लोगो ने की बहस मुहल्ले-मुहल्ले अखबार-अखबार रेडियो-रेडियो
टी वी – टी वी । बहस मे बहस हुई पाँच सौ साल बाद की जैसे पाँच सौ साल
पहले था भक्तिकाल लोगो ने पाँच सौ साल बाद कहा पाँच सौ साल पहले हुआ
भ्रष्टकाल न्यायपालिका-सक्रियताकाल।

किसी को होना ही था वीतराग आस-पास भाड मे चेहरे देखे, बहुत देर तक देखा-
कहा यह है सम्मोहन काल।

दूर से छोटी बच्ची आ रही कदम-दर-कदम, चल रही दौड रही हस रही
धीरे-धीरे उसकी गुडिया खोल रही आँखे।

बच्ची बोली–देखो देखो जाग गई।

बीस साल बाद

बीस साल बाद
मिले
उसका दु ख
मेरा दु ख

दु खो के चेहरो पर
झुर्रियाँ हैं अब
पके बाल इधर-उधर
अह और सदेह ने किया घर

दु खों का यू मिलते दख
ढूँढा उसके गुस्से ने मेरे गुस्से को
उसके प्यार ने मेरे बचे प्यार को

हम लोग हिसाब किताब कर रहे
घर-परिवार का
दु ख हमारे लेट गए
आपस को सहलाते
धीरे-धीर सुखो मे बदलते

अचानक हम जान रहे
दुनिया म बदला है बहुत कुछ बीस सालो मे

देखना जरा

देखना जरा अनु फिर कोई जुलूस निकला क्या
या इस बार शवयात्रा, श्मशान तक सडक
काला ही काला है-जीने का भ्रम कहीं अधिक
अधेरे से भरा है हालाकि

जैसे चमकती सडको पर गाडिया
जिनके सामने काली पट्टियो से मुह ढके
सिपाही

मशीनगने थामे लगते हैं जिदा होती कब्र से निकली
सेलुलाएड की तहे
जिनकी जवानी के दिनो मे गुजरने की याद सडका पर

अभी भी कपकपाती है हमे

क्या लाई तुम? कविताए सुनाओ
तुम्हारी आवाज उडनखटोला
कहीं न कहीं किसा जुलूस के ऊपर ले चलेगी
लोग बाते कर रहे होगे सपनो की कविताओ पर

फिलहाल हम बाते करे ताजा कविताओ और शब्दो के आकार पर
भूले कुछ देर कि चमकीला सडके भ्रम हैं और नहीं भी
उन पर दौडती गाडिया भ्रम हैं और नहीं भी
जर्जर शब्दो से आगे क्या कुछ है फिलहाल
उसी मे ढूढे जीवन

यह जो पक्ति तुमने पढी
इसमे क्यो आया वापस
रुखे गद्य की कब्र से निकला
काली सडको पर रुका जीवन
क्या आया वापस यह सच

देखना लगता है एक और भीड आ रही है।

विस्लावा शिम्बोर्स्का (1923 मे कारकोन मे जन्म। 1952 मे पहला कविता सग्रह 'देट इज वाई वी आर एलाइव' प्रकाशित। कविताओ म गहरी राजनातिक चेतना, सामाजिक विडम्बनाओ और विरोधाभासो का स्वर। शैली मे विलक्षण सादगी गहराई और एक विशेष प्रकार का विनोदप्रियता। 1996 मे साहित्य क लिए नोबल पुरस्कार। प्रमुख कृतियाँ 'देट इज वाइ वा आर एलाइव' 'कालिग ऑफ येती' 'साल्ट' 'नो एड आफ फन' 'कुड हेव', 'ए लार्ज नबर', 'द पिपुल ऑन द ब्रिज', 'द एड एड द बिगनिग' 'व्यू विद ए ग्रेन ऑफ सैंड' आदि)।

"मैं नहीं जानती।"

(1996 का नोबल पुरस्कार व्याख्यान)

–विस्लावा शिम्बोर्स्का

कहते हैं किसी व्याख्यान म सबसे मुश्किल पहला वाक्य होता हे। खैर, वह तो मेने पार कर लिया। पर मुझे तो लगता है कि इसके बाद के भी सभी वाक्य–तीसरा, छठा दसवा और अतिम पक्ति तक पहुचाने वाला हर वाक्य मरे लिये उतना ही मुश्किल होगा क्योकि मुझे कविता पर बोलना है। मैंने इस बाबत बहुत कम कहा है – लगभग नहीं के बराबर। और जब कभी मैंने कुछ कहा तो हमेशा मेरे भीतर चोरी छिपे एक आशका आ बैठी कि यह काम मेरे वश का नहीं है। यही वजह है कि मेरा यह व्याख्यान छोटा ही होगा। कमिया को आसानी से पचाया जा सकता है अगर वह थोडे थोडे अनुपात मे परोसी जाय।

हमारे समकालीन कवि– अविश्वास और सशय से भरे हुए हैं – खासकर स्वय को लेकर। वे अपने कवि हाने को एक अनमनेपन से कबूल करते हैं गोया इसके लिये कुछ शर्मिन्दा हो। पर हमारे आज के इस कोलाहलपूर्ण समय मे अपनी खामियो को स्वीकार कर लना ज्यादा आसान है बशर्ते उन्हे जरा आकर्षक तरीके से पेश किया जाये। इसके बनिस्बत अपनी खूबियो को पहचानना मुश्किल काम है क्याकि ये हममे कहीं गहरे छिपी रहती हैं, दूसर हमारे आज के इन कवियो की जब कभी किसी अजनबी से मुलाकात होती है या जब कभी इनके सामने कोई प्रश्नावली भरने की नौबत आती है या यू कह कि जब कभी ऐसी स्थिति आती ह कि अपने काम के बारे म बताये बगैर कोई चारा नहीं होता हा तो ये कवि लोग 'कवि' कहलवाने को बजाय एक सामान्य शब्द 'लेखक' क रूप मे परिचय दना ज्यादा पसद करते हैं अथवा वे 'कवि' की जगह पर किसी दूसरे ऐसे कार्य से जोडकर खुद का पेश करते हैं जा व लखन

के अलावा करते रहते हैं। किसी दफ्तर के अफसर से लेकर बस मे बैठे मुसाफिरों
जब पता चलता है कि उन्हे किसी कवि से पेश आना है तो उनके व्यवहार मे सदेह और
सजगता आ जाती है। मुझे लगता है कि दार्शनिको के साथ भी शायद कुछ इसी तरह
है। फिर भी वे बेहतर स्थिति मे हैं क्याकि गाहे-ब-गाहे वे खुद को विद्वान होने के
से मडित कर सकते हैं। 'दर्शनशास्त्र का प्रोफेसर'- ओह। यह वाकई कितना सम्म
सा ध्वनित होता है।

पर कोई 'कविता का प्रोफेसर' नहीं होता। यदि होता तो इसका अर्थ यह निक
काव्य-सृजन एक पेशा है जो विशेषज्ञतापूर्ण अध्ययन नियमित परीक्षाओ, सदर्भ सूचि
पाद टिप्पणियों से भरे सैद्धान्तिक लेखा और अन्तत दीक्षात समारोहो मे सम्मान के स
गये डिप्लोमा-डिग्रियों के द्वारा हासिल किया जा सकता है। इसका अर्थ यह भी हो
कवि बनने के लिए सुदर से सुदर कविताओ के पन्ने पर पन्ने रग डालना ही पर्याप्त
ज्यादा जरूरी है शासकीय मुहर लगा कागज का टुकडा। आपको याद होगा रूसी कवि
उत्कृष्ट कवि जोसेफ ब्रॉडस्की को, जिन्ह बाद मे नोबल पुरस्कार मिला एक बार ठीक
वजहो से निर्वासन की सजा दी गयी थी। उन्होने ब्रॉडस्की को 'परजीवी' (पेरासाइट)
दिया था क्याकि उनके पास वह शासकीय प्रमाणपत्र नहीं था जो उसे कवि होने का अ
दिलाता।

बरसों पहले मुझे ब्रॉडस्की से व्यक्तिगत रूप से मिलने का सौभाग्य मिला और मैं
कि तब तक मैं जितने भी कवियो को जानती थी उनमे सिर्फ वही थे जिन्हे अपने कवि
पर गर्व था। वे बिना किसी सकोच के खुद का कवि कहलाना पसद करते थे। वे दूसरे क
से एकदम अलग थे। वे अपने कवि होने को एक विद्रोही किस्म की मुक्ति के साथ
रखते थे। मुझे लगा कि वे इसलिए ऐसा कर सके क्योकि युवावस्था मे उन्होने जो क्रूर अ
झेला था, उसकी स्मृतियाँ इस शब्द के साथ उनके जेहन म बसी हुई थीं।

वे देश ज्यादा भाग्यशाली हैं, जहा मानवीय गरिमा को इस तरह आनन-फानन मे कु
नहीं जाता। कवियो की ख्वाहिश होती है कि वे प्रकाशित हो उन्हे पढा जाये, समझा
पर वे सामान्य भीड से अलग अपनी पहचान बनाने और रोजमर्रा का चक्की म पिसन से ब
शायद ही कुछ कर पाते हैं। ज्यादा पुरानी बात नहीं है जब ऐसा नहीं होता था। इसी स
शुरुआती दशको मे कविया ने अपने अजीबो गरीब पहरावो और सनक भरे आचरण से
चौकाना चाहा था। पर यह सब महज सार्वजनिक प्रदर्शन की चीज थी। अक्सर ऐसे क्षण
जब कवियों को अपने आडम्बर ताम-झाम और दूसरे काव्यमय वसन-भूषण उतार क
कमरे मे एक कोरे कागज का सामना करना पडा – धीरज के साथ अपने 'निजत्व' की प्र
करते हुए आखिरकार यही था जो वास्तव म मायने रखता था।

यह सयोग नहीं है कि बडे-बडे वैज्ञानिका और कलाकारो की फिल्म जीवनिया ध
से निर्मित की जाती हैं। ज्यादा महत्वाकाक्षी निर्देशक हुआ तो वह बडे विश्वसनीय तरी

उस सारी सृजनात्मक प्रक्रिया को पुनर्निर्मित करना चाहता है जिससे गुजरकर महत्वपूर्ण वैज्ञानिक खाजो और उत्कृष्ट कलाकृतियो ने जन्म लिया। और कुछ खास तरह के वैज्ञानिक श्रम को किसी हद तक चित्रित किया भी जा सकता है। प्रयोगशालाए छोटे-बडे उपकरण और भारी भरकम मशीनो को जीवन्त दिखाया जा सकता है, ऐसे दृश्य कुछ समय तक के लिए दर्शक को बाँध भी लेते हैं। और फिर क्लाइमेक्स का वह रोमाचक क्षण- क्या थोडे थोडे परिवर्तनो के साथ हजार बार दोहराया गया वह प्रयोग क्या इस बार कामयाबी को छू सकेगा? यह सब बहुत नाटकीय हो सकता है। चित्रकारो के बारे में दिखायी गयी फिल्मे भव्य हो सकती हैं, क्योंकि उनम किसी प्रसिद्ध चित्र के धीरे धीरे आकार लेते जाने को पुनर्सर्जित किया जा सकता है - पेंसिल स्केच से लेकर अतिम ब्रश स्ट्रोक तक। सगीतकारो पर बनी फिल्मो मे सगीत की बहार रहती है - सगीतकार के कानो में जन्मी स्वरलहरी की पहली थिरकन से वाद्यवृन्द की एक परिपक्व प्रस्तुति तक की सपूर्ण यात्रा। हाँ, पर यह सब बहुत बचकाना और सीधा-सपाट है और इसमे कही भी उस रहस्यमय मानसिक अवस्था के बारे में कुछ पता नहीं चलता जिसे आमतौर पर अत प्रेरणा कहा जाता है। पर इन फिल्मो से कम से कम कुछ तो ऐसा मौजूद होता ही है जिसे देखा जा सकता है, सुना जा सकता है।

इस मामले मे कवियो की स्थिति एकदम निराशाजनक है। उनका काम कहीं से भी फोटाजेनिक नहीं होता। कोई शख्स एक मेज पर बैठा रहता है या सोफे पर लटा रहता है और एकटक दीवार या छत को घूरता रहता है। कभी-कभार यह शख्स कुछ पक्तिया लिखता है पर पन्द्रह मिनट बाद ही उन्हे काट भी देता है उसके बाद फिर एक और घटा बीत जाता है इस दौरान कुछ भी नहीं घटता। इस तरह के दृश्य को देखने मे भला किसकी रुचि हो सकती है?

मैंने अत प्रेरणा का जिक्र किया। समकालीन कवियो से जब आप पूछे कि यह क्या है और क्या सचमुच ऐसी कोई चीज होती है तो वे टालमटोल के जवाब देने लगते हैं। ऐसा नहीं है कि उन्होने अपने भीतर कभी इस सृजनात्मक आवेग को अनुभव नहीं किया हो पर बात सिर्फ इतनी है कि जिस चीज को आप खुद न समझ पा रहे हों, उसे दूसरों को कैसे बताया जाय?

कभी-कभार जब मुझसे इस बार मे पूछा गया है तो मैं भी अचकचा गयी हूँ। हालाकि मेरा कहना यह है कि अन्त प्रेरणा पर केवल कवियो-कलाकारो का ही विशेषाधिकार नहीं है। इस ससार मे हमेशा से कुछ ऐसे लोग रहे हैं, आज भी हैं और हमेशा रहेगे जिनके दरवाजों पर अन्त प्ररणा दस्तक देती है। ये वे तमाम लोग है, जो अपनी अन्तरआत्मा की आवाज सुनते हैं और अपना काम भरपूर प्रेम और कल्पना म डूब कर करते हैं। डाक्टर शिक्षक माली और सैकडा ऐसे लोग हो सकते हैं। जब तक वे अपने काम मे नयी नयी चुनौतियो को खोजते रहते हैं। उनका काम अनवरत रोमाच से भरा रहता है। मुश्किलें एव असफलताए उनकी जिज्ञासाओ को शिथिल नहीं कर पाती। ये लोग जिस किसी समस्या को सुलझाते हैं उसी मे से तमाम

तरह के नये-नये प्रश्न उभारते हैं। अन्त प्रेरणा चाहे जो हो, यह एक अनवरत एहसा नहीं मालूम' की अभिव्यक्ति से जन्म लेता है।

लेकिन इस ससार म इस तरह क लोग ज्यादा नहीं है। धरती पर अधिकाश र किसी तरह जीते चले जाते हैं। ये काम करत हैं क्योंकि उन्ह काम करना पडता है इस काम या उस काम को इसलिए नहीं चुना कि उसम एक नशा उन्माद है बल्कि जिंदगी की परिस्थितियो ने उस काम को उनक लिए निर्धारित कर दिया है। इस प्रेमविहीन कार्य एक उबाऊ किस्म के काम, जिनका महत्व सिर्फ इसलिए है कि र पास तो यह भी नहीं है - यह मनुष्य के जीवन की सर्वाधिक भयावह विडम्बना है। अ इसके कोई आसार नजर नहीं आते कि आने वाली सदियो मे इस ढर्रे म कोई परिवर्त इसलिए हालाकि मैं अन्त प्रेरणा पर केवल कवियो का एकाधिकार नहीं मानती पर मैं उन्ह उन कुछ खास लोगों म गिनती हूँ जिन पर नियति की कृपा रही है।

इसस मेरे श्रोताओ के मन म कुछ शकाए पैदा हो सकती हैं। तमाम तरह के उ तानाशाह, कट्टर और मताध व्यक्ति, लोगों को उकसाने वाले नारे उछालकर लगाक हथियाने म जुटे हुए लोग- इन सब को भी अपने काम मे बडा आनद आता है। ये अपने काम का कल्पनाशीलता भर जोशो-खरोश के साथ अजाम देत रहते हैं। बेशा सच है। पर यह भी सच है कि वे "जानते हैं" और जो कुछ, जितना उन्होंने जाना वही उनके लिए हमेशा हमेशा के लिए पर्याप्त होता है। ये और कुछ खोजना नहीं चाहते हो सकता है नया जानना उनके तर्कों की ताकत को कम कर द। पर कोई भी ज्ञान प्रश्नो की ओर लेकर नहीं जाता, जल्दी ही खत्म हो जाता है। लगातार जीते चले जाने वे जो ताप चाहिए ऐसा ज्ञान उस ताप को बनाये नहीं रख सकता। कुछ अतिवादी मामलो ऐसा ज्ञान समाज के लिए विनाशक भी साबित हुआ है। प्राचीन और आधुनिक इतिह इसके बहुत स उदाहरण मिल जायगे।

यही वजह है कि इस छोटे से कथन - 'मैं नहीं जानती' को मैं इतना ऊँचा स्था हूँ, यह छोटा सा कथन है, पर इसकी उडान बहुत ऊँची है। यह हमारे जीवन का विस्ता है ताकि उसमे हमारे भीतर की खाली जगह और वह बाहरी विराटता भी शामिल हो जिसमें हमारी यह छोटी सी धरती जाने कब से तैर रही है। यदि आइजेक न्यूटन स्वय नहीं कहता कि "मैं नहीं जानता", तो उसके छोटे से बगीचे मे सेबो की बरसात भी होने र तो क्या होता? अधिक से अधिक यह होता कि वह झुककर उन्हे उठाता और चपड- भकोस जाता। मेरी हमवतन मादाम क्यूरी यदि खुद से यह नहीं कहती कि "मैं नहीं जा तो शायद वह एक अच्छे परिवारो से आयी लडकियो को एक निजी हाईस्कूल म रसायन ही पढाती रहती और एक प्रतिष्ठापूर्ण नौकरी म ही उसका जीवन बीत जाता। लेकिन वह ल कहती रही कि "मै नहीं जानती" और ये शब्द उसे एक नहीं दो बार स्टॉकहोम की पर ले आये जहा बेचैन और प्रश्नाकुल आत्माओ को यदा-कदा नोबल पुरस्कारो से न

जाता है।

कवि यदि सच्चा है तो उसे भी बार-बार यह दोहराना होगा कि "मैं नहीं जानता"। हर कविता इसी कथन का जवाब देने का प्रयास करती है। पर जैसे ही चरमअवस्था पृष्ठ पर अकित होना चाहगी, कवि पुन सदह से भर उठेगा, उसे लगेगा कि उसका यह उत्तर तो पूरी तरह गढा हुआ है अपर्याप्त हे। इसलिए कवि लगातार प्रयास करता रहेगा और देर-सवेर उनके इस बेचैनी और प्रश्नाकुलता के परिणामा को उनकी कृतियाँ कहा जाने लगता हे ओर साहित्यिक इतिहासकारा द्वारा उन पर विशालकाय कागजी बिल्ले चस्पाँ कर दिये जाते हैं।

कभीकभार मैं एक ऐसी स्थिति का स्वप्न देखती हूँ जिसका सच होना सभव नहीं है। मैं एक जिद के साथ यह कल्पना करती हूँ कि मै सभी मानवीय प्रयासा की नि सारता के उस हृदयविदारक शोकगीत लिखनवाले एक्लेसिएस्टेस के साथ गपशप कर रही हूँ। मैं उसके सम्मुख नतमस्तक हो गयी हूँ क्याकि कम से कम मेरे लिए तो वह ससार के महानतम कवियो म से हैं। मैं उसका हाथ थाम कर कहूँगी। "इस आसमान के नीचे नया कुछ भी नहीं है" यही ता तुमने लिखा है न एक्लेसिएस्टेस। पर तुम तो खुद इस आसमान के नीचे एकदम नये हो। तुमने जो कविता रची वह भी तो इस आकाश क तले एकदम नयी कविता है क्याकि तुमसे पहले ऐसा किसी ने नहीं रचा। और तुम्हार पाठक भी इस धरती पर एकदम नये हैं क्योंकि जो तुमस पहले यहाँ मौजूद थे व तो तुम्हारी कविता को पढ ही नहीं पाय। और यह जो सरू क वृक्ष के तले तुम बैठे हा वह भी सृष्टि के आरभ से यहाँ नहीं रहा है। इससे पहले दूसरे सरू के वृक्ष से अस्तित्व म आये थे पर उनमे से कोई इस वृक्ष के जैसा नहीं था।" और एक्लेसिएस्टेस मैं तुमसे यह भी पूछना चाहती हूँ, "अब इस आकाश के तले तुम किस नयी रचना को लिख रह हो? जो विचार तुम पहल भी अभिव्यक्त कर चुके हो क्या उन्हीं को आगे बढाओगे? या शायद उनमे से ही किसी बात को खारिज करने का तुम्हारा मन हो रहा है? तुमने अपनी पिछली रचना मे सुख के बारे म कुछ कहा था। क्या फर्क पडता है यदि यह क्षणिक है। शायद इस आकाश के नीचे अब तुम्हारी नयी कविता फिर से सुख के बारे मे हो? क्या तुमने कुछ टिप्पणियाँ दर्ज की है क्या पहला मसौदा तैयार हो गया है? मुझ पूरा सदेह है कि तुम कहोगे, "हाँ मैं सब कुछ लिख चुका हूँ और नया लिखने को कुछ नहीं है मेरे पास।" दुनिया का कोई कवि ऐसा नही हे जो यह कह सकता हो। और तुम जैसा महान कवि तो कदापि नहीं।"

इस ससार की विराटता और अपनी नपुसकता को लेकर जब हम भयभीत होते हैं तो चाह जो सोचे मनुष्यो, पशुओ और यहाँ तक कि पेड-पौधा के अपने अपने दुखो के प्रति इस ससार की उदासीनता (हमने यह क्यो मान लिया कि पेड-पौधा को तकलीफ नहीं होती?) से हम चाहे जितन क्षुब्ध हो, हम इस धरती के विस्तार के बारे मे जैसा भी सोचते हा यह विस्तार उन सितारो से आने वाली रोशनी की किरणा से छिपा हुआ है जो इसे चारों तरफ से घेरे हुए है और जिन्हे अभी तो हमने खोजना आरभ ही किया है- क्या वे सितारे मर चुके

हैं? क्या अभी भी वे मृत हैं? हमे कुछ नहीं मालूम। यह अनन्त और अपरिमित रगभवन जिसमें हम आरक्षित टिकट लेकर बैठे हुए हैं। हम इसके बारे मे चाहे जो भी सोचते रहे पर इन टिकटों की मियाद हास्यास्पद रूप से बहुत छोटी है। इन टिकटो का दो निरकुश तारीखा ने घेरा हुआ है। हम इस दुनिया के बारे मे जो कुछ भी सोचते रह पर यह बहुत विस्मयकारी दुनिया है।

पर इसे 'विस्मयकारी' कहना इसे एक ऐसे विशेषण से युक्त करना है जिसमे इसका तार्किक ताना-बाना छिप जाता है। आखिरकार हमें उन्हीं चीजो से तो विस्मय होता है जो कुछ जाने-पहचाने और सर्वत्र स्वीकार्य मानदडो से परे हटती हैं जो उस प्रत्यक्षता से दूर चली जाती हैं जिसक हम आदी हो चुके हाते हैं। किन्तु सच ता यह है कि स्वत स्पष्ट ससार जैसा कुछ भी नहीं होता। हमारा विस्मित होना स्वभावगत है और यह किसी और से तुलना पर आधारित नहीं है।

माना कि अपनी रोजमर्रा की बातचीत म हम हर शब्द साच विचार कर नहीं बोलते। 'साधारण दुनिया' 'आम जीवन', 'सामान्य स्थितिया' जैसे तमाम जुमलो का हम धडल्ले से इस्तेमाल करते हैं। पर कविता मे जहा हर शब्द का वजन है कुछ भी सामान्य या साधारण नहीं होता न कोई पत्थर न उस पर हुआ एक बादल का टुकडा न कोई दिन न उसके बाद आने वाली रात और न ही कोई अस्तित्व, चाहे वह दुनिया म किसी का भी अस्तित्व हो।

ऐसा लगता है कि इस दुनिया में कवियो के पास हमेशा व काम होगे जो केवल उन्हीं के लिए बने होगे।

(मूल पोल भाषा से अंग्रेजी मे स्टैनिस्ला बारान्शाक
और क्लेर केवानाग द्वारा अनूदित कार्ड लिटरेचर टुडे से साभार)

अग्रेजी से अनुवाद अनुराधा महेन्द्र

*गेब्रिएला मिस्त्राल (चिली में 1889 मे जन्म शुरूआत मे अनेक वर्षों तक चिला के देहातों मे स्कूल अध्यापिका। बाद मे मेक्सिको और चिली की सरकारो की शिक्षा सलाहकार। मेड्रिड लिस्बन लॉस एजेलिस और दूसरे कई शहरो मे चिली का दूतावास प्रतिनिधि। बाद के वर्षों मे अमराका के विश्वविद्यालयो मे अध्यापन और सयुक्त राष्ट्र सघ मे प्रतिनिधित्व। 1945 मे साहित्य के लिए नोबल पुरस्कार प्राप्त करने वाला पहला लातिनी अमरीकी साहित्यकार। 1957 मे निधन। **प्रमुख कृतियाँ** 'सानेट ऑफ डेथ' 'डिसोलेशन', 'टेडरनेस' 'टाला' आदि)।*

मैं किस तरह लिखती हूँ?

–गेब्रिएला मिस्त्राल

हम स्त्रियाँ केवल कुछ ठिठोली या परिहास करने के लिए नहीं लिखतीं कि कुछ खास लम्हो के लिए लेसवाली जेकेट लटकाकर इतराते हुए बडे सजीदा ढग से महोगनी डेस्क पर बैठ जाती हो।

मुझे अपने घुटनो पर रखकर लिखना पसन्द है। मुझे कभी मेज की जरूरत नहीं पडी। चिली, पेरिस या लदन– कहीं भी नहीं।

मैं केवल सुबह या रात को लिखती हूँ। दोपहर मुझे कभी लिखने के लिए प्रेरित नहीं करती। मैं कभी इसकी सृजनहीनता, इसके बाझपन की वजह नहीं समझ पाती और न ही इस समय सृजन की कोई इच्छा मुझमे जगती है।

मैंने कभी कोई कविता बद कमरे मे या नीरस दीवार की तरफ मुह करके नहीं लिखी। मैं हमेशा आसमान से उसकी पूरी नीलिमा भरा एक टुकडा लपक लेती हूँ जो चिली ने मुझे दिया है। यूरोप से मुझे बादलो से आच्छादित टुकडा मिला है। जब मैं अपनी थकी आखों से दूर सीधी दिशा में वृक्षो के झुड देखती हूँ तो मेरा मन खिल उठता है।

जब मैं अपनी नस्ल और अपने देश की एक बच्ची थी, तब मैं वही लिखती थी जो मैं अपने आसपास देखती थी या जो मुझे सहज हासिल था– विषय की पूरी उष्मा के साथ। चूकि मैं स्वभाव से खानाबदोश हूँ, स्वेच्छा से चुने निर्वासन मे रहते मुझे ऐसा लगता है कि मैं एक ऐसी केन्द्रीय जगह से ही लिखती हू जो प्रेता की रहस्यात्मकता से घिरी हुई हो। अमरीकी धरती, मरे अपने लोग वे चाहे जीवित हो या मृत एक अवसाद मे डूबे हुए एक निष्ठावान जुलूस की शक्ल मे मेरे पास लौटते हैं। ये केवल मुझे घेरते ही नहीं, मुझे पूरी तरफ ढाप लेते हैं और

मुझे उत्पीडित करते हैं। शायद ही कभी ये मुझे दूर दूर तक फैले नजारे और विदेशी लागों को देखने देते हैं। जब मैं लिखती हूँ आमतौर पर कभी भी जल्दबाजी मे नहीं होती कभा कभार ऐसा भी समय होता है जब मैं ऐसी गति से लिखती हूँ जैसे पर्वत शिखर से पत्थर लुढकत चले जा रहे हो। पर दाना ही मामला म यदि मुझ रुकना पडे तो चडी झुझलाहट हाता है मैं हमेशा चार-छह नुकीली पेन्सिले पास रखती हूँ क्योंकि मैं बहुत आलसी हूँ। आराम की ऐसी आदत पड चुकी है कि मैं चाहती हूँ सब कुछ मुझे तैयार मिले- सिर्फ कविताओं को छोडकर

लिखते वक्त जब मैं भाषा से जूझती हूँ, उसकी पूरी तन्मयता, तीव्रता की उम्मीद क रही होती हूँ तब मुझे अपने भीतर बेहद क्रोध से दाता क किटकिटाने, शब्दो की नुकाली ध पर सैंड पेपर के रगडने की तीखी आवाज सुनाई पडती है।

अब मैं शब्दों के साथ नहीं जूझती किसी और चीज से जूझती रहती हूँ मुझे अप कविताओ से एक अरुचि और एक खास तरह का विराग पैदा हो गया है। वहा मैं ऐसी कि बोली गयी भाषा को नहीं पहचान पाती जिस डान माइगुएल दि बास्क ने "बातचीत की भाषा कहा है।

मैं अपनी कविताआ मे इतनी बार रद्दोबदल करती हूँ कि शायद ही कोई विश्वास करेगा पढत समय अपन अंतिम रूप म भी मुझ अपनी कविताए रफ ही लगती हैं। मैं जो कुछ रचती हूँ- कविता या गद्य उसमे मुझे लगता है मैंने अपने पीछे पर्वतों की भूलभूलैया को छो दिया है। इस गाठ म कहीं कुछ ऐसा जिसे खाला नहीं जा सकता वह जा मैं रचती हूँ उस बसा रहता है। लिखना मुझे खुशी से भर देता है। उससे हमेशा मुझे एक अदरूनी सुकून मिलत है। यह एक वरदान है जो मुझे मासूम सुकोमल और बच्चा जैसे सरल दिन का उपहार देत है। यह एक ऐसी अनुभूति है जब लगता है कि मैंने अपनी सरजमी पर कुछ घंटे बिताये हैं जहाँ मेरे अपने रीति रिवाज मेरी अपनी खाम खयाली और मेरी अपनी स्वच्छन्दता है।

मुझे स्वच्छ कमरे मे लिखना भाता है हालांकि मैं बेहद अव्यवस्थित किस्म की प्राणी हूँ। मेरी आँखा और आत्मा को इस खुली 'जगह' की बडी प्यास रहती है। कई बार पास की गली मे बहती हुई पानी की धार की लय का अनुसरण करते हुए मैंने कुछ लिखा है- अथवा कई बार मैं प्रकृति की आवाजा का अनुगमन करती हूँ। सभी कुछ मेरे भीतर पिघल जाता है और एक लोरी का रूप धर लेता है।

दूसरी तरफ मैं कथात्मक कविताए भी लिखती रहती हूँ जो युवा कवि बेहद नापसन्द करते हैं।

कविता मेरी इन्द्रियो को और उस सबको बहुत सुख देती है जिसे मैंने "आत्मा" कहा है- पर अपनी कविता से ज्यादा किसी और की कविता। दोनो से ही मेरे खून का सचार बढ जाता है। ये मेरे बालसुलभ स्वभाव की रक्षा करती हैं, मुझे नवजीवन देती हैं और दुनिया के बारे मे मुझे एक तरह से रोग मुक्त हो जान का अहसास करती हैं। कविता बस मेरे भीतर

बसी हुई है। मेरी गोद मे विराजमान है, यह एक जलमग्न बचपन की प्यास है। हालाकि इसका जो फल है वह तीखा और कठिन है पर जो कविता मैं करती हूँ वह मुझ दुनिया के ओछेपन से बचाती है, यहाँ तक कि यह ऐसी अभेद्य, अनिवार्य दुष्टता से भी बचा लेती है जिस हम 'बुनियादी पाप' क रूप मे जानत हैं। मैं इसे अपने साथ रखती हूँ, मै इसे पूरी पीडा के साथ अपने साथ रखती हूँ। वास्तव मे 'बुनियादी पाप' और कुछ नहीं हमारा एक सचेत और तार्किक, लय-विहीन अभिव्यक्ति मे हुआ पतन है जिसने मानव जाति को नीचे गिराया है। यह हम स्त्रियो को अधिक पीडा देता है क्योकि हमने उस आनद को खो दिया है, वह सगीतमय और अन्त स्फूर्त सहज भाषा की गरिमा जिसे इस मानव जाति की भाषा बनना था।

अपने अनुभव के बारे मे तो बस इतना ही जानती हूँ मुझे इससे अधिक खोजने के लिए बाध्य न कर

('सेलेक्टेड राइटिंग से)

सडक पर

अकेला आदमी चला जा रहा है सडक पर। बुदबुदाता। अकेले आदमी को इस समय कोई परवाह नहीं, कौन उसे देखता है, क्या सोचता है। अकेला आदमी बहा जा रहा है अपने भीतर की बाढ मे। उसके आस-पास न अब दीवारे हैं, न कोई दूसरा जो उसकी बात घोट दे। इस समय अकेले आदमी की रफ्तार इतना तेज है कि बदहवास है साथ चला आता ईश्वर भी।

लोग समझते हैं वह बहुत ही अकेला होगा जो इस तरह अपने से बाते कर रहा है। सिर्फ उसे मालूम है वह अकेला नहीं। कि उसके पाछे-पीछे कोई भागा आ रहा है। उसकी बात सुनता।

इतना वह खतरे मे

वह आदमी जो दिख रहा है दूर शहर मे, छाया-सा वह आदमी जो कर रहा है व्यस्त भाव से सब काम यहा से देखो किसा का भूला हुआ प्रेम है।

भूला हुआ है या नहीं यह पता कैसे चलता है? भूला हुआ न हो तो इतना अक्षुण्ण नही दीखता इतना व्यस्त नहीं दीखता। दीवार इतनी साफ नहीं पुती हुई होती। भूला हुआ न हो तो भूला हुआ रहने मे दिखने मे कोई भय नहीं होता।

यहा से देखो जबकि उसके सब काम हो रहे हैं कायदे स मकडी सरक रहा है उसकी पीठ पर। कुछ भी धकेल सकता है उसे कभी भी, स्मृति के गढहे मे। इतना है वह खतरे मे।

एक दिन वह जागेगी

एक दिन वह जागेगी और पायतान स उठ कर जा चुका होगा ईश्वर। एक दिन वह जागेगी और सूख चुकी होगी आख। उतर चुका होगा खुरड। थम गयी होगी पीडा।

एक दिन वह झांकेगी स्वस्थ होकर दर्पण मे और भर जायेगी विस्मय से। घाव के बिना ही वहा बधी होगी पट्टी एक।

चोट जिसे लगना होगा वहा अभी होगी बहुत दूर। किसी भविष्य मे।

हर प्रेम

हर प्रेम सबसे पहले यही पूछता है, तुम्हारी चौखट तक आकर क्या तुम मेरे लिए कूद सकते हो खिडकी से नाचे? कर सकते हो छलनी अपना सीना? हर प्रेम पूछता है यही, उड सकते हो क्या मेरे साथ दृठ अपने कधो से?

प्रेम जब आता है तुम्हारी चौखट तक तो जल्दी चले जाने के लिए नहीं। उसे जाना होता है किसी पर्वत या घाटी की तरफ। समुद्र या नदी की तरफ। वह बिना किसी पूर्व-योजना के आ निकलता है तुम्हारे घर की तरफ और जानना चाहता है तुम उसके साथ डूबने चल रहे हो या नही।

प्रेम तुम्हे भली-भाति मरने की पूरी मोहलत देता है।

जाते हुए

एक दिन प्रेम आयेगा तुम्हारे घर और घर मे राशन न होगा। एक दिन प्रेम आयेगा तुम्हारे जीवन मे और भर चुके होगे सब पन्ने। एक दिन प्रेम आयेगा तुम्हारे पास और तुम्हे मालूम न होगा, प्रेम है यह।

बदल गया होगा उसका मुख इस जन्म तक आते-आते। थक गया होगा उसका सिर। भर चुकी होगी उसमे उम्र भर की नींद।

जाता हुआ प्रेम देखेगा तुम्हे अजीब खाली आखो से। मृत्यु के करीब सपनीली हो जायेगी उसकी आखे। और गीली।

अन्त की कुछ और कवितायें

(1)

उन वाक्यो मे वाक्य अभी नहीं आए थे और वे पखहीन चिडियो की तरह दयनीय थे। उन्हे देखकर पता नहीं चलता था ये वाक्य शुरू हो रहे हैं या खत्म। करुणा का रग नीले के आसपास ही था और किसा जगह टेक नहीं लेता था मन। बची खुचा सृष्टि का व्यापार हम अपने खरीदे हुए दानो से चलाने की कोशिश करते। दीवार पर किसी भी समय दो टाँगा पर खडी गिलहरियाँ भय और फुर्ती से उन्हे कुतर रही होतीं। उन्ह देखकर यकीन नहीं होता था य कवितार्य अन्त की हैं। कभी-कभा होता था और तब वे हमे रुलाने लगतीं बेटिया की तरह।

हमारे हिस्से का अन्त बहुत भारी लगता था हमे, जो खुद को अलग रख कुछ भी देख नहीं पाते थे।

(2)

खेल के दिन थे, पानी उथला और नक्षत्रो की शुआएँ वैसी ही नीली थीं। हमारे मृतक फीके हो रहे थे और एक के बाद एक हमारे बदलते हुए घरों मे उनका आना हमे सूझता ही नहीं था। यात्राओ में बस्तियो के हरे घरो को अपने रहने के कमरो की तरह देखते हमारी आँखे दुखती थीं। जो पलाश नहीं थे वे और से और सुर्ख हमे याद रहने लगे थे। सामने के दरख्तो मे फूला की आग कभी तेज नहीं होती थी।

इतना श्रम होगा प्रेम मे हम नहीं जानते थे।

वाक्य

मेज के नीचे हमारे पैरा को गलाते हुए वे ऊपर चढते जहाँ कभी-कभी पन्ने होते थे।

होने के सार विन्यास उन वृक्षो की ओर मुँह फेर लते जो हमारी स्मृति में लताआ के नीचे अब भी दहकत थे। हम दरख्तो का नशा करने लगे थे उन कोमल

हवाओ का जो हमारे सोचते ही उनमे बन उठती थीं।

नीली घास मे सोये हम नीले आसमान मे उडते हुए कौओ का नशा करने लगे थे। वे धीमे-धीमे उडते थे हमारे प्रेम की तरह।

जैसे सेमल के दरख्त से छूटे फाहे स्याह पड गए हो।

मेरे कवि

मैंने देखा शव शब्द से वे खौफ नहीं खाते थे। खून शब्द से उनके पन्नो मे कई वाक्य भीगे हुए थ। अन्तिम पक्तियों क ऊपर उनके गिद्ध घूमते थ आकाश म।

मरकर भी उनकी प्रेमिकाएँ आईना देखने आती थीं। उनके अक्सो पर वे धूल मे धूल शब्द ही लिख पाते थे।

बच्चो को उन्हीं उगलियो से खाना खिलाते थे।

आलोचक की कविता

*स्मृतिया
केचुल नहीं होतीं।
साप केचुल छोडता है।
साप स्मृतिया नहीं त्यागता।
साप मनुष्य नहीं होता।*

*लेकिन
ताज्जुब है कि कविताए
साप की नहीं
मनुष्य की जरूरत होती हैं
और यह भी
कि वही बहस करता है
कविता की जरूरत के बारे मे।*

*आलोचक
कहीं नहीं आता
इस पूरे विमर्श मे।
वह आलोचना करता है।*

अन्वेषक की कविता

*एक जिन्दा गर्म दिल को
छूने के लिए
एक सयाने की राय मानकर
चल पडी
पूरी पृथ्वी की यात्रा पर।
युग-युगातर की*

एक लम्बी यात्रा तय करके
जब पहुची
गन्तव्य तक
तो पाया कि यह तो एकदम यहीं है
मेरे घर के पास।
तब याद आया
कि यह पृथ्वी गोल है।
फिर भी तो इसे
एक खोज ही कहेगे
और
यात्रा को नहीं मानेगे निरर्थक।

सहिष्णु आदमी की कविता

सभी वासनाए दुष्ट नहीं होतीं।
सभी इच्छाए उत्कट नहीं होतीं।
सभी प्रेम अविश्वसनीय नहीं होते।
सभी विश्वास अटूट नहीं होते।
सभी दुख असहनीय नहीं होते।
सभी क्रियाए सकर्मक नहीं होतीं।
सभी बहसे सार्थक नहीं होतीं।
सभी कविताए पठनीय नहीं होतीं।
फिर भी ये होती हैं
क्योंकि इन्हे भी तो होना है
इसी सृष्टि मे
कहीं न कहीं।

कूपमण्डूक की कविता

क्यो हमे कोसते हो इतना?
हम तो किसी का
कुछ नहीं बिगाडते।

न ऊधो का लेते हैं
न माधो को देते हैं।
सतोष को मानते हैं परम सुख।
रहते हैं वैसे ही
जाहि बिधि रखता है राम।
बिधना के विधान मे
नहीं अडाते टाग।
जगत-गति हमे नहीं व्यापती
तो तुमको क्या?
तुमको क्यो तकलीफ कि
हमारा आसमान छोटा-सा है
कुए के मुह के बराबर?
हमने तुम्हारा क्या बिगाडा है
जो कोसते हो इतना
पानी पी-पीकर?

अन्धेरे मे ही क्यो?

(1)
अधूरी कविता
अधूरे प्रेम
अधछुटे काम
हाथापाई करते हैं
पूरा होने की कोशिश मे
अन्धेरे मे ही क्यो?

(2)
पिछली यात्रा की
बची खुची
जिज्ञासाएँ
इच्छाएँ बाधाएँ
तग करती हैं
अन्धेरे मे ही क्यो?

(3)
प्रश्नो के चश्म
चट्टाना से टकराते
शोर मचाते
फूटते रहते हैं
जवाब माँगते
अन्धेरे मे ही क्या?

केवल वसन्त मे

तुम दिखते हो केवल वसन्त म
कोपलो की सुगन्ध मे
पीली सरसो की सडक पर
पुकारती है कोयल
मयूर नाचता है वृन्दावन में
फसलें कट रही होती हैं
नया खून छलांगें भरता है
पाँव उठती है सृष्टि
खिलखिला घूमते हैं फूल
तुम मौन हो।

नीलेश रघुवशी

सिदूर

छोटी सी डिबिया मे बद सिदूर
तुम आओ और
सजाओ मेरी बहन की माँग।
बनो उसके उजियारे
बनकर उजियारे चहकाओ उसे
अटको उसकी माँग मे
अटकते हैं जैसे आँसू मेरी आँख के॥
सिदूर   आओ
तेरह बरस से सूने पडे घर मे
बजवाओ शहनाई
बँधवाओ वदनबार
चमकाओ सूने पडे कलश
आओ और
गुजा दो घर को मगलगाता से।
तुम्हारा रग जो है उगते सूरज का
छोड दो उसे बहन के आर पार।
छोटी सी डिबिया मे बद सिदूर
नही जानते तुम अपना मूल्य
जाना है हम सबने   लम्बी प्रतीक्षा के बाद।

यात्रा करते पिता

पहुँच जाते हैं पिता प्लेटफार्म पर
गाडी आने से आधा घटा पहले।
रखते हैं अदर की जेब मे टिकिट
खडे हो जाते हैं चुपचाप ट्रेन मे
जगह मिलने की प्रतीक्षा या कोशिश

कभी नहीं करते पिता।
उम्र के इस पडाव मे
भला? पिता क्या सारी दूरी खडे खडे जाएगे।
झुकते घुटने और सामान पकडे पिता
क्या कोई जगह देगा।
सीट खाली होगी किसी स्टेशन पर
बैठने की सोचगे पिता
और
रख देगा आकर कोई बैग।
चल दगी ट्रेन
खडे रहगे पिता
वह सोते हुए को नहा उठाएगे
उस भी नहीं
घरकर बेठा हे जो बेमतलब दो आदमियो की जगह।
थके हारे पिता
पहुँचते हैं घर!
यात्रा की अनायास थकान
आर
दूसरे शहर जान की तकलीफ भाँपता है माँ।
माँ पिता की यात्रा जानती हे
इसलिए कभी नहीं पूछती
कैसा रहा सफर।

क्षमा कौल

अधूरी लिखी चिट्ठी रह गई शेल्फ पर

रह गई अदर शेल्फ पर
लिखना था कुछ ज्यादा डूबकर मननकर
अन्तहीन स्थगन का
अत कर।
कि क्षणाश मे
मनुष्य से हो गई कीडा।
चाहिए हाथ
कि उठाऊँ पहुचू
और लिखू।
चाहिए पैर चलू
शल्फ तक आऊ
चाहिए वही जो था
अभी-अभी
कुछ क्षण पूर्व तक।

माया की माया का मायावीपन भी
कहते हैं कि होता है मिथ्या।
और अब तो पता चला है
कि कीडे का भी होता है
मन चितन।
क्षण! ओ जादूगर
होगा क्या फिर कोई क्षण
चाहिए वही हाथ
वही पैर वही कद
वही कागज वही कलम
वही शेल्फ पर अधूरी चिट्ठी
वहीं पर।

काठ का घोडा

यह काठ का घोडा
ट्राय की हेलेन को
मुक्त कराने वाला नहीं है

उस काठ के घोडे के
जिस्म मे बने थे ऐसे
अनगिन स्थल
जिसम छिप कर बैठ सकते थे
सिपाही
उसके पेट मे था वह
छिपा हुआ दरवाजा
जिससे निकल कर
मुक्त कराया था अपनी रानी को
सिपाहियो ने
वे लौट गये होगे
विजित देश से अपनी रानी को लेकर
विजय दुन्दुभि बजाते
विजय-दर्प से अपना सीना फुलाते
रह गया होगा
वह काठ का घोडा
महज एक तदबीर की
तरकीब बन कर।

काठ का यह घोडा
इकहरी लकडी से बना
लाल पीले नीले गुलाबी
कई रगो से रगा

अपनी पीठ पर टिकाये है
एक छोटी सी सीट
बधे हैं उसके बिना पजे वाले पाव
एक नावनुमा लकडी क ढाचे से
दो साल क बच्चे के
किलकते उल्लास
तोतली चाहत
और मासूम रोमाच का
भागीदार है
काठ का यह घोडा

बच्चा जब भी बैठता है
लोहे की छड से घिरा
घोड की सीट पर

अश्रव्य आवाजो मे
जोर से हिनहिनाता हे घोडा
कई रगो वाले
उसके चेहरे पर
उभरती है–
इन्द्रधनुषी मुस्कान की रेखा
ले जाता है–
काठ का यह घोडा
अपने अशुमान को
अपने पखो पर सवार करा के
सातो आसमाना से
ऊपर
सपनो की जादुई
दुनिया म ।

एक गैर दुनियादार शख्स की मृत्यु पर एक सक्षिप्त विवरण

यह विडबना हा है और इस गैर दुनियादारी ही कहा जाना चाहिए
जब शहर मे हत्याआ का दौर था–उसके चेहरे पर शिकन नहीं थी
रात हिसक हो गई थीं और वह चैन से सोता देखा गया
यह वह समय था जब किसी भी दुकान का शटर उठाया जा
रहा था आधी रात को आर हाथ असहाय मालूम पडते थे

सबसे महत्वपूर्ण पक्ष उसके जीवन का यह है कि वह बोलता हुआ
कम देखा गया था

- *" दुनिया मे किसी की उपस्थिति का कोई खास महत्त्व नहीं है"*
- *एक दिन चौराहे पर कुछ भिन्नाई हुई मनोदशा मे बकता पाया गया था*

उसकी दिनचर्या अपनी रहस्यमयता की वजह से अबूझ किस्म की थी
लेकिन वह पिछले दिनो अपनी खराब हो गई बिजली और कई
रोज से खराब पड गए सामने के हैंडपप के लिए चिन्तित देखा
गया था

उसे पुलिस की गाडी मे बजने वाले सायरनो का खौफ नहीं था
मदिर की सीढियाँ चढने मे भी उसकी दिलचस्पी कभी
देखी नही गई राजनीति पर चर्चा वह कामचोरो का
शगल मानता था

यहाँ तक कि इंदिरा गाँधी के बेटे की हुई मृत्यु को विमान दुर्घटना
की वजह में बदल कर नहीं देखता था

अपनी मौत मरेंगे सब।।
उस अकेले और गैर दुनियादार शख्स की राय थी

जब एक दिन तेज बारिश हो रही थी
बच्चे जवान शहर से कुछ बाहर एक उलट गई बस को
दखने के लिए छतरी लिए भाग रहे थे–वह अकेला और
जिसे गैर दुनियादार कहा गया था, शख्स इसी बीच रात के
तीसरे पहर को मर गया था

तीन दिन पहले उसकी बिजली ठीक हो गई थी
और जैसा कि निश्चित ही था घर के सामने वाले हैंडपप
को दो दिनो के भीतर विभाग वाले ठीक कर जाते

उस अकेले और गैरदुनियादार शख्स का भी मतव्य
था कि मृत्यु किसी का इतजार नहीं करती

पर जो निश्चित जैसा था और इस पर मुहल्ले वालो की बात भी
सच निकली–
उसका शव बहुत कठिन तरीके से और मोड कर
उसके दरवाजे के बाद की सकरी गली से निकला।

मुआशिय

इस शहर मे मैं अजनबी यू तो न थी मेरे खुदा
इसकी जमीं इसके फलक इसकी हवा को क्या हुआ
पहचान मे आता नहीं पहचान भी पाता नहीं मुझको कोई
बदला हुआ सारा समा
है रौशनी इतनी अगर कुछ भी नजर आता नहीं
घर से यहाँ
रहते थे जिनमे कुछ मका
इक पेड था इस जा खडा
झूला पडा था डाल पर
इक दोस्त रहता था यहाँ
क्यू मिट गये सारे निशा ?
अब तो फकत हर मोड पर हर गाम पर
बाजार है बाजार है बाजार है

बाजार मे हर रोज ईद
सस्ती फरोख्त फौरी खरीद
मेले दुकादारो के हैं
क्या शार हर कारा क हैं
अशिया का जोबन है अया
छिडकाव उनके सहन मे खुशबू लुटाता मोगरा
फिर शोर उठा नागहाँ
लो लड पडे गाहक नये
खजर छुरी पिस्तौल निकले बम फटा फैला धुआँ
दौडा पुलिस का आदमी, सीटी बजी
बाजार के ऊपर तना है आसमाँ नीलम जडा
उभरी समन्दर से हवा निकला है तारा शाम का
और चाँद है पीला पडा
बाजार के अदर मगर
फुरसत किसे देखे उधर
सागर के तट पर छा गया सासो की हद तक आ गया
जो हर तरफ बाजार है बाजार है बाजार है

(1987 में जलावतनी से लौटने के बाद कराची में कही एक न

अरी अहमक ! बाजार को तुम बुरा समझती हो ? तुम मार्केट इकॉनामी और उसकी कूवतो को कम गिरदानती हो ? दरअसल तुम्हे मुआशियत की समझ ही नहीं थी। बाजार जितना फैल लोगा को उतना ज्यादा राजगार मिलता है। क्या कहा सादा जिदगी ! आदमी एक ता सादा जिदगी चाहता भी नहा दूसरे सादा जिदगी से तो मुआशियत मुजमिद[11] हो जाती है। मिसाल क तौर पर वीबीसी इकॉनामिक रिपोर्ट बराय चीन अगर एक मोहल्ले के लोग एक अडा रोज खाते हैं ता अशराफ[12] क लिए तीन हजार पाँच सौ पद्रह मुर्गियाँ पाल ली जाती हैं। उन्ह फौरन दो अडे रोज खाने शुरू कर देने चाहिये जिसके लिए सात हजार तीस मुर्गियो की जरूरत होगी। इससे उनको दाना खिलाने वाला की आमदनी दुगनी हो जायेगी। इसके अलावा मुर्गिया की देख-पाल करने वालो अडे जमा करने वाला और मुर्गीखाने साफ करनेवालो की तादात भी दुगनी हो जायेगी। यानी रोजगार म इजाफा होगा।

*　　　　*　　　　*

बर्टोल्ट ब्रष्ट जर्मन थ और एडॉल्फ हिटलर भी। नाजी पार्टी के लाखा अरकान[13] और हामा भी जर्मन थे पाकिस्तानी यहाँ तक कि हिन्दुस्तानी भी नहीं थे। बर्टोल्ट ब्रष्ट अगर पाकिस्तान म रहने वाले मुहाजिर होते तो अपनी नज्म यू लिखते–

पहले बहुत पहले सबसे पहले
वो पठाना क लिए आय

''ये गद्दार हैं अलाहिदगीपसद हैं
पख्तूनिस्तान बनाना चाहते है हिदुस्तानी एजट हैं''

मैं पठान नहीं था
मैं चुप नही रहा मैं उस कोरस मे शामिल हुआ
और मैंने गाया-
मारो पकडा जान न पाय

फिर वो बगालियो के लिए आये
गद्दार अलाहिदगीपसद हिदुस्तानी एजेट
मैं बगाली नहीं था
मैं चुप नहा रहा मैंने गाया-
मारो पकडो जाने न पाये
नामजूर नामजूर बगलादेश नामजूर

फिर वो बलूचिया के लिए आये
गद्दार अलाहिदगीपसद हिदुस्ताना एजेट

मैं वलूच नहीं था
मैं चुप नहीं रहा मैंने गाया-
मारो पकडो जाने न पाये

फिर वो सिंधिया के लिए आये
गद्दार अलाहिदगीपसद सिंधुदेशी हिंदुस्तानी एजट
मै सिंधी तो खैर हर्गिज नहीं था
मैं चुप नहीं रहा मैंने ज्यादा जोशो खरोश से सुर उठाया
मारो पकडो जाने न देना

अब वो मेरे लिए आये हैं
गद्दार अलाहिदगीपसद हिंदुस्तानी एजेंट
मैं निहायत हेरान परेशान खडा हूँ
और सुन रहा हूँ एक कोरस
सिंधियो वलूचो पठानो पजाबियो की आवाजो का

कोरस मे शामिल होने वाली
ताजा ताजा नवआमोज[14] कमजोर सी आवाजे
जिन्हे अभी ठीक गद्दार हिंदुस्तानी एजेंट कहना भी नहीं आया
मगर फिर भी वे लोग मश्क कर रहे हैं
धडकते दिलो से, उम्मीद भरी उमग से
कि एक दिन उनकी अदायगी बेनुक्स हो जायेगी

1994 तक जबकि मुमलिकते खुदादाद[15] अपने इस्तकरार[16] के 49 वर्ष पूरे कर रही है हर कौम को बारी बारी से गद्दार और हिंदुस्तानी एजट करार दिया जा चुका है – सिवाय पजाबियों के।

अब रहे पजाबी तो इस कौम (कौमियत?) मे इनफिरादी[17] तौर पर हिंदुस्तानी एजट की कमी नहीं। शायर फैज अहमद फैज, शायर हबीब जालिब सहाफी मजहर अली खां सियासतदाँ मियाँ इफ्तिखारुद्दीन- ये फेहरिस्त इतनी तवील[18] तो यकीनन है कि उनकी तादाद पाकिस्तान मे बसनेवाली किसी भी कौमियत के इनफिरादी तौर पर एलनाशुदा गद्दारो और हिंदुस्तानी एजटो से बढकर होगी। मगर अभी तक पजाबियो को कौम के तौर पर गद्दार हिंदुस्तानी एजट करार नहीं दिया गया है। अब आगे जाकर मुमकिना सूरतहालात हो सकती है-
1)- बाकी तमाम पाकिस्तानी कौमियते एक दिन पजाबियो को किसी सियासी तहरीक की

बुनियाद पर या कोई दूसरी जुगाड लडाकर मिन हैसउल कौम[19] गद्दार और हिदुस्तानी एजेट करार दे देंगी।

2) दूसरी कौमियत एस्टेब्लिशमेट पर इस हद तक कब्जा नही कर पायगी कि पजाबियो को गद्दार और हिदुस्तानी एजट करार दे सक लिहाजा एस्टेब्लिशमेट के पजाबी अफराद[20] बारी बारी दूसरा का (हर बार दूसरे और दूसरा की मदद स) गद्दार आर हिदुस्तानी एजेट करार देते रहगे।

वाजह[21] रहे कि मनदरजेबाला[22] इमकानी सूरत क अलावा यहाँ तीसरी सूरतेहाल पैदा हो नहीं सकती। या आप अगर ए नाकाबिले शिकस्त रजाइयतपरस्त[23] हा तो उस बात को यू कह सकते हैं क्या यहाँ काई तीसरी सूरतेहाल पैदा नहीं हा सकती?

अब रहा हिदुस्तान ता हिदुस्तान तो बहुत हँस रहा होगा! ईमान से कुहनी मे मुह छिपा छिपा कर चुपक चुपके हँसते हुए लाटन कबूतर की तरह जमीन पर लाट रहा होगा और हँसी के मारे आँखो से बहते पानी को पोछते हुए कह रहा होगा "लो सालो! हूर चुप्पू! अलग तो हमस हा गये हो तुम मियाँभाई! अब देखा कसी जूतिया म दाल बँट रही ह - यानी बारी बारी हर कौमियत हमारी एजट! हा! हा! हा!"

"साला बनिया! मक्कार हिदू! हम पर हसता है! साला दालखोर!"

मगर हिदुस्तान 1995 म हँस नही रहा। शायद वो कुछ खास तौर से पाकिस्तान की तरफ देख भी नहीं रहा बल्कि तुन्दही[24] स माथे पर सिदूर का घिस्सा मारे मजहबी जुनूनी सियासत की रवाँ-दवाँ है क्योंकि क्योकि वो पाकिस्तान से मुख्तालिफ है ही नहीं! बिलकुल उसी जैसा तो है हिदुस्तान!

(पाकिस्तान की साहित्यिक पत्रिका *आज* से)

1 भविष्य 2 अनपेक्षित 3 पीडा 4 समानान्तर 5 बदली हुई सभावनाओं 6 हाथ नहीं खींच सकता 7 अनुपयोगी 8 अर्थशास्त्र 9 प्रकट 10 अचानक 11 अवरुद्ध 12 खर्च 13 सदस्य 14 गैरसियासी 15 ईश्वर प्रदत्त 16 स्थापना 17 व्यक्तिगत 18 लबी 19 कौम के तौर पर 20 व्यक्तिगत तौर पर 21 स्पष्ट 22 ऊपर उल्लिखित 23 आशावादी 24 तत्परता स

अजरा अब्बास (पाकिस्तान की नयी पीढी की चर्चित कवयित्री। कराची मे रहती हैं। एक रूढिग्रस्त समाज मे स्त्री का नियति को लेकर मार्मिक कविताए लिखी है। स्वर मे एक विद्रोही तवर और खुरदुरापन। कृतियाँ नींद की मुसाफते' मेज पर रखे हाथ' 'मेरा बचपन')।

मैं लाइने क्यो खींचती हूँ ?

–अजरा अब्बास

मेरा तसव्वुरे-शायरी क्या है ? आज इस पर बात करते आपमे से शायद कोई यह कह सकता है कि छोटा मुँह और बडी बात। लकिन तीन किताब लिखने के बाद जब मैं खुद से यह सवाल करती हूँ कि मैने क्या लिखा मैने लिखना क्यूँ जरूरी समझा क्या लिखे बगैर मेरा गुजारा नहीं हो सकता था क्या सिर्फ में एक बीवी और कुछ बच्चो की माँ बनकर मुतमइन नही हो सकती थी? तो ये जवाब मैं खुद को देती हूँ कि नहीं य जो लिखने की मजबूरी मेरे साथ है ये उस वक्त ही मेरे लिए अहम् हो गयी थी जब से मैने सोचना शुरू किया था।

फिर ये कि क्या मेंन ही सोचना शुरू किया था? क्या मेर इर्द-गिर्द के लोग नहीं सोच रहे थे- मेरे भाई मेरी वहन मेरे माँ-बाप? फिर मैंने ही लिखना क्या शुरू किया? उसका जवाब मरे पास आज भी नहीं है। लेकिन शायद मैं यह कहने मे हक बजानिब हूँ कि मैं इस सोचने से कितनी घबरा जाती थी कि मुझे लगता था कि मैं तनहा होती जा रही हूँ और इस तनहाई को दूर करने के लिए मैंने लफ्जो को अपना साथी बना लिया था। लेकिन पहले वो मेरा साथ दने से कतराते थे। लेकिन फिर वो मर साथ साथ चलने लगे। सोच मेरा पाछा नहीं छोडती थी। सोच जो ज़िदगी के एक एक कोन से निकल कर मरे चारों तरफ मडलाती थी। बाअज-दफा मुझे बाहर की दुनिया से इतना अलहदा कर देती थी कि मरे साथ चलने वाले और मेरे साथ रहन वाले लोग भी मुझ घबराकर दखने लगते। ये कौन है?

लकिन य सोच आसमान से नहीं गिरती थी। य मेरे दिमाग मे किसी ऐसे खयाल के साथ नहीं आती थी जिसे लिखन क बाद मैं यह कहती कि "य फैंटसी है"। बेशक मैंने बहुत ख्वाब देखे बहुत सी मुसाफते ख्वाब में तय कीं लकिन मेरा एक-एक लफ्न मरी जिदगी से मरबूत' था। जिदगी जो मर चारा तरफ नित नयी शक्ला म कभी हवा के झाके की तरह कभी सुस्त रफ्तार कदमा को तरह गुजर रही थी। मैंने अपने लफ्जो को जिदगी का एक-एक

सास से ढाला था– कभी बहुत फुर्ती से ओर माहिर हाथो की तरह कभी बहुत फूहडपन से लेकिन मरे लिए यह नामुमकिन था कि मैं एक तरफ इस हैसियत स बैठ जाती या उस हेसियत से- एक ओरत बेटी, बहन बीवी और माँ ओर जो जो रिश्त उससे बधे हुए हैं ओर एक जो मैं हूँ- शायरा जो मेरी साच की पैदावार थी। हम दाना एक दूसर के मुत्तवाजी[2] चलन लगे। मैंने कभी कभी ये सोचा कि मेरी शायरा मुझसे जुदा हो गयी या मर गयी या मार डाली गयी ता मेरा क्या होगा? मैंन शायद तमामतर तवानाइया[3] के साथ अगर किसी स मुहब्बत की है तो वा वो अपनी शायरा से। मने उसकी बडी सवा की। उसक लिए मैंने कहीं कम्प्रोमाइज नहीं किया। जहाँ जहाॅ मुझे उस बचाना हुआ वहाँ वहाँ में निढाल भी हो गयी लकिन बहरहाल मेने उसे बचा लिया। उसको सजाया बनाया सवारा, उसकी नोक–पलक दुरुस्त की उसको दूसरे की जद नही आने दिया। मुझे मालूम था अगर य किसी जद मे आ गयी तो मैं अपनी तनहाई स खौफजदा होकर खुदकशी भी कर सकती हूँ। शायद मै यरमइयाह[4] की तरह उस दिन पर लानत भेज दती जिस दिन मुझ पैदा किया गया था लेकिन इस शायरा ने मुझे बचा लिया।

शायद आपको इस वक्त की गुफ्तगू म मुझ इस नतीजे तक पहुँचान म देर लगे कि मरा *तसव्वुरशायरी क्या है अगरचे मुझ उसकी जरूरत नहीं ह। इसलिए कि जिन लोगो ने मरी शायरी* की तीन किताबे पढी हैं और जा 'मेरा बचपन' भी पढ चुक है वे जान गय होगे कि जिदगी को मैन एक फुटबालर की तरह अपने पाँव की हरकत पर रखा हे। एक बेहतरीन फुटबालर जानता है कि उसक पाँव की कौन सी हरकत उसको गेंद के करीब ला सकती हे और कितना दूर ले जा सकती है।

'नींद की मुसाफते' मेरी पहली तवील नज्म हे। उस वक्त मरे पास शायरी का कोई इमेज नहीं था। उस वक्त मेर पास मेरे उन तजुर्बात का असासा था जो मेरे जेहनी सफर म जाद–ए–राह थे और चीजो को बगैर किसी बदिश के देखने की उपज। यहा वजह थी कि मने गजल के पाबद फार्म को इख्तियार नहीं किया। 'मेरा बचपन' पढने वालो को ये बात समझ म आ गयी होगी कि ऐसा बचपन गुजारने वाली और उसे यादो की पाटली मे बाधने वाली ओरत ही शायद 'नींद की मुसाफते' लिख सकती थी।

'नींद की मुसाफते' अचानक मेरे लिए करामत[5] बन गयी। जब मैंने ये नज्म शुरू की थी उस वक्त मैं एक ऐसी लडकी थी जिसके लिए अपन जेहनी तजुर्बे अपनी जबान पर लाना गुनाह–ए–कबीरा बन सकते थे।

मरे तजुर्बे जो मैंने कभी खुली आँख से किये थे ओर कभी वद आँखा स, फिर मेरा मुशाहिदा[6] – मैने अपने एक–एक कदम को गिना था। न सिर्फ ये बल्कि मेरा मुतालया[7] – गार्की वादलेयर दास्तायवस्की चेखव मटो और बहुत स एसे जिनको पढने के बाद मरे तजुर्बो को जुबान मिल गयीं थी अगरचे मुझे उस वक्त ही पता चल गया था कि में उनस मुख्तलिफ हूँ। इसलिए कि मेरी साच एक लडकी हाने की हसियत से मुख्तलिफ हे। जब 'नींद की

मुसाफत' की पहली लाइन मेरे दिमाग से मेरी उगलियो की पोरो तक पहुँची जिसमें मैं एक कलम पकडे थी तो मैं हैरान रह गयी-

पानिया पर चलते हुए पाँव हमारे ही थे
सरसराते हुए लिबास और उनको छू लने की
ख्वाहिश म तुम
हमारे गुलाबी अग क्या तुम्हारी उगलियो की पोरो से लगे हैं
तुम्ह पता नहीं
तितलियाँ अपने रगो को ढूढ रही हैं
तुम उन्हे मत छूना
वो हमारे गुलाबी रग लेकर उड जायगी
और पानिया पर चलते हुए हमारे पाँव देखेग
वो शायद हमारे हो हागे
मगर हम तो जब अपनी माँओ की जानुओ से लगे हुए कपडे ही होगे
और बावर्चीखाना से मसालो का खूशबू उठ रही होगी
क्या ये सच है
अगले दिनो वे सूरज के पीछे जलते बदन
अपने गुनाहो का हिसाब दगे
और परिंदे हमारी आँख अपने परो मे छिपा उड जायेगे
ये सच है
हमारे हाथो म अभी मुहब्बत स वजनी लफ्जो की खुशबू है
हम रातो को अपने बिस्तरो से उठ जाते हैं
जब हाथो मे पडी हुई चूडियाँ बजने लगती हैं
और बाजुओ से नीचे दूर तक- फैली हुई मद्धम खुशबू
हम कहाँ चले जाते हैं
अधेरे मे पीछा करती हुई रौशनियाँ।

फिर उसकी लडकी ने जो 'नीद की मुसाफते' लिख रही थी खुद को तजुरबात की एक नयी भट्ठी म डाल दिया। और वो भट्ठी मुहब्बत और उसके एवज जमाने के समाजी तकाजो के तहत शादी, बच्चे ओर फिर घिसा-पिटी एक रवायत के मुताबिक वो चक्की- जिसमे हर औरत का मुकद्दर पिसना होता है। उस औरत ने 'नींद की मुसाफता' को खैरबाद किया और चूल्हा झाकने के लिए उस तजुर्बे म दाखिल हुई जहाँ रोटी अफजलतरीन ख्वाब थी और दुनिया की सबसे कीमती शै।

'मेज़ पर रखे हाथ' तक पहुँच कर मैं एक नयी बात जान गयी थी कि तवाजुद' बहुत जरूरी है। अगर मैंने इस जिदगी और शायरी क दरमियान तवाजुद हाथ से जाने दिया तो मेरा

भी हश्र उन हीरो पजिया का सा हागा जो फुटपाथ पर कबल ओढ कर सो जाते हैं। लेकिन मैं जब अपनी नज्म 'मेज पर रखे हाथ' लिख रही थी तो शायद इस मरहले से गुजर रही थी। मैंने अपने पैदा होने वाले पागलपन को इस नज्म म भुगता दिया था।

लेकिन इस अहिस्ता अहिस्ता और तेज रफ्तार वक्त ने मुझे बार बार इस बोरडम मे जरूर डाला जो शायद मेरे अहद[9] मे हर इसान का मुकद्दर है और वो अपने इस मुकद्दर को अक्सर मस्लहतन[10] अपनी गर्दन के ऊपर आये बालो मे छिपा लेता है और फिर इस गर्दन को सभालने के लिए उस कॉलर लगाना पडता है। मैंने इस मुकद्दर को अपनी गर्दन के बालो मे नही छुपाया बल्कि एक नज्म लिखी- 'जब सारा दिन गुजर जाता है' और कइ ऐसी नज्म जो इस बोरडम के चारो तरफ से निकली थीं जिसमें वो मरहला भी- 'जब जिस्म से मैल उतारना मुश्किल लगता है' और 'ले जाते हो कहाँ'।

जब मैंने अपने बच्च को जन्म दिया वो तजुर्बा मरी जिदगी का अजीब और मौत के जायक को चखने वाला तजुर्बा था। जी हाँ मौत को मैंने तीन दिन वक्फे वक्फे से अपने बहुत करीब दखा था। अगर आप इस अजीयतनाक[11] आर लिज्जतआमेज[12] तजुर्बे से नहीं गुजरे हे तो मेरी हमदर्दी आपके साथ है। लेकिन इस तजुर्बे के दौरान मैंने औरत को सलाम किया और सबसे पहले अपने सिरहाने खडी अपनी माँ को और उसके बाद मे मैंने यह नज्म लिखी-

एक नज्म लिखना मुश्किल होता है
एक वजूद को
दूसरे वजूद से बाहर ढकेलना
बाहर आलूदगिया के ढेर पर
धीर धार काई नाम देने के लिए

शायद आप अब इस Conclusion तक पहुँच रहे होग कि जिसे मैंने इब्तिदा मे शुरू किया था - मेरा पहला जुमला 'मेरा तसव्वुरे शायरी आप सब जानते हैं'। शायरी का जिदगी से अलहदा कर दिया जाये ता वह उन अजा की तरह हा जाती है जिन पर फालिज गिर गया हो।

मेरी तमाम शायरी एक ही उन्वान के गिर्द घूमती है कि 'य है जिदगी'। अब में बहुत सी जिदगियाँ गुजारना चाहती हूँ। आर उन तमाम जिदगियो म एक शायरा की तरह जिदा रहना चाहती हूँ जा जिदगी इस दाने म भी दीख रही है जो एक परिंदे की चाच से गिर रहा है ओर उस बर्फ़ मे भी जो कहीं आँखो से दूर किसी पहाड की चोटी पर पिघल रही है। तो मरे दोस्तो मरे नजदीक शायरी एक औरत है जा जिदगी को तखलीक[13] करती है और जिदगी से तखलीक हाती है।

(शबख़ून से)

---

1 सम्बद्ध 2 समानान्तर 3 उर्जा 4 एक पैगम्बर 5 चमत्कार 6 निराअण 7 अध्ययन 8 सतुलन 9 युग 10 व्यवहार के तौर पर 11 यत्रणादायी 12 आनद से परिपूर्ण 13 सृजन

देवी प्रसाद मिश्र

राष्ट्रनिर्माण की राजनीति

भारत की आजादी के पचासव साल मे
हम दुनिया क आठव सवस भ्रष्ट देश म रहते हैं
जहाँ पैंतालीस कराड निरक्षर चालीस करोड वचित
और दस कराड बाल श्रमिक हैं

मुझे मालूम है कि यह रिपोर्ट भी है

मुझे मालूम है कि य आकडे भी हैं

मुझ मालूम हे कि यह एक आदर्श
कविता की इबारत नही भी है

मुझे शायद मालूम हे कि एक
अच्छी कविता की सरचना म
क्या क्या होना चाहिए

जैसे भारतीय राजनीतिज्ञो जिनम
पूँजावादी समाजवादी उदारवादी
हिंदूवादी साम्यवादी, एकाधिकारवादी
मुस्लिमवादा वगैरह सार शामिल हैं
का यह पता ही हागा कि
एक आदर्श राष्ट्र की सरचना के
क्या क्या घटक होते है

वे एक आदर्श राष्ट्र
नहीं बना पा रहे आर मैं
आदर्श कविता।

जनगणमन

ट्राजिस्टर पर जैसे ही जनगणमन शुरू होता
और बाबा आसपास होते तो बाबा राष्ट्रगीत के सम्मान म
सावधान की मुद्रा म खडे हा जाते

पश्चिमी वाद्या के सहारे
आह्वानमूल्क उत्सवधर्मी
राष्ट्रगान जब तक बजता
बाबा सीना तानकर
सिर उठाकर सावधान
खडे होने के अथक
प्रयत्न करते

भाइयो! जिन लोगा ने
राष्ट्रगीत राष्ट्रपति
राष्ट्रनिर्माण राष्ट्रीय ध्वज
राष्ट्रीय एकता राष्ट्रवाद का
कद्राय हल्ला किया था
अवध मे प्रोजेक्ट विकेद्रीकरण के तहत
बाबा के दारिद्रय और दासत्व का कूबड भी
उन्हाने ही बनाया था।

गठबधन

नौकरशाह का सम्बन्ध मिल मालिक से है
और मिल मालिक का मेल-मिलाप बेकर से है
और बैंकर की गलबाँही कारपोरेट से है और
कारपोरेट का गठबधन फाइनसर से हे और
फाइनेसर का रिश्ता उद्यागपति से हे ओर
उद्योगपति का गठजोड अपराधी से हे
और अपराधी का राबिता तस्कर से है और
तस्कर का ताल्लुक फिल्म बनाने वाले से है और

गगा मे शिशुमार*

पाना मे अचानक एक अजीब सी आकृति निकला
और डूब गई
दशाश्वमेध घाट से कोई सो मीटर दूर
जब कोई इसके लिए तैयार नहीं होता
वे बचे खुचे परिवार
देशकाल की सधियो को छेडते हैं
उन्हे बचपन से बनारस मे देखा है
कैलाफॉर्निया के नमकीन पानी म
उन्हे कराब से छूने के वरसा पहले
और बाद मे भी
और अब उन्हे ब्रह्मपुत्र मे देखा
सुना है सिधु के गर्म हिस्सो मे उनकी सघन बस्तियाँ थीं
और कभी पूर्वी बगाल की नदियो मे
रोजाना उनके किस्से सुने जाते
बाढ के दिनो लोगो ने
उन्हे राप्ती जैसी सहायक नदियो मे भी देखा

पता नहीं क्यो इन्हे शिशुमार शिशुमार शिशुक ओर सूस कहा गया
जबकि इन्होने कभी किसी को चोट नहीं पहुचाई
आमतार पर मित्रवत
सतह पर इनकी गति और आकृति से
इन्हे शिशुवत् या मजाक म शीशमार या चचुमार कहा जा सकता है
पर या तो इनसे डरा गया
या इनके सरल स्वभाव के कारण
हम इनपर अकारण आक्रामक हुए

* जिन्हे पश्चिमी दुनिया म डॉल्फिन के नाम स जाना गया।

फिल्म बनाने वाले की रब्त जब्त माफिया से है और
माफिया का लेन देन पुलिस स है और पुलिस का
दाँतकाटी सरकार स है और सरकार का सम्बन्ध
राजनीतिज्ञ से है

राजनीतिज्ञ कहता है कि उसका जनता के साथ
रिश्ता अटूट है

अतत सारी मुश्किल जनता के साथ
जनता के सम्बन्ध म आती थीं।

गगा मे शिशुमार*

पाना मे अचानक एक अजीब सी आकृति निकली
और डूब गई
दशाश्वमेध घाट से कोई सौ मीटर दूर
जब कोई इसके लिए तैयार नहीं होता
वे वचे खुच परिवार
देशकाल का सधियो को छडते हैं
उन्ह वचपन से वनारस मे देखा हे
कैलाफॉर्निया क नमकीन पानी म
उन्ह करीब से छूने क वरसा पहले
और बाद मे भी
और अब उन्ह ब्रह्मपुत्र मे देखा
सुना है सिधु के गर्म हिस्सो मे उनकी सघन बस्तियाँ थीं
आर कभी पूर्वी वगाल की नदिया मे
राजाना उनके किस्स सुने जाते
बाढ के दिनो लोगा ने
उन्हे राप्ता जैसी सहायक नदिया मे भी देखा

पता नहीं क्या इन्ह शिशुमार शिशुमार शिशुक ओर सूस कहा गया
जवकि इन्हाने कभी किसी को चोट नहीं पहुचाई
आमतौर पर मित्रवत
सतह पर इनकी गति और आकृति से
इन्द शिशुवत् या मजाक मे शीशमार या चचुमार कहा जा सकता है
पर या तो इनसे डरा गया
या इनके सरल स्वभाव के कारण
हम इनपर अकारण आक्रामक हुए

---

*जिन्ह पश्चिमी दुनिया म डॉल्फिन के नाम से जाना गया।

यह निरतर मनुष्य के करीव आई
और पिटी
आर इस सदी मे तो वुरी तरह मार पडी इस अभागी जलवछिया पर
जो विपरीत इतिहास प्रदूषण और हिसा क वाद भी
कुदरती जिद की तरह अडी रही वनारस और पटना के वीच

सिधु – साँग्पो भूसधि पर उनका होना समझ म आता ह
लेकिन गँगा किसी समुद्र का विघटित स्वरूप हो
यह समझना कुछ मुश्किल है
ऐसे तो फिर दुनिया की सभी नदिया
प्राचान समुद्रो का विघटित स्वरूप हैं
फिर सभा नदिया में कभी डॉलफिन रही होगी
क्या ये भटकते परिवार
धारा के विरुद्ध समुद्र से गगा म आए
या ये आदिगगावासी थ
और नमकीन पानी पार करके व्रह्मपुत्र तक पहुचे

हजारा साला स यह कुटुम्ब
इस भूभाग म
आर सभवत माठे पानी मे रहता आया है
ऋग्वेद अगर इसी भूभाग की स्मृति है
तो ऋग्वेद मे इनका जिक्र है

सिटेशिया जन्तुवर्ग कुदरती तौर पर शातसमुद्रो मे घनीभूत रहा
फिर उनके भतीजे क्या कर रहे हैं पटना और वनारस के वाच
जवकि उनके पास नमकीन और ठड पानियो मे जाने की सभावनाए रहीं

प्रोटीन या आयाडीन की कमी रही या और कोई वात
क्यो इनकी गति ओर ऊर्जा मे कमी आती गई
और क्या वात रही
कि ये धीरे-धीरे दृष्टिहीन होती चली गईं
और इतने लवे समय तक इतना वडी कामत
लगातार चुकात रहन क वाद भा

केस ये डॉलफिन
मीठे आर गर्म पानी मे जमी रहीं
आर जिनके पास सभी सभावनाए थीं
कि वे मनुष्य का अध्ययन करतीं
वे ऐसी स्थिति मे आ गईं
कि मनुष्य के पास अवकाश नहीं है
उनके बारे मे सोचने का।

पक्तिबद्ध सोच-विचार के अलक्षित परिणाम

खुदापरस्ता से लडते-लडते
हम खुदपरस्तो के साथ कतारबद्ध हुए
और अक्सर किसी न किसी खुदपरस्त को हमने
धारे-धारे खुदा बनाया
हम मानते रहे
कि खुदपरस्ता की दुनिया खुदापरस्तो से बेहतर होगी
हालाकि हम देख चुके थे
कि खुदापरस्तो की दुनिया भी
खुदपरस्तो की दुनिया ही थी।

जजीरे

असख्य जजीर थीं सब तरफ
उनम से कभी टूट जातीं थीं कोई जजीर ता मच जाता था तहलका
कभी-कभी एसा भी हाता था कि उस तरफ नहीं जाता था किसा का ध्यान
फिर स्वप्न मे या अचानक एक दिन किसा गली से गुजरत हुए आता था याद
कि न जाने कब टूट गई वहाँ पडी हुई एक जजीर
गाहे-बगाहे एक विद्वान या कार्ड कवि बताता था कि वह एक भारी जजीर थी
जो काटी गई एक शब्द की धार से
और ऐसी ही एक जजार को एक आदमी ने काटा था अपने पूरी जिदगी की दराती से
इस काम मे लगे थे उसे चौहत्तर साल जिसका थोडा-बहुत हिसाब मिल सकता है किसा सग्रहालय में

मगर जजीरे कुछ लोगो के जीवन मे इस तरह थीं जैसे शरीर मे आँते
उनके कट जाने पर उन्हे घेर लेती थीं पेचिश और वमन जैसी बामारियाँ
वे तडपते थे उन काट दी गई जजीरा की स्मृति मे और उनकी हाहाकारी कराहों न
भर दिया था समय की सभव शाति को एक स्थाई से दीखने वाले शोर से

यह अक्सर होता था कि एक जजीर का काटने की कठिन काशिश म
उनकी भारी कडियाँ गिर पडती थीं हमारे माथे पर
माथे पर पड गए उन निशानो से पहचान लिए जाते थे हम अपने कुछ लोगो के बाच
बाकी दूसरे लोग समझते थ कि य निशान या ही लडाई-झगड क हैं या कहीं गिर पडने के
इन वजहा से भी सभव हाता था कि जजीरे काटा जा रही थीं थोडी-थोडी रोज-रोज
यह देखना भी कम दिलचस्प न था कि पाठ शामिल कर दिए गए थे बच्चों की किताबो मे
जिनमे बताए गए थे जजीरो को काटने के सैद्धातिक तराके
मगर बच्चो की मुश्किल यह था कि जजीरों क साथ जाने की कला
के बारे मे भी कुछ किताब थीं पाठ्यक्रम मे
जिन्हे पढते हुए हा उत्तीर्ण करना होता थीं उन्हे अपनी कक्षाएँ

मुश्किल यह भी थी कि जीवन की सामूहिकता ही बँधी आ रही थी छोटी-छोटी
जजीरो से
जजीरो की प्रतिष्ठा ने भी लगभग अटूट कर दिया था जजीरा को
वे आभूषणा की तरह हो गइ थीं
कुछ सस्कारो की तरह थीं ओर पवित्र बधनो की तरह चिपकी हुई थी त्वचा से
लगता था उन्हीं ने थाम रखा है ससार
वे हमारी सभ्यता का चेहरा हो गई थीं
चौखट पर ही देखा जा सकता था उन्ह पडा हुआ
हमारे जरा-से उत्खनन से हो प्रकट होन लगती थीं व
हमारे ही भीतर से अपने भारी ओर जग लगे रूप म निकलती हुई
उनकी खन्-खन् की आवाजे एक समूह को भर देती थीं खुशी से आर एक दूसरे
समूह का भय से
और यह प्रक्रिया तवदील हो चुकी थी सामाजिक विकास की प्रक्रिया मे
व लताओ की तरह उगता थीं और बरसा बाद यकायक पता चलता था कि लताएँ
नहीं जजार हैं
मगर तब तक बहुत देर हो चुकी होता थी और अमूमन हम पड चुके होते थे
उनके प्रम मे
फिर हम सब मिलकर करते थे उनकी रक्षा
हर घर मे उनके उत्पादन के कारखाने थे
किसी भी धातु की बन जाती थीं वे
उन धातुओ की भी जिनका कोई जिक्र नहीं था धातु-विज्ञान मे

वे अजीवित थीं मगर उनमे विलक्षण क्षमता थी भक्षण और प्रजनन की
टेपवॉर्म की तरह हमारे अतरो-कोनो मे चिपकी हुईं वे अतृप्त अनत भूख की स्वामिने
खाती हुईं हमारा पचा हुआ अन्न
उन्ह पहचान लेना कठिन न था लेकिन उन्हे उनके असली नामो स पुकारना अपराध था
उनक असला नाम या भी अलोकिक थे और हमारी भाषा क सुदरतम शब्दो को घेर
रखा था उन्होने
उनके स्कूल थे, उनके प्रवक्ता थे
ओर सबसे मजेदार आर उतना ही हतप्रभ कर देने वाला बात थी कि उनक पास ऐसे
विचार थे
जो विचार नहीं थे मगर स्वाकृत थे विचारो की तरह उसी शाश्वत जनता म

जो जजीरा को उनके अलौकिक नामा से जानता थी और उनमे जकडी हुई
हँसता-रोतीं था
उसके हँसन-रोने की आवाजा मे दब जाती थीं जजीरो की आवाजे
जा घटिया, चीखा अतिम पुकारो हकलाहटा प्रार्थनाआ का तरह सुनाई देती थीं
और उनमे छिपे आर्तनाद से व्यथित कुछ लोग आखिर
अपनी-अपनी आरियाँ ले कर जुट जात थे जजीरा का काटने म
ओर बार-बार अपने लिए बनाते थे ऐसी आजाद जगहे
जहाँ रह सकत थ एस कई लाग आर भी
जिन्हे पूरी उम्र काटते ही जाना था हर रोज काई की तरह फैलती हुई जजीरो को।

जैसे मेरे ही शहर मे

पराए शहर म थाडी-सी फुरसत हा
तो धीरे-धीरे लगता है कि यह शहर अजनबी नहीं
कोई मोहल्ला ही है अपने शहर का जहाँ किसी वजह स
आना नहीं हा पाया अब तक
यहाँ भी वेकरी की उतनी ही छोटी दुकान उतना ही कम सामान
जितना मेरे घर के बगल की दुकान मे
कुत्ता हडकाए जाने पर पूँछ दबाए भूँक रहा हे ठीक उसी तरह
जैसे दूसरी गली का कुत्ता डरता हुआ पत्थर उठाने के अभिनय से
फुरसत मे ही दिखती हैं चाज अपने सहा रग और रुप मे
जहाँ मैं सुस्ता रहा हूँ उसके सामने का मकान दिखता है वसा ही
जैसा मेर शहर मे मेर एक दोस्त का
मुमकिन हे कि आवाज दूँ तो निकल पडे बाहर कहे
तुम यहाँ कहाँ बैठे हो-चलो अदर बहुत दिनो बाद आना हुआ
जहाँ चाय पी कर रखा गिलास वहाँ वेसी ही मुद्दम हे
जैसी मर शहर के मैदान म
चप्पल उतार कर वहाँ पाँव रखता हूँ तलुए उसी तरह होते हैं लाल

जिस रिक्शे से आया यहाँ तक वह रिक्शेवाला भी
आया ह जिला जालौन से छोडकर अपना घर-बार
उसकी बातचात म भा बची हुई है बुदलखण्डी ठनक

पास म ही चार-पाँच क झुण्ड मे चिडिएँ चुग रहा हँ दाना
जैसे चुगता हैं घर के पीछे वाले खाली प्लॉट म
दूब और कचरे के बीच उड रही हैं पोलीथिन की थैलियाँ
दा कौए बैठे हें रलिग पर उसा तरह करते हुए काँव-कॉव
बिजली क तारा म यहाँ भी उलझी हुई है एक पतग
बच्च लौट रह हैं उसा तरह स्कूल से नेवी ब्लू स्वेटर मे
इन्हीं मे होगा मेरा बेटा भी रटाई गई बातो से थका हुआ
लगता हे काफी देर हुई मुझे चलना चाहिए अब
वरना वडी बेटी ढूँढती हुई आ हा जाएगी
कहेगी अब चलो भी -माँ कब से कर रहा है आपका इतजार!

रात

स्मृतियाँ बाहर आ रही हैं अपने घोसलो से
पतला लबा सडक मे रात का रग और चुप्पी समा गई है
पूरा ससार एक कुआँ जिसमे स्थिर हे साँवला जल
और जिसम अकस्मात गिरत हैं आवाजो के पत्थर
रह-रह कर एक लहर फैलती है अँधेरी दुनिया मे

वसत रात मे लौटता है सोई हुई वनस्पतियो की नींद में
हवा म साटा की आवाज और चरमराहट
वसत के चलने की आवाज है
और उसकी गध बद हो रही हे बौरा और नई पत्तिया मे

इस समय बारिश हा सकती हे
हो सकता है बाहर जमा हो रहा हो कोहरा
रात मे अदृश्य सा कुछ घटता रहता है
जिसके निशान थोडे-बहुत दिखत ह सुबह की उजास मे
और बहुत सारे अदेखे की साक्षी होती हे रात
जो एक जैसी गिरती है फुटपाथ पर सोए बेघर लोगो की कतार पर

जहाँ-जहाँ हरकत थी और जिनसे होती था जीवन की पहचान

वे सब अधिकतर चीजे गुमसुम हैं अपन अगल स्वप्नों में खोई हुई
एक आदमी बेलौस गा रहा है सूखे हुए झरने का गीत
देर रात का यह समय दु ख के राग का समय हे

कुछ जगहो पर जाग हे और रोशना की चकाचौंध
जहाँ से धुएँ की कायाहान तसवार लगातार फेल रहा है
जैसे बढती हुई रात का गेसीय छाया
रात म असीम जगह है जो चीजो के एक तरफ सिकुडने से बना है
चाजे जो गायब नहीं हुई हैं और चल रहा हैं धारे-धारे साँस लेती हुई

उधर रात का आकाश
रात मे रीत रहा है।

विमल कुमार

यामिनी की (आत्म) हत्या

नहीं की थी आत्महत्या
यामिनी ने
अपने घर के सूनसान पिछवाडे मे
वह कुएँ मे कूदी जरूर थी
पर पानी मे छिपे हुए थे कुछ हत्यारे
–पडोस की छत पर खेल रहे बच्चों ने
यही बताया था

एक दिन अकेली नाव से
उस पार कहीं जाते हुए
बीच नदी मे उसने छलाग जरूर लगायी थी
फिर कई दिनो बाद उसकी लाश फूलती नजर आयी थी
मछुआरो ने उसे रोकने की कोशिश की थी
पर मगरमच्छ भी थे बहुत सारे
–किनारे खडे लोग यही कह रहे थे।

कुछ दिनो बाद
पुराना पुल पार करते हुए
सामने धडधडाती आती रेल देखकर
वह सीधे लेट गयी थी
पटरिया पर
थोडी देर बाद उसके शरीर के
टुकडे ही टुकडे
चारो तरफ खून के छींटे
लाइन ठीक करनेवाले मजदूरो का यही कहना था
पर आत्महत्या नहीं की थी
यामिनी ने

कई सालो बाद–
उसका शव पखे से लटकता हुआ जरूर पाया गया था

वहाँ एक अधूरा प्रेम-पत्र भी पडा मिला था
जिससे पता चलता है कि वह अपने जीवन से ऊब चुकी थी
पर किसी ने बताया
उसका शरीर दरअसल जला हुआ था

दरवाजा तोडने पर
पता चला
वह नींद म ही हमेशा के लिए सो गयी थी
क्योंकि उसका शरीर नीला पड गया था

अखबार म एक छोटी सी खबर छपी था
कि कनपटी पर गोली उसने खुद ही मारी थी
पिस्तौल पर उसकी हा उगलियो के निशान थे
और उस वक्त कोई नहीं था घर मे
ये सारे सबूत हैं
कि आत्महत्या यामिनी ने ही की थी

पर मुझे लगता हे
कि उसकी हत्या हुई है
दिन-दहाडे हत्या।
गोली किसी और ने चलायी थी
घर के भीतर से
जहर तो उसे उसकी इच्छाओ ने दिया था
जिसकी वह नींद म कामना कर रही थी
आग तो उसके पडासी ने हा लगायी थी
अपने रसोईघर की खिडकी से जलती तीली फेककर
पखे से रस्सी मकान मालिक ने ही लटकाया थी
कि एक दिन वह इस फदे म फस जाए
पटरियो पर उसे धकेला था
पुल पर उगी बेतरतीब झाडियो न
जहा से होकर वह हर रोज घर जाया करती थी
मल्लाह ने ही उसे गिराया था
नाव पर चढने के बाद
जिस पर सबसे ज्यादा यकीन होता हे यात्री को

मौत मुकर्रर किया गया

खवर थी कि
जगल मे खिरनी के पेड के नीचे सोये
एक भील वालक को सपने म
एरावत भी चाहिए ओर लक्ष्मी भी
पूरे स्वर्ग म मानो आ गया भूचाल

इसमे भूचाल की क्या वात
अवसरो पर इतना एकाधिकार भी ठीक नहीं

ऋषि मुनि सब वैठे
होने लगा चिन्तन
चिन्तक मण्डल की हुई कई वैठक -

कि इस भील वालक की आकाक्षा को कैसे नियत्रित किया जाए
अनुकूलन की समस्त तकनीको पर किया गया विचार
कि इसे कैस अनुकूलित किया जाये

ये इच्छाए भी ऐसी हैं कि इस अखण्ड म इनका समाहन भी सभव नहीं
गहन चिन्तन करते हुए कि एक चिन्तक ने दिया विचार-
कुछ नहीं तो 'वध'
वध ही है अतिम रास्ता ।

दखिये कितना निरर्थक है इनका दिव्य ज्ञान
कि एक भील लडके क सपने म पल रहीं आकाक्षाओ के लिए
उसे मौत मुकर्रर किया गया।

आँझुलिया

आँझुलिया आँझुलिया
तुम्हारी आँखें कितनी सुन्दर
सुबह की ओस ने कहा आँझुलिया से
ओर आँखो से ढेर सारी चमक
उडेल गयी आँझुलिया

आँझुलिया आँझुलिया
तुम्हारे हाठ कितने सुन्दर
सुबह के फूलो ने कहा आँझुलिया से
और होठो से ढेर सारी हँसी
बिखेर गयी आँझुलिया

आँझुलिया आँझुलिया
तुम्हारा सुर कितना मधुर
भोर का चिडियो ने कहा आँझुलिया से
और देर तक चहचहाती रही आँझुलिया

आँझुलिया आँझुलिया
तुम्हारे पाँव कितने कोमल
प्रात का किरणा ने कहा आँझुलिया से
और दूर तक नाचती चली गयी आँझुलिया

आँझुलिया आँझुलिया
तुम्हारे बाल कितने सुन्दर
सुबह की हवाओ न कहा आँझुलिया स
और ढेर सारी खुशबू
उलाच गयी आँझुलिया

आँझुलिया आँझुलिया
तुम कितनी सुन्दर
तुम रहो मेरे पास
जैस मेरे घर म पीतल की थाली
झाँझा कुतिया
लोहे की पलग चादी का कटोरा
जेसे मेरी जेब म रुपया-पैसा
इत्र की डिविया
रेशमी रूमाल मुकदमा के कागजात

जस जैसे
मेरे पनबट्टे म पान वगीचे मे फूल
पाँव मे जूते
तुम रहो मेरे पास
पापी पुरुष ने कहा आँझुलिया से
और गन्ने के खेत मे भागती चली गयी आँझुलिया

पत्ता की धार से कट गये अग-अग
तार-तार हो गय कपडे
अपने हा लहू का वस्त्र पहने
भागती रही भागती रही
जब तक भाग सकी आँझुलिया

बडे-बुजुर्ग कहते हैं
आज भी आधी रात को
गन्ने के खेतो म भागती रहती है आँझुलिया
फँस जाता है एसा भूल-भूलेया मे
कि कभी नहा निकल पाती है बाहर

बडे-बुजुर्ग झूठ नहीं कहते
मेने भी कई बार देखे ह सुबह-सुबह
गेडो पर रक्त क ताजा निशान।

गोलबद स्त्रियो की नज्म

कुछ हँसती हे आँचल से मुँह ढककर
तो कुछ मुँह खोलकर ठहाके लगाती हैं
गोलबद होकर स्त्रियाँ
जाने क्या क्या बतियाती हैं

बात कुएँ से निकलकर
दरिया तक पहुँचती ह
ओर मौजो पर सवारी गाँठ
समदर तक चली जाती हे

समदर इतना गहरा
कि हिमालय एक ककड की तरह डूब जाये
ऊचीं-ऊची उसकी लहर
बादला के आचल पर जलधार गिराती

वेदना की ह्वेल
दुष्टता की सार्क
छुपकर दबोचने वाले रक्तपायी ऑक्टोपस
जाने और भी क्या-क्या उस समुद्र मे

गम हो या खुशी
चुपचाप नहीं पचा पाती हें स्त्रियाँ
मिलकर बतियाती हैं मिलकर गाती ह
इसीलिए तो इतना दु ख उठा पाती है

स्त्रियो ने रचीं हैं दुनिया की सभी लोककथाएँ
उन्हीं के कठ से फूटे हैं सारे लोकगीत
गुमनाम स्त्रिया ने ही दिये हैं
सितारो को उनके नाम।

एकान्त श्रीवास्तव

मेधा पाटकर

समुद्र है तो बादल है
बादल हैं तो पानी है
पानी है तो नदी है
नदी है तो बची हुई है मेधा पाटकर

नदी है तो घर हैं
उसके किनारे बसे हुए
घर हैं तो गाँव है
गाँव है मगर डूबान पर
डूबान में एक द्वीप है
स्वप्न का
झिलमिल
मेधा पाटकर

यह जंगल की हरियाली है
चिड़िया का गीत
फूलों के रंग और गंध के लिए लड़ती
जड़ों की अदम्य इच्छा है यह

हस्ताक्षर*

सिर्फ़ एक हस्ताक्षर किया जाता है
और नीली पड जाती है धरती की देह
बुझ जाता है चाँद
सूख जाती हैं नदियाँ
अदृश्य हो जाते हैं हरे-भरे खेत

सिर्फ एक हस्ताक्षर किया जाता है
और एक बाघ की दहाड सुनाई देती है
उड जाते हैं सारे सगुन पछी

सिर्फ़ एक हस्ताक्षर किया जाता है
और छिन जाती हैं हमारी आखे
कट जाते हैं हमारे हाथ

सिर्फ एक हस्ताक्षर किया जाता है
और खो देते हैं हम
अपना देश।

* संदर्भ गैट तटकर और व्यापार संबंधी आम समझौता।

सत्यपाल सहगल

सूखी नदियो के पाट

सूखी नदिया के पाटा का रग
चलो दिखाऊ गर हिम्मत है तो
आकार केवल आकार
नदियो का नाम उन्हे फिर भी मिला हुआ
रेत हमार साने तक आ जाती है
यह है नदी का रास्ता
यह सूखापन भी जाता है आरभ तक अत तक
पछी उन्ह पार करता है और मन म
हूक उठता ह
एक कल्पना जो अतृप्त रहेगी की चले चले
इसके साथ-साथ
ओर ध्यान देने पर यह बात उभरती आती है
इनमे ऐसा क्या ह
सिर्फ इसके कि इनका सारा पानी बह चुका है

सपन

हा म सपन लेता हू-
एक दिन तेरे शरीर के जगल मे खो जाऊगा
और वहीं फनाह हो जाऊगा

एक दिन मैं भूल जाऊगा अपना शरीर
सिर्फ तुम्हारा शरार याद रखूगा
एक दूसरे दिन
मैं तुम्हारे शरीर क दपण म अपना शरीर देखूगा –
एक तीसरे दिन

म तुम्हारे शरीर स एक टुकडा लूगा
और अपने शरीर म उगाऊगा

मेने राते देखीं हैं
इसलिए तुम्हारी रातो को जल्दी ही जान जाऊगा
मे तुम्हारे दिना तक
तुम्हारा राता को लाऊगा

एक सुबह जब तुम बिस्तर पर चादरे समेटोगी
तुम्हे भा
कान से गिरी बाला की तरह
चादर पर
एक सपन मिलेगा

ओ रात

ओ रात। खुदा की एक बडी नेमत है तू
खुशी है मुझको कि तू अनछुई है अभी
अकेली है और कोई तुमसे बाते कर सकता है
हैरान हू कि कोई तेरी बाते नहीं करता
इतिहास से बाहर रही तू हेरान हू
और अपने ही रक्स मे शामिल है तू
निगहबान चद जो मिले जीवन म
तुम्हारी खसूसियत से नावाकिफ थे
ओ रात। ओ मोअज्जिज मुहतरमा।

उठती है तू और मेरे भीतर हर सू भर जाती है
एक नामालूम जज्बे से भारी होने लगता हू
वहशत के आए मका कई पर ये मका। यह केसा मका।
नस्ल कौन सी है हमारी रातो की शेदाई
राह तुम्हारी न थमती है और न थकत हें हम

यू चले हैं हम किधर ए रात। बता

आलम एक तोडने और एक बनाने
ख्वाब ये जो मडरात और बरसते रहे
यह अचानक था हम आ गए तेरे इलाके मे
और कर दिया तूने काला जादू?
ओर बदनसीबो का असली पनाहगाह
बता किन पर तू खुश्बू बनकर छाता है और क्यू कर

नवबर के पत्ते

नवबर के पत्ते आ गए
नवबर की ठड के साथ
नवबर के पत्ते आ गए उनके लिए जिनके लिए उन्हे आना था

क्या वे हमारी स्मृतियो से आए हैं
या सपनो में से
क्या वे हमारी भूख से निकले हैं
या नींद से

और क्या क्या उनके साथ आया
आओ गिनाए

इन पत्तो में बचा हुआ एक रग है
दरअसल बात नवबर की धूप की भी होनी चाहिए
जो सबसे ज्यादा नवबर के पत्तो पर पडती है
और हवा की भी
जो केवल इन्हीं पत्तो को छूती है

इन पत्तो का दुख देख
न जाने किन किन पत्तो की याद आती है
उन पत्तो की याद

याद जा भूल न पाती ह

नवबर के पत्ते
क्या जाने मुझे जानत भी हें या नहीं

हजारो पत्ते
अपने को पहचानत हुए
लाखा पत्ते
एक दूसरे के साथ-साथ
कोई उन्ह देखता ह
कोई उन्ह दखता है
क्या कोई ओर है जो उन्ह देखता है?

क्या कोई और होगा
जो उन्ह दखेगा

दिसबर की गली खुलेगी
और नवबर के पत्ते उसमे चले जाएगे
कभी भी लोट कर न आने के लिए।

फरिश्ते के हाथ

ध्यान से दखा ता पता चला जिन्हे मैं हमेशा से अपने मानता रहा वे हाथ मेरे नहीं हैं। वेसे मुझे अपने हाथ अच्छे से याद हैं यह जरूर है कि उन्ह देखना कभा-कभार ही हो पाता था। और अब तो उन्हे देखे अरसा हो गया था। इस बाच बिना हाथ का आर एक बार भी दखे मे समझता रहा कि वे हाथ जिन्ह लेकर मैं माँ क गर्भ से धरता पर उतरा था अब भा मेरे दाँये-बाँये झूल रहे है। मुझे भरोसा था कि ये वे हा हैं जो गहे-बगाहे कलम पकड लेते ह आर उसकी भीगा आँखा स उसक आँसुआ को मेरी जाभ तक खींच लाते ह आर कभी-कभा अधेरे कमरे मे दरवाजे की साँकल खोजते हैं। कितना समय बीत गया इस भरोसे मे जावन बिताते। अभी हाल म मुझे पता चला कि मेरे हाथो को बदल दिया गया ह। मैं जिन्ह अपन मानता रहा वे हाथ किसी ओर के हे। शायद इसीलिए मुझे कई बार आश्चर्य हुआ ह वह कर गुजरने पर जिसके मैं सर्वथा अयोग्य था। वह लिखने पर जिसे पढकर लगा जैसे किसी और का लिखा पढ रहा हूँ। अब अदेशा होन लगा है कि हो न हो कोई चोर किसी भले मानस के हाथ चुराकर भाग रहा होगा कि अचानक पकडे जाने के डर से उसने उन हाथो को मेरे हाथो से बदल दिया आर मरे हाथ लकर बेखौफ भाग गया। यह अदेशा भा हाने लगा है कि ये निश्चय ही किसा फरिश्ते के हाथ हैं वरना ये उसकी भागी आँखो से उसके आँसुआ का मरी जीभ तक इतना सुरक्षित नही पहुँचा पाते और मेरी खातिर खोजते नहीं अधेरे कमरे म जग लगी साँकल और मुझे वह सब नही लिखने देते जो मे उनक बार म उन्हीं स बलाग लिख रहा हूँ।

आदमी यहीं कहीं हे

आख खुलती है और दिन ताजगी लिए प्रकट हो जाता ह। जैसे बासुरी पर रूपक ताल। स्तुति और अध्यात्म का पाठ इस वक्त न पढाओ। चोरसिया कह गए हैं कि कोई नत्रहीन कहे कि गाधूलि नहीं देखी तो वह बासुरी पर रूपक ताल म बिलम्बित सुनाएगा। राज जैन न भी बजाई ह बासुरा शून्य मे जहा आदमी अपने को आसपास खाया पाता है। वह फूक से निकला आर कनवस पर दिखी।

साइकिले बेंच चटाई दीवारे कुहासा काए मोमवतिया दरवाजे, खिडकी और दहरी। वास्तुकारा यहा से हटो। नकार हाशिये से भी बाहर एक आकार है। आपने उसे राजस्थान के किलो मे देखकर गढा। राज जैन जेसा आदमी किले के भीतर पहले से ही मौजूद हे। उन्हे देखने के लिए चाहिए दृष्टि ऐसी–जो देखे कुछ जोडकर–कुछ घटाकर। जेसी खाली बेच पर काने आकर कोन बेठ गया। कोन सुनसान दीवारो को पढने के लिए पीठ टिकाये है। इस वक्त बच्चे पतगा की दुनिया मे खो गये है। ये पतगें सुरेया गिलसरा परिमल हजारा खरबूजा आर कृष्णा छाप हैं। ये उडान है हमारे सपना की सवाहक। बसत आ गया। पीला और हल्का लाल है रग।

शहर इन्ह दख जाग गया ह। तबला बजाने वाले युगल वादक बाहर गली के नुक्कड पर आये हैं। जहा कहीं भी हो कठपुतलियो –सुनो ओर नाचो।

स्पेस म ब्रह्माड की व्युतपत्ति हा नहीं एक ऐसा शून्य और खालीपन है कि जिसमे आप आकार गढ सकते हे। आदमी ओरत पशु ओर मनुष्य जगत की सारी विजुअल रियल्टी। हेनरी मत्से ने दी ह लाईना की आजादी आर रगा के मेल। काच के टुकडा पर कैनवस बन रहे हे।

रूपिन और सूपिन

खिला हुई चादना म बिखरा हे किसका बचपन। किसको याद हे चादना पेडा से छनकर आई या दीवार से। मै हा नहीं ज्यादा जानता अपने बचपन के बारे म ज्यादा

फरिश्ते के हाथ

ध्यान से देखा तो पता चला जिन्हे मैं हमेशा से अपने मानता रहा वे हाथ मेरे नहा हैं। वैसे मुझे अपने हाथ अच्छे से याद हैं यह जरूर है कि उन्हे देखना कभी-कभार ही हो पाता था। आर अब तो उन्हे देखे अरसा हो गया था। इस बीच बिना हाथ का आर एक बार भी देख मैं समझता रहा कि वे हाथ जिन्हे लेकर मैं माँ के गर्भ से धरती पर उतरा था अब भी मेरे दाँये-बाँये झूल रहे ह। मुझे भरोसा था कि ये वे ही हैं जो गहे-बगाहे कलम पकड लेते है और उसकी भीगी आँखो से उसके आँसुआ को मेरी जाभ तक खींच लाते हे आर कभा-कभा अधेरे कमरे मे दरवाजे की साँकल खाजते हैं। कितना समय बीत गया इस भरोसे मे जावन बिताते। अभा हाल म मुझे पता चला कि मेरे हाथो को बदल दिया गया हैं। मैं जिन्हे अपने मानता रहा वे हाथ किसी और के हैं। शायद इसीलिए मुझे कई बार आश्चर्य हुआ है वह कर गुजरने पर जिसके मैं सर्वथा अयोग्य था। वह लिखने पर जिसे पढकर लगा जेसे किसी ओर का लिखा पढ रहा हूँ। अब अदेशा हाने लगा है कि हो न हो कोई चोर किसी भले मानस के हाथ चुराकर भाग रहा होगा कि अचानक पकड जाने के डर से उसने उन हाथों को मेरे हाथा से बदल दिया ओर मरे हाथ लेकर बेखौफ भाग गया। यह अदेशा भा हाने लगा है कि य निश्चय ही किसी फरिश्ते के हाथ हैं वरना ये उसकी भीगी आँखा से उसके आँसुआ को मेरी जीभ तक इतना सुरक्षित नहीं पहुँचा पाते और मेरी खातिर खाजते नहीं अधेरे कमरे म जग लगी साँकल और मुझे वह सब नहीं लिखने देते जो मैं उनके बारे म उन्हीं से बलाग लिख रहा हूँ।

आदमी यहीं कहीं है

आख खुलती है और दिन ताजगा लिए प्रकट हो जाता ह। जैसे बासुरी पर रूपक ताल। स्तुति और अध्यात्म का पाठ इस वक्त न पढाओ। चौरसिया कह गए हैं कि कोई नत्रहीन कहे कि गोधूलि नहीं देखी तो वह बासुरी पर रूपक ताल म विलम्बित सुनाएगे। राज जन न भा बजाई ह वासुरा शून्य मे जहा आदमी अपन को आसपास खाया पाता है। वह फूक स निकला आर कनवस पर दिखी।

साइकिल बेंच चटाइ दावार कुहासा कौए मामबतिया दरवाजे खिडकी और देहरी। वास्तुकारों यहा से हटो। नकार हाशिये से भी बाहर एक आकार है। आपने उसे राजस्थान के किला मे देखकर गढा। राज जैन जेसा आदमी किले के भीतर पहले से ही मौजूद है। उन्हे देखने के लिए चाहिए दृष्टि ऐसी–जो देखे कुछ जाडकर–कुछ घटाकर। जसा खाली बच पर कान आकर कान बैठ गया। कान सुनसान दीवारा का पढने के लिए पीठ टिकाये हे। इस वक्त बच्चे पतगो की दुनिया मे खो गये हे। ये पतगें सुरेया गिलसरा परिमल हजारा खरबूजा ओर कृष्णा छाप हैं। ये उडान है हमारे सपनो का सवाहक। बसत आ गया। पाला और हल्का लाल है रग।

शहर इन्हे देख जाग गया हे। तबला बजाने वाले युगल वादक बाहर गली के नुक्कड पर आये हैं। जहा कहीं भी हो कठपुतलियो –सुनो आर नाचा।

स्पेस म ब्रह्माड की व्युतपत्ति ही नहीं एक एसा शून्य और खालापन है कि जिसम आप आकार गढ सकते ह। आदमी औरत पशु ओर मनुष्य जगत की सारी विजुअल रियल्टी। हैनरा मेत्से ने दी है लाईना की आजादी ओर रगो क मेल। काच क टुकडा पर कैनवस बन रहे हैं।

रूपिन और सूपिन

खिली हुई चादनी मे बिखरा हे किसका बचपन। किसको याद है चादनी पडा स छनकर आई या दीवार स। म हा नहीं ज्यादा जानता अपने बचपन के बार म ज्यादा

ता किसा क्यो कहू नही जानता मुझे काई। जैस नैटवाड की नदिया रूपिन और सूपिन को नही जानता काई। इनस बनकर हा बनी ह टाँस। आर इन स बना भागीरथा जिसने बनाई गगा। बहरहाल। बड होकर मे दास्तो आर रिश्तो म घुलमिल नहीं सका। मने कहा नदा भी जब मिलता है नदा से तो काफी आग तक वे अपने अपने रगा म चलता हैं। छोडती हैं अपना रग टकराकर चट्टान और पहाडा से। मैंने रिश्तो दास्तो म ठाकर खाई और अपना रग छोड दिया।

रूपिन स होकर एक पुल गुजरता ह। सूपिन मे बहता है ठडे बाज बुरास क पडा का पाना। दोनो नदा कभी नहीं सूखा और गर्मी म तो उनमे बहा ज्यादा पानी ज्यादा ठडा। व जसा जसी बडी होती गई और टाँस बन गई उनमे कई तरह स व्यापार बढा। जस पेडा क पेड बहान का वे राह बनीं। रलवे लाइन बिछी इस तरह। आप ऐश करते हागे कहा। गुजर का बेटा इस सगम पर बेठा ह मरे बचपन क दिनो की तरह।

मिरास्लाव हालुव (1923 म चकास्लावाकिया म जन्म । चार्ल्स विश्वविद्यालय प्राग से औषधि विज्ञान का उपाधि आर बाद मे इम्युनालाजा म उच्चतर शाध कार्य। इस समय इस्टीटयूट ऑफ क्लिनिकल एड एक्सपेरिमटल मेडिसिन प्राग के प्रमुख इम्युनॉलाजिस्ट। प्रमुख कृतियाँ ड डयूटा' एचिलिस एड द टॉरटाइज' 'द सा काल्ड हार्ट, 'काक्राट' 'ऑन द कन्ट्रा' 'आलदा' गा एड आपन द डोर' ए कम्पलाटला अनसिस्टेमेटिक जूलॉजी, 'थ्रा स्टेप्स ऑन द अर्थ' 'नोट्स ऑन ए क्ले पीजन' आदि)।

कविता पढने की कला

–मिरोस्लाव होलुव

जा वास्तविक अर्थों म कवि हाते हैं उनके कविता पढन क कुछ बड कठोर नियम ह। सबसे पहले ता यह कि उनम एक कामचलाऊपन होना चाहिए वे पूरी तरह स अस्त व्यस्त होन चाहिए। आप यदि कवि हैं ता जिन कागजा म स आप कविताए पढग कवल उन्हा कागजा को लेकर आपको मच पर नहीं पहुँचना चाहिए। आपके पास एक वडा सा झोला होना चाहिए जिस पढते समय लापरवाही से कहीं पटक दना चाहिए। इस झोले म से आपका अपनी पुस्तके धीर धीरे एक-एक कर निकालनी चाहिए ताकि लागो को यह पता चल कि आपने अव तक कितनी किताव प्रकाशित करायी है। कविता पढन से पहले आपका अपनी कविता पुस्तक के पृष्ठ लगातार पलटते हुए बीच मे कुछ भेद भरे जुमल कहते हुए सभाकक्ष म बठे श्रोताआ म एक तनाव को पैदा करना चाहिए। अव दख कि इसके बाद आपको क्या करना है। आप कभी भी अपने लिये निधारित समय का परवाह न कर। कवल कवि यश प्रार्थिया की भीड ही एसा करता हे। कविता पढते समय कविताओ को चिन्हित करने के लिये आपन जा पर्चियाँ किताब क पृष्ठा म बीच बीच मे रखी थीं उन्ह जमीन पर गिरा द। आप किसी भी तरह का कचरा फैलायेंग यह आपक आजाद व्यक्तित्व का निशानी होगी। और भी ज्यादा आजाद व्यक्तित्व क लिये जरुरा है कि आप मच पर शिष्ट व्यवहार के किसी भी नियम का पालन न कर। मच पर आते समय बेहतर हागा आप अपनी पतलून को दानो बाहा से खाचकर अपने पेट पर चढा द। आप बार बार सिर खुजाते रह क्याकि इसस आपका प्रतिभा और गहरी सृजनात्मक क्षमता का पता चलता है। कभा भी किसी सामान्य नागरिक की तरह कपडे न पहन। वास्तविक कवि की छवि क लिय जरुरी है कि आपको सिर पर कुछ पहन होना चाहिय।

वह डनिम की चिमनी हो सकती है, एक बास्कटबाल खिलाडी की कैप भी हो सकती है। यह उलटकर पहनी हानी चाहिए ताकि पता चले कि एक सच्चा कवि कैंसरजन्य रडिएशन के सम्मुख बिना किसी रक्षात्मक उपाय क खडा है।

आयोजको को भी कुछ नियमो का पालन करना चाहिए। कविता वाचन कायक्रम क पहले उन्ह मच पर लगे माइक्र और प्रकाश व्यवस्था की जाँच हर्गिज नहीं करनी चाहिए। गडबडी होने की स्थिति म बिजली मैकेनिक की ढूढ मचना जो एन वक्त पर कहीं भाग जाता है एक खास तरह क नाटकीय सवेग का पदा करता है जा अन्यथा आपकी कविताओ म मौजूद नहीं होता। जो सचमुच कल्पनाशील आयाजक होते हैं वे मच पर पढने का ऊँचा स्टड कुर्सी या तिपाई रखना भूल जात हैं। मच पर दिखाई दता खालीपन श्रोताआ म वही भाव जगाता है जो 'वस्टलेंड' या 'हाउल' जैसी कविता को पढकर जगता है। इसके अलावा मच पर पहुँचान वाली सीढियाँ जितना सभव हो सके उतनी ऊँची और अदृश्य हानी चाहिएँ। इससे कवि का अपनी कुछ शारीरिक चपलता और अतीन्द्रीय दृष्टि प्रदर्शित करने का अवसर मिलता है। कला की रहस्यात्मकता का उद्घान क लिए कवि के जो परिचयात्मक विवरण दिये जाय वे दस वर्ष स अधिक पुरान हान चाहिए। कवि को अपना दस वष पुराना फोटोग्राफ छपाना चाहिए।

दक्षिण अफ्रीका के डरबन म नाताल विश्वविद्यालय के हावर्ड कालेज के विशाल सभागार में इनमे स कुछ नियमा का पालन किया गया था। हालाकि सारे नियमो का पालन वहाँ भी नहीं हुआ। मैं हमेशा की तरह कुलीन कविया से अलग दिखना चाहता था। पर मरा क्रम आने के पहले ही महान जुलु कवि मात्सी क्युनेने को कविता पढने के लिए बुला लिया गया। क्युनेने एक विशाल काया और श्वेत केशा वाले अश्वेत कवि हैं। उनक साथ दो अश्वेत भी बडे बडे मृदग लिए वहाँ पहुचे और स्टेज के पार्श्व मे बैठ गये। आठ से सोलह वर्ष की आयु के आठ जुलु लडके भी थे जिनम से प्रत्येक क हाथ में एक कागज था। इन लोगा ने जर्सी और पतलूनो वाली खास वर्दियाँ पहन रखी थीं और ये मच पर आकर माइक को जिस तरह घर कर खडे हो गये वह घबराहट पैदा करने वाला दृश्य था। य डरबन की सडको के आवारा बच्चे थे और मात्सी क्युनेने ने इन्हे अपनी छाटी छोटी आत्मकथाए लिखना और पढना सिखाया था। क्युनेने ने ढोल बजाने वालो को निर्देश दिया और उनका सचालन करने लग। ढोल बज रहे थे, लडका के एकरस बालसुलभ स्वर उठते और गिरत थे। लडके कागज पर अपने शब्दा का अपनी उगलिया के साथ पीछा कर रहे थे। वे भावनाए ज्यादा प्रदर्शित नहीं कर रहे थे क्योकि वे अक्षरो के अर्थ खोजन की प्रक्रिया में उलझ हुए थे। यह सारा कुछ पूरी तरह आयोजित था, आकस्मिक नहीं था। यह कविता के पठन का सर्वश्रेष्ठ रूप था। मैं इससे बेहतर तरीके की कल्पना नहीं कर सकता।

मुझे लगता है कि कोई भी कविता मृदगा के साथ बेहतर प्रभाव छोडेगा। पर उन लडको का जो सादगी भरा लडखडाता सा पाठ था जिसमे उनके इस ससार म पैदा होने खो जाने पाय जाने बचे रहने की दास्ताने थीं वह इस तरह की मच व्यवस्था म एक जीवन्त अनुभव

था। कला थी। पर उसम बनावट नहीं थी। यह कुछ इस तरह था कि कविता का जन्म हुआ था- बिना कृत्रिम गर्भाधान के।

अब जब इसकी तुलना हम मुख्य धारा का कविताओ से कर तो इन कविताओ के पाठ (मैं इन्ह कवल जुलु से हुए अनुवादा क माध्यम से ही समझ सकता था) एकदम सादा से वक्तव्य थे, वे कहीं भी उस तरह की शिकायत नहीं थीं जो हमारी उत्तर आधुनिक काव्यात्मक आत्मस्वीकृतिया के मूल म हैं। उस दिन नाताल विश्वविद्यालय के हावर्ड कालेज थियटर मे यह भावना रह रहकर उठ रही थी कि बहुधा तो हम केवल कविता के खेल खलत हैं- अपनी पीठ पर लिखे एसे शब्दो के साथ कि 'आश्चविच के बाद अब कविता नहीं लिखी जा सकती'। शायद यही सबकुछ है जो हम कर सकत हैं- हम सडक के उन मैले-कुचैले कविताओ स भरे आवारा बच्चा की तरह व्यवहार करना चाहत हैं। ढोल-मृदग हा या न हो बात कुछ बनती नहीं।

मात्सी क्युनेने और उनक उस समूह का कविता वाचन क प्रत्यक कार्यक्रम म हर समारोह और उत्सव मे याद किया जाना चाहिए हालाकि उस सब की नकल की ही नहीं जा सकती (यह अपने आप मे एक गहरे अर्थ म कविता होने का प्रमाण है)।

(*'पोएट्री रिव्यू'* से)

अनिल गगल

गिडगिडाता हुआ मनुष्य

भीड के बीच
एक अकेला मनुष्य गिडगिडा रहा हे

गिडगिडाते हुए मनुष्य क स्वर म
भर्राए वाद्य क स्वर की तरह बज रही है कातरता
जल्दी से जल्दा छिपा लेना चाहता हे अपना वजूद
एक गिडगिडाता हुआ मनुष्य

गिडगिडाते हुए मनुष्य के पास
बहुत कम बचे होते हें वजना शब्द
चुक चली स्मृति के फटे-पुराने शब्दकोष से
निकालता हे वह कुछ दान-हान मरियल शब्द
जिनके घिस चुके होन के बावजूद
दोहराता है उन्हे अत तक

कुछ टूटे-फूटे वाक्या के सहारे
पकडना चाहता हे वह छूट गये सूत्र
दोहराता है बार-बार उसी जगह से
जहाँ से छूट जाता है पकड से हर बार
पिछला छूट गया अधूरा वाक्य

गिडगिडाता हुआ मनुष्य
दिखाता है खालकर मैली पोटली
देखो मेरे पास नहीं ह कोई
स्विस बैंक के लॉकर की चाभी
बचा है अगर कुछ
तो बचा है बस यह एक वक्त का सत्तू

गिडगिडाता हुआ मनुष्य
खाता है अपने सबसे निकट स्वजनो की शपथ
हकलाता हुआ भीड म खोजता है अपने लिए
सहानुभूति से नम आँखे
अतत नाउम्मीदी में झूलता है
सूख चुके आँसुओ का डार पकड

एक न किए गये अपराध क लिए मुआफी मागते
नहीं उठ पाते गिडगिडाते मनुष्य के पत्थर से गठियल हाथ
अत्याचारी हाथो के विरोध के लिए

गिडगिडाता हुआ मनुष्य
मनुष्यता का अतिम निर्धारित सीमा पार कर
अकेले ही एक गहरे अतल म उतर रहा है
जबकि मनुष्यो के चेहरे सजाए अनेक लोग
एक-दूसरे के कधा पर हाथ रखे
उसके पतन की रोमाचक पराकाष्ठा की प्रतीक्षा मे हे।

सुधीर रजन सिह

पुरुष प्रतीक था

(1)
पुरान पाषाण पर बैठा हुआ

हजारा साल का धूप में तपा
जमीन के कई कई हिस्से की
धूल म खपा लेकिन न
बारिश उसे छू नहीं सकी
हालाकि अपने भीतर वह
ससार का सबसे बडा जगल हुआ
और यह भी कोई किस्सा नहीं
सारी नदियाँ उसका जाघा से निकली हैं

चाहता हाँ कि रहता
अक्सर आगे
समय और घटनाआ के
इतनी बिजली हा कहा न
बारिश उसे छू नहीं सका
कुछ स्त्रा-प्रेम के मोको को छोडकर

अपने प्राचीन यौवनदर्प मे
पाषाण पर बेठा पाषाण

प्रचण्ड कठोर पृथ्वा के
किसी भा हकीकत से
सभी किस्सा का किस्सा
उसने साबित किया
उसने साबित किया कि सारा नदियाँ

उसका [illegible] म छिपा है

तब तुम पुरुष नहीं
तुम अनुभव नहीं करते
अपने भीतर से [illegible] किसी [illegible]?

(2)

कोई था जो [illegible] पुरुष
पर पैदा नहीं हुआ नहीं
स्त्री के [illegible]

दुःख युद्ध दुःख था
एक ऊब था था
जिसने उसे जना था

ऊब थी
इसलिए युद्ध था
इसलिए स्त्री-प्रेम था
इसलिए वानप्रस्थ था
सन्यास था

उसने सब के साथ किसी
ऊब मिटाने के लिए
यह पुरुष बना हुआ
ऊब म
और नहीं सुनाई पड़ता उसे
स्त्री का राना

खुद को सुनता
खुद से प्रश्न करता
'नहीं पहचानते?'

खुद को सुनाता

कितनी कितनी स्त्री योनिया म प्रवेश करत हुए
शव्द
अर्थ
रस

वह लिग एक
क्या उतारा जा सकता
कविता म-सक्यूलर
है कोई भाषा
जो उसक वालने से नहीं?

(3)
पसलिया म झाक रहा वह गड्ढा
जहाँ से खोद कर निकाली गई थी स्त्री

वह मीठे फला के लिए पुचकारता स्त्री को
स्वर्ग से धकले जाने का हद तक
ओर उसके पाछे रोती चली आती स्त्री

कधे से
आदिम युद्ध के घाव का निशान मिटता नहा

लडते हुए वह मरता
स्त्री रोती हे
या भी वह मरता
स्त्री राती हे

स्त्रियाँ उसपर रोने के लिए पदा हुई हैं
जसे उसका पाठ स्त्रा के बिना दुखन के लिए बनी ह

दुखती हुई पीठ को लिए
वह दोडा
जहाँ-जहाँ पृथ्वा ह

जहाँ जहाँ नगर है
जहाँ जहाँ धारा और मरुस्थल है
और कभी रहो उसकी रचनाओं में
भी

उसके शिल्प व भावना
मिला है आँसू में भिगोए है
रक्त स्वेद में।

(4)
चुना यह अपने लिए
नया आनन्द छंद रचा
भरी आँख और
उभारे अतीत गर्व का
पैमाना

लगता हाँ कि करता
दया प्रेम वासना
जो ईर्ष्या
दया प्रेम वासना से
टूटता सब तरह से
अपने ही नशे का दारा म
अमृत कि विष पीने की
मुद्रा में

फिर मुद्राएँ तो सारी उसकी दी हुई हैं
जिन्हें नर्तकियाँ ने नाचा भ म म
जिनमें गायक गायिकाओं ने रस घोल
उसका भौंहा की तान से कंपित
वीणा बजा
त न त न त
और एक नि शब्द मुद्रा गृहणियों ने ओढ़ा
कि देखे को न देखा का सुने को न सुने का

अभिनय उसे पसद हैं

वह मूर्च्छित अपन ही राग धुन म

लेकिन नू
कुछ नहीं
अन्तर्द्वन्द्वा म आखिर वह
कुछ नहीं चुन सका
न पूरा स्त्रा दह न खुद का
अखण्ड पौरुप

क्रोध और माह के वीच
वह मरता
हाँ।

(5)
उसमे दभ था
कुरुपता की हद पर
कि वह पुरुप
दरिद्रता की हद पर
कि वह पुरुप
आर कभी ज्ञान की हद पर भी
कि वह पुरुप

क्या है कोई खजाना
जो पुरुप से वडा

सूर्य ने कहा
नहीं
बादला ने कहा
नहीं
पहाडो ने कहा
नहीं

समुद्र ने कहा
नहीं

सच की तरफ से
उसने कहा
नहीं

फिर भी वह डरा रहा
दूसरे दूसरे पुरुष
हर दूसरे पुरुष से
स्त्री को बीच में रखकर

उसे डर था
जितना जमाने भर की स्त्रियों को
अपने सतीत्व का नहीं डर था
उतना उसे था
और उसे डर था
अपने पुरुष न होने का

पुरुष कुछ था नहीं उसमें
पुरुष प्रतीक था

पका हुई रोटी
अर्थ से हटा हुआ
शब्द

देखता
देह नहीं मुद्रा
मुद्रा नहा सकेत

नहीं
स्त्री का आँखा से कभी नहीं
कभी नहीं उसको आँखा से
उसने दखा खुद को

असल म उसने खुद का देखा जाना कभी पसद नहीं किया
ओर उसे कोई छू दे और अचानक ओर कोई स्त्री
आर कुछ रहे न रहे उसका पुरुष उड जाता ह।

दिक्काल से परे

[1]
टोकरियाँ खाली पडी हैं
उड गए सारे मुर्गे
शहर भर की रसोइयों को सूना कर गए
पख फडफडाते हुए दो दो फुट की छलाग लगाई होगी
दहशत छोड गए शहरियों के वास्ते

उसी वक्त जब शहर म मुर्गा फरार काड हुआ
मेरीन ड्राइव के आखिरी पत्थर का नोक पर खडे
पजो के बल एक अधेड ने अरब की खाडी मे छलाग लगाई
लेटा रहा पीठ क बल खाडी की छाती पर
नॉर्थ ब्लॉक सकते मे आ गया
व्हाइट हाउस हरकत मे आने लगा
मर्डोक की अनासक्ति की ददखड लग गई
वज्ञानिकों की बोलती बद
ज्योतिषी सिर खुजाने लगे

अलमस्त अधेड जाकर सो रहा पखे के नीच
खुली हवा म रस्सी पर फहराता रहा सफेद चड्ढी

सुबह सुबह तैयार निकला बाकायदा
लोकल म टनकाने लगा मजीरे
गलाफाड भजनो के बीच

सवन पढी अखबार।

[2]
नींद की गोलियाँ खाकर जब सो गया शहर
कसाईबाड का मरगिल्ली बकरियाँ बूढी गेय्या
बीमार बल घूर क सूअर
सब उठ खडे हुए
मुड्डियाँ धड से जुदा थीं

चीर कर उधेड कर खाले
जूता कपनियो का मुनाफा कमान ल जाई जा चुकी थी

जोडी मुड्डिया धडा से जानवरा ने
अपन बगाने का परवाह किए वगैर
चल पडा मास मज्जा हड्डिया का खडखडाता जुलूस
ग्लाबल विलज पर ताडव करता
गलकटी कुकडिया कुदकन लगी जुलूस क आगे
जलबिन फुदकती मछलिया न बना दिए पुल
महाद्वीपा के ऊपर

जहाँ जहाँ टपका लहू समुद्र बना जमा हुआ
धरता के कूबड म मास क लोथड थे
हड्डियो से चिने गए पर्वत शिखर
मरी हुई सास ठुस गई आकाश म

शहरिया ने जब इस तरह खाई सारी कायनात
उदर मे शूल उठ मरोड पडे अतिसार लगे

फिर बनाई गईं खाई गईं दवाएँ
नींद की गोलियाँ दिनोदिन अनगिनत।

[3]
अरब की खाडी म थूथन छिपाए
आँखे मूदे पडा रहता है राजभवन
खारा गदा पानी थूथन को रह रह कर चाटता है

कूबड पर इमारत इमारता म अधेरे
अधेरे म लाग लागा मे एसिडिटी

कूबड क नीचे जर्द आख
आखा में रेत
रेत म ईश्वर के मरे हुए जर्रे

अरब की खाडा हे पसरी हुई ठेकदारनी
छपाके मार मार धोता हे
जर्रो भरी मुदी हुई आख।

बाहर निकलने के लिए

छोटा है या बडा
कुआँ तो कुआँ है
दम घुटता है अगर
उसकी परिधि मे
तो तुम मेढक नहीं हो

बाहर निकलने के लिए
छटपटाहट से भरी
अकेली
छलाँग काफी नहीं है
ढूँढनी होगी कमद
मढको का
साथ छोडना होगा
सबध
उनसे जोडना होगा
जो मेढक नहीं हैं
और दम घुट रहा है
जिनका कुएँ मे।

प्रताप राव कदम

गिरा में

गिरा मैं
पके फल सा नहीं
न ही पखेरू ने कुतर पटका
गदराया फल जान
सूखा पत्ता नहीं मैं
न पतझड का मोसम यह

गिरा मैं
झरने सा नहीं
न पहाड से ढुलकी चट्टान कोई
न आकाश मे लबी लकीर छोड
टूटा कोई तारा
न मोट कुए मे
छप्प से

गिरा मैं
अपने मे उलझ
मकडी जेसे बुनते-गुनते
अपनी झोक म अछडते
गिरा मैं।

कई नींदो के बाद

कई नींदो के बाद आने वाली कोई एक नींद
एक अच्छा सपना लाती है
किसी भरे कमरे के भीतर किसी हरे पेड के नीचे
किसी धडधडाती हुई ट्रेन की निचली बर्थ पर सोए हुए
किसी बहस के बीच ऊघते
कामना करनी चाहिए
टूटने से बची रहे नींद
आधी रात डरने से बचा रहे आदमी
बची रहे बराबर एक अच्छे सपने के भीतर
एक और अच्छे सपने की सभावना।

अच्छे सपने मे मैं देखता हूँ
लोग फिर से निर्भीक हो रहे हैं
अच्छी कविता की एक किताब
पढना और पास रखना चाहते हैं
ससार के सारे ताकतवर मुर्गा बन जाते हैं
मेज समझकर उनकी पीठ पर
न्यायाधीश मारता है हथौडा
कई आँखो की लौट आती है रोशनी
कई बहरे कान लगते हैं सुनने
कई धमनिया मे बहने लगता है
लाल और गर्म खून
मैं सपने को बचाना चाहता हूँ
ताकतवर बनने की अपनी ही इच्छा से
जो उछाल दे सकती है लोहे की गेद
कभी भी किसी की भी नींद मे।



पेंटिंग संगीता गुप्ता

*आक्तवियो पाज (1914 म मक्सिको सिटी म जन्म। बीसवीं सदी क प्रमुख लातीना अमराकी कवि आर निबधकार। 1930 म स्पेना गणतत्र क लिए लडाई मे शामिल। मक्सिका क राजनयिक के रूप म फ्रास आर भारत म प्रवास। यूरोप के अतियथार्थवादी और स्वच्छदतावादी कलाकारा से प्रभावित। भारत का प्राचीन सस्कृति स भी गहर प्रभावित। 1990 मे साहित्य के लिए नोबल पुरस्कार। **प्रमुख कृतियाँ** कविता – 'बिनेथ योर क्लीयर शेडो' 'बिटविन द् स्टोन एड फ्लॉवर' ऑन द शार ऑफ द वर्ल्ड', 'ईगल ऑर सन' 'सेलामान्द्रा' 'ईस्टर्न स्लाप ।निबध - 'द लिब्रथ ऑफ सोलिटयूड', 'द बो एड द लेयर' 'चिल्ड्रन ऑफ द मायर साइरन एड द सा शेल' 'आल्टरनेटिग करेट्स' वन अर्थ फोर और फाइव वल्ड्स' 'द अदर वाइस' आदि)।*

सारकथन

–आक्तेवियो पाज

कविता को समझाया नहीं जा सकता। उसे समझा नहीं जा सकता। कविता एक लय भरी भाषा है– महज एक लय (गीत) के भीतर भरी हुई भाषा या शाब्दिक लयबद्धता नही (यह गुण तो गद्य सहित सभी तरह की भाषाओ म समान है)।

लय असमानता और समानता के बीच एक सबध है यह ध्वनि **वह नहीं है**, यह ध्वनि **उस जैसी है।**

लय एक मौलिक रूपक है और यह सभी कुछ का अपने भीतर समा लेता है। यह कहता है अनुक्रमिकता एक दोहराव है। समय समयहीन है।

चाह गीत हा महाकाव्य हो या नाटय रचना, कविता अनुक्रमिकता और दाहराव हे यह कैलेडर की एक तारीख है और एक अनुष्ठान हे।'घटना' भी एक कविता हे (नाटक) और एक कमकाण्ड भी (पर्व) पर फिर भी इसम एक सारतत्व की कमी है लय, निमिष का पुनर्जन्म। हम गगोरा क एकादश अक्षर छन्द को और हुइदोब्रो के 'अल्ताजॉर' की अतिम एकाक्षरी लय को भी बार बार दोहरात है। बार बार स्वान विन्तेयुइल की गीतिका को सुनता हे एगायमॉन इफिजनिया की कुर्बानी दे दता है, सेजिसमुन्डो को पता चलता हे कि वह जागती आँखा स सपना देखता रहा है। पर 'घटनाए' केवल एक बार घटती हैं।

वह पल दूसर नामहीन असख्य पला की अनुक्रमिकता म घुलता जाता है। उसे बचाय

रखने का हम उस एक लय म बदल दते हैं। यह 'घटना' दूसरी तमाम सभावनाओ को खाल देती है पल जो कभी दोहराया नहीं जा सकता। परिभाषा के अनुसार यह पल एक अतिम पल है 'घटना' मृत्यु की एक अन्योक्ति है।

रोमन सर्कस एक 'घटना' है - पर साथ ही उसका निषध भी, यदि किसी 'घटना' के सहभागी सचमुच अपने सिद्धान्तो के प्रति वफादार हैं तो वे सब के सब मर जाएगे। इसके अलावा उस अतिम पल को वास्तविक रूप से पुनर्जीवित करने के लिए यह आवश्यक होगा कि सारी मनुष्य जाति का सर्वनाश कर दिया जाये। एक कभी न दोहराया जान वाला पल सारे विश्व का अत।

रोमन सर्कस और 'घटना' के बीच कहीं है - वह साहा का युद्ध जोखिम और एक शैली भी।

कोई कविता जो एकल अक्षर या पद्यांश स बनी है वह भी 'डिवाइन कामेडी' या 'पराडाइज लॉस्ट' से कम जटिल नहीं है। सत्सहस्त्रिका सूत्र एक लाख छन्दो मे आधारभूत उपदशो को प्रस्तुत करता है, एकाक्षरी केवल एक अक्षर है - सारी भाषाए सारे अर्थ और उसी समय भाषा के अर्थ और विश्व की अन्तत अनुपस्थिति को इस एक स्वर की ध्वनि मे सान्द्रित किये हुए किसी कविता को समझने का अर्थ है सबस पहले उसे 'सुनना'।

शब्द हमारे कानो से प्रवेश करते हैं, हमारी आँखो के सामने प्रकट होते हैं और फिर हमारे ध्यान में अदृश्य हो जाते हैं। किसी भी कविता का प्रत्येक पाठ एक नि शब्दता को आमन्त्रित करना प्रतीत होता है। किसी कविता को पढने का अर्थ है उसे अपनी आँखो से सुनना उसे सुनने का अर्थ है उसे अपने कानो स देखना।

अमरीका मे अब यह फैशन बन गया है कि कवियो को अपनी कविता के सार्वजनिक पाठ के लिए बुलाया जाता है। यह एक सदिग्ध किस्म का काम है क्योंकि किसी कविता को वास्तव मे सुनने का सामर्थ्य अब एक लुप्तप्राय कला है, और तो और आधुनिक कवि लेखन कार्य करते हैं इसलिए वे अपनी निजी भावनाओ के बुरे अभिनेता हैं। पर भविष्य की कविता वाचिक कविता होगी। यह बोलती हुई मशीनो और कवियो की सभा के बीच एक गठबधन सा होगा। यह सदेशो को सुनने और उन्हे छानने की एक कला होगी। आज जब हम कविता की कोई पुस्तक पढते है तो क्या वही काम नहीं कर रहे होते?

जब हम कोई कविता पढते हैं या कोई कविता सुनते हैं तो हम शब्दो को सूघते नहीं उनका स्वाद नहीं चखते उन्ह स्पर्श नहीं करते, ये सारे सवेदन मानसिक छायाए हैं।

किसी कविता का अनुभव लेने के लिए हमे उसे समझना होगा उसे समझने के लिए हमे उसे सुनना होगा उसे देखना होगा उस पर ध्यान मग्न होना होगा- उसे एक प्रतिध्वनि म एक छाया म एक शून्यता मे बदल देना होगा। अवबोध का काम एक आध्यात्मिक कार्य है।

ड्युकैम्प न कहा है चूकि एक तीन आयामी चीज दो आयामी छाया डालती ह। हम

उस अनजान चार-आयामी वस्तु की कल्पना करने म समर्थ होना चाहिए जिसकी हम छायाए हैं। जहाँ तक मरा सवाल है मुझ ता उस एक-आयामी वस्तु की खाज न बेहद लुभाया है जिसकी कोई छाया ही नहीं हाती।

प्रत्येक पाठक एक दूसरा कवि है हर कविता एक दूसरी कविता है। हालांकि यह सतत परिवर्तित हाती रहती है, पर कविता कभी आगे बढती नहीं।

सामान्य विमर्श मे एक मुहावरा अगले के लिए आधार का काम करता है यह एक श्रृखला है जिसकी एक शुरूआत है और एक अत है। कविता म पहले मुहावरे में ही अतिम मुहावरा निहित है और अतिम मुहावरा पहले को जगाता ह। कविता ही हमारे सरल रैखिक समय क खिलाफ- प्रगति के खिलाफ हमारा एकमात्र आसरा एकमात्र उपचार है।

एक लेखक की नैतिकता उन विषयो म निहित नहीं जिन्ह वह उठाता है उन तर्कों म भी नहीं जिन्ह वह प्रस्तुत करता ह, यह भाषा क साथ उसके बर्ताव मे बसी हुई है। कविता मे तकनीक नैतिकता का दूसरा नाम है। यह सिर्फ शब्दा का खेल नहीं बल्कि एक भाव सवेग है और एक तपस्या है।

एक झूठा कवि बिना अपवाद हमेशा दूसरो के नाम पर केवल अपनी बात करता ह। एक सच्चा कवि जब अपने आप से बात करता है वह दूसरो के साथ सवाद कर रहा होता है।

एक 'बद' रचना और एक 'खुली' रचना के बीच कोई अचर किस्म का भेद नहीं होता। एक बद रचना का भी अपनी गूढता को खोलन के लिए एक पाठक की जरुरत होती है। खुली कविता इस चीज का खोजने या उस चीज का पाने क लिए किसी भीतरी जगह म जाती है। किसी कविता को खोलना हमेशा उससे अलग है जिसकी हमसे अपेक्षा की जाती है।

कविता चाहे खुली हुई हो या बद – वह उस कवि का अवसान चाहती है जिसने उसे लिखा हे और उस कवि का जन्म चाहती है जो उस पढेगा।

कविता अर्थ के खिलाफ एक शाश्वत सघर्ष है। दो अति हैं कविता सारे अर्थों को समेट लेती है, यह सारे अर्थों का अर्थ है या फिर कविता भाषा को किसी भी तरह का अर्थ ढोने से वचित करती है। आधुनिक युग म मेलार्मे पहले प्रकार की कविता का प्रलिनिधित्व करते हैं डाडावाद दूसरे प्रकार की कविता का प्रतिनिधि है। एक भाषा जो भाषा के परे है या भाषा के द्वारा भाषा का विध्वस।

डाडावाद इसलिए असफल हुआ क्याकि वह मानता था कि भाषा की पराजय कवि की विजय है। अतियथार्थवाद ने भाषा के कवि पर सर्वोच्च शासन की घोषणा की। युवा कविया पर यह निर्भर है कि वे सर्जक और पाठक के बीच के भेद को किस तरह मिटाते हैं और बोलने वाले और सुनने वाले क मिलन बिदु को किस तरह खोजते हैं। यह बिदु ही भाषा का मर्मस्थल है।

कविता पाठक को उकसाने वाली होनी चाहिय वह उसे सुनने के लिए बाध्य कर द

- स्वय का सुनने के लिए।

कविता कर्म शब्द की नपुसकता क सन्मुख एक हताशा से जन्म लता है और मौन का पहचान मे पर्यवसित हाता है।

कोई भी तब तक कवि नहीं ह जब तक उसे अपने भीतर भाषा को नष्ट करने और एक दूसरी भाषा को सिरजने क आकर्षण ने लुभाया नहीं है, जब तक उसने अर्थशून्यता के आकर्षण को और अभिव्यक्त न किये जा सकने वाले अर्थ के भयावह अनुभव को जिया नहीं है।

चीख और खामोशी क बीच सारे अर्थों को समेट लने वाले अर्थ और अर्थ की अनुपस्थिति के बीच कविता उठती है। शब्दा की यह क्षीण सी धारा क्या कहती है? यह कहती है कि वह एसा कुछ भी नहीं कह रहा जा अब तक निस्तब्धता और चीत्कार न कह नहीं डाला है। और एक बार जब यह कह दिया जाता है ता चीख-पुकार और खामाशी चुक जाते हैं। यह एक सन्दिग्ध किस्म की विजय ह जिस हमेशा उन शब्दो से खतरा बना रहता है जो कुछ नहीं कहते उस खामोशी से भी जो कहती है कुछ नहीं।

किसी कविता की अमरता मे भरोसा करने का अर्थ भाषा की अमरता म भरोसा करना है। हमे प्रमाण को स्वीकार कर लेना चाहिए। भाषाए जन्मती हे और मरती हैं कोई भी अर्थ एक दिन अर्थ देना बद कर देगा।

अर्थ द्वारा अपना अर्थ देना समाप्त कर देना ही क्या उसका अर्थ नहीं है? हमे प्रमाण स्वीकार करना चाहिए।

कविता और गणित भाषा के दो अतिवादी छोर हैं। उनके परे कुछ भी नहीं है - कुछ भी अभिव्यक्त न किया जा सकने वाला इलाका पर इन दोना छोरो के बीच प्रचुर लेकिन सीमाबद्ध वाग्मिता है।

मौन की आसक्ति कवि का कुछ व्यक्त करने का एकमात्र आसरा है।

शब्द की जडे कथन स पहले खामोशी म हें - भाषा की एक पूर्व भाववृति। शब्द के बाद की खामोशी भाषा पर आधारित है - गूढोक्ति भरी खामोशी। कविता दो खामाशिया के बीच फैला एक गतिमार्ग हे - उस खामोशी से शुरू होकर जा कहने की इच्छा के पहले है उस खामोशी तक जो कहने की इच्छा और कहे गये को आपस म पिघला कर एक रूप कर देती है।

(आल्टरनेटिंग करेंट से)

विस्थापन

मैं जहाँ-जहाँ गया
खदेड़ा गया हर जगह से

कहीं कहा गया
नहीं, ठीक नहीं है आपके लिए यह जगह
बेसुरी कर देगा यहाँ का खान-पान
आपकी आवाज
स्थिर नहीं होने देगी यहाँ की हवाएँ
आपके पाँव
यहाँ के जीवन का कुछ ठिकाना नहीं
पता नहीं कब
दरारो से भर जाए आपका चरित्र

मैं हर जगह गया
पजाब गया, बगाल गया गया कर्नाटक
राजस्थान के मरुस्थल से, शिमला की बर्फ से, कश्मीर के चिनारो से
रहा मेरा एक ही अनुरोध
यू शिकारी कुत्तों सा न सूघो
उसी मिट्टी से बनी मेरी देह
लगी है जो तुम्हारे तलुआ म भी
नहीं मागता तुमसे कुछ ज्यादा
थोडी सी जगह दे दो भाई
नहीं चाहिए धरती की यह विशाल थाती
न भास्कर का पूरा प्रकाश
हा मात्र इतना उजाला
चिन्ह सकू स्याह अधेरे म भी शब्दो को ठीक-ठीक
रहे नमी इतनी
नष्ट न हो जाए सवेदनाएँ
निकल सके दु ख मे बूद-दो-बूद आँसू

एक और छोटी सी इच्छा है मेरी
आत्मा रहे, आत्मा की तरह
न जडे अगूठी मे हीरे सा कोई

ये वे दिन थे,
गाजर-घास सी उग रही थी
पूरी धरती मे अनास्थाएँ
एक छोटे से बिन्दु से ज्यादा नजर नहीं आता था
दुनिया का सबसे भला आदमी

फिर भी नहीं हारी मैंने हिम्मत
देता रहा बार-बार आश्वासन
मैं सच कहता हूँ,
बिल्कुल नहीं देखूगा ललचाई नजरो से
सोना उगलती तुम्हारी इस वसुधरा को
तुम्हारे ये खेत, ये जगल, ये कम्प्यूटर और ये मूर्खतापूर्ण सगीत
तुम्हे ही मुबारक
बस रत्ती भर जगह दे दो भाई
मैं तो रह लूगा
तुम्हारे घरो की दरारो मे भी
रह लेता जिस तरह
एक अच्छा मूल्य जीवन के हाशिए पर

हर बार रही उनकी एक ही रट
कभी पूछा गया मनपसद झडे का नाम
तो कभी मेरी प्रजातीय भिन्नता
मेरे अदर के झरने मेरे दुर्लभ खनिज ही
बन गए मेरी बेदखली का सबब

जहाँ-जहाँ मैं गया
सुनने को मिली अलग-अलग बातें
लोग कहते
विचित्र है तुम्हारी आत्मा का आकार
इतना आर्द्र कैसे है तुम्हारा क्रोध

शामिल करना चाहिए तुम्हें
अपनी पसद की चीजो मे कुछ और नाम

धूल मिट्टी, धब्बो और कालिख से भर चुकी थी देह
चमकती मात्र आँखे
पता चलता था जिससे मेरे मनुष्य होने का
निकल चुके थे मेरे मवेशियो के हाड
करते वे डाय   डाय
चूकि खानाबदोशी म ही बडे हुए थे मेरे बच्चे
जानते नहीं थे इसलिए घर क बारे म
तब्दील हो रहे थे धीरे-धीरे बटमारो में

जब-जब भी लिया जन्म
रहा यही अफसोस
होता कोई तो ठाप कह सकता ताकि
यही है, यही है वह जगह
गडी है जहाँ मेरे बच्चो की नाल

कभी निकल जाती मेर आगन से दहाडती कोई नदी
कभी बताया जाता
खुलती है तुम्हारी खिडकी दूसरे देश की सीमा में
तो दिया जाता कभी आदेश
खेलते हैं जहाँ तुम्हारे बच्चे
बनती है जहाँ तुम्हारी रसोई
करते हो जहाँ तुम अपनी पत्नी को प्रेम
बाधा जाएगा अब वहाँ एक सफेद हाथी

भटकते ही रहा इस तरह मैं
मिला नहीं कभी पैरो को आराम

इस समय भी
मुदी-मुदी जाती जबकि थकान से पलके
बिफराई मधुमक्खियो सा पीछा कर रही असफलताएँ
नहीं तलाश कर पा रहा हूँ पूरी पृथ्वी मे
ऐसी जगह
फेंकू जहाँ मैं अपनी जडे
तो रेत मे तब्दील न हो वहाँ की मिट्टी।

हेमन्त कुकरेती

जिसके पास अपनी जान है

जो झाडियो में छिपा था
वह भालू ही रहा होगा
इसलिए कि जो आलू खाते थे उसके किस्से से ही डर गए
जो आलू उगाते थे उन्होने ही भालू को हडकाया

गर्म होने के लिए वे दूध पीने चले गए
जो मवेशी चराकर लौटे उनका तो पसीना ही
इतना तेजाब है कि बजर जला दे

बसाने के नाम पर जो बस्तिया जलाते हैं
वे हिमालय को गलाकर
उसका पानी सात समदर पार भेजते हैं
और गगा के किनारे शराब की बोतलो मे बेचते हैं

बचाने के लिए जिनके पास सिर्फ अपनी जान है
वह क्यो इन्हे चुनता है
और अपने उगाए आलू की कीमत से डरकर
झाडियो मे शरण लेता है

वह किस्सो से बाहर आकर उन्हे अदर क्यों नहीं करता
जो इनके घरो पर कब्जा करने के बाद
खेतो मे अतरिक्ष-नरक बनाना चाहते हैं

ईश्वर का वेतन

ईश्वर को कितना वेतन मिलता होगा
और उतने मे ऐसे कौन से काम होगे जिन्हे

डी. सी. रामपुरिया विद्यानिकेतन , गंगाशहर (बीकानेर)

परिपत्र सं. 4/98-99 "सूचना" दिनांक 13 10 98

सम्माननीय अभिभावक महोदय,

बुधवार दिनांक 14 10 98 से 25 10 98 तक शाला में मध्यावधि अवकाश (दीपावली व गोवर्धन पूजा अवकाश सहित) रहेगा ।

आपके संरक्षित को उक्त अवकाश के दौरान गृह कार्य दिया जा रहा है। कृपया इसे अपनी देख-रेख में सम्पन्न करवाएं ।



हार्दिक दीपावली अभिनन्दन एवम् शुभ मंगल कामनाओं सहित,



भवदीय,

(हस्ताक्षर)

प्रधानाध्यापक

ईश्वर नहीं चाहता होगा करना?

जरूर होगे एस काम
क्योकि ऐसे है कई कामी–चरित्र हमारी सामाजिक
जान–पहचान मे
जो अपने खल–कर्मो को ईश्वर के जिम्मे डालकर
भगवती जागरण मे मोटा पैसा देते हैं

जिस मशीन पर वह पैसा छापते हैं
उसे सीधे-सीधे कहने पर ईश्वर को शर्म आयेगी
हम मानते हैं कि ईश्वर को अच्छा नहीं लगता उनका व्यापार
इसीलिए हमारी नजर मे ईश्वर के लिए
कुछ अच्छे विचार अभी बचे हैं
और हम उससे डरते नहीं हैं

हम काम करते हैं
न करे तो क्या बम्बई भाग जाएँ
हमारे साथी शेयर बाजार जाते हैं या घरो मे करते हे राजनीति
हम जाते हैं दफ्तर घिसे जूतो मे घिसटते
और सिर्फ ईश्वर का नाम याद रखते हैं

क्या ईश्वर सीकरी मे नौकर हो गया
उसके नाम से लोग सचिवालय में पहुच गए हैं
इश्वर भी वहीं है तो इतने ढेर पैसे को बचाता कैसे होगा।

मुझे मत जलाओ

अगहन की यह साँझ
जैसे पकी हुई छीमी के दो फाँक

एक फाँक पर बैठा अलसाई धूप
अपने धूपीले कपडे समेट
चल पडी है पछबरिया घर की ओर
और अब
आकश मे टगी रह गई है सिर्फ बगुलो की डोर

दूसरे फाँक पर मैं
रुदन के अखण्ड सवान-भादो के बीच पडा हूँ
सुफेद कपडे मे बन्द
बाँस की पाँच फट्ठियो पर रस्सी से जकडा हूँ।

एक तरफ
किसीके लौटने की प्रतीक्षा
तुलसी के चौरे पर आहिस्ता-आहिस्ता जल रही है
दूसरी तरफ निहोरा कर-करके
मेरी आवाज बर्फ की तरह गल रही है-

मुझे मत जलाओ

मैं मेले मे खोया हुआ एक बच्चा हूँ
मेरे आँसू पोछकर मुझे गोद में उठा लो
और फिलहाल मत पूछो मेरा नाम

मैं रामी और चण्डीदास के गले मे झूल रही माला हूँ
प्रेम है मेरा गोत्र और देह है मेरा धाम

विद्यापति के गीत की टहनी पर बैठा हुआ तित्रिर हूँ मैं
अपने हाथ की करची दूर फक दो
और कोई भूला हुआ गीत गुनगुनाओ

मुझे मत जलाओ

मेरी देह मे
कुडली मारकर एक नदी बैठी है
मेरी आँखो से जब-तब निकल आता है उसका विह्वल झाग
मेरी हड्डियो के कोटर मे एक घोघा दुबका है
जो मेरे साने के बाद
कहीं और छिपे घोघे को गो-गोकर पुकारता है
मेरे रन्ध्रो मे
स्मृतियो का एक अछोर ताँता है
जो मुझे मृत्यु-कुण्ड मे डूबने से उबारता है

मुझे मत जलाओ

मेरे तन-गध की प्रतीक्षा मे
कुएँ से नहाकर निकली हुई लट-भीगी साँझ
अपना आँचल फैलाए
मेरा बाट निहार रही होगी

जेठ की धूप मे खडी गाय की तरह असहाय
एक अदृश्य खूँटे से बँधी एक बधिर स्त्री
मेरी याद मे टभक रही होगी लगातार

मेरे वियोग में मेरे सहोदर दुख
अन्न-जल त्यागकर
देहरी पर गुमसुम बैठे मेरा कर रहे होंगे इन्तजार

मुझे मत जलाओ

जब भानस-भात के लिए आतुर चाटियाँ

भारी-भरकम कण उठाए
अपनी पटरी पर धडधडाती हुई लौट रही हैं अपने बिलो की ओर
जब सुदूर सरोवर से चारा लेकर
घर-वापसी मे पक्षी
इस अधकार को अग्निबाण की तरह चीर रहे हैं
जब दुख से सतप्त
और उसमे निरन्तर सीझने के लिए अभिशप्त लोग
घरमुँहा बैल के पीछे-पीछे चल रहे हैं
सबकुछ पीछे छोड

मुझे मत जलाओ

इस देह को अब मैं
अपनी भूख की प्रत्यचा पर चढाकर
उस पीढे पर फक देना चाहता हूँ
जहाँ परोसकर रखा है एक थारी भात
और एक कटोरा माँछ

इस अभेद्य जगल मे
जाने कबसे भटक रही उस स्त्री को
मैं सौंप देना चाहता हूँ अपने आसू और अपना प्राण

अगस्त मुनि की तरह अब मैं
इस जीवन को
एक साँस मे गट-गट पी जाना चाहता हूँ।

अभी भी

अगर पहाड पर हो
हवा की पीठ पर पाँव रखते हुए आ जाओ
सुदूर घाट पर हो अगर
धारा की लालसा मे
आ जाओ तिनका-तिनका बनकर

अनजान देस-दुनिया मे हो
ता अपने रुदन
और जागरण के सूत को थामे हुए आ जाओ-

जो भी हा
जहाँ भी हो
जैसे भी हो
आ जाओ।

यदि शब्द हैं तुम्हारे पास
तो उन्हे सेने के लिए एक घोसला है यहाँ
तुम्हारे पास यदि चुप्पी है
तो उसे तोड़ने के लिए यहाँ उपलब्ध है कातरता
यदि दुख है तुम्हारे पास
ता यहाँ
रोने के लिए एक तकिया और सोने क लिए एक खटिया है।

इस दुनिया को
एक मुट्ठी मे भर लेने के लिए बेचैन
किसी योद्धा की तरह नहीं
तुलसीदास की तरह
शव को यदि नाव बनाने की कला मे तुम पारगत हो
तो इसी बगैर नाव की गहरी नदी के बाद
एक सुलगती राह तुम्हे यहाँ तक लाएगी।

तुम यहाँ पाओगे
कि किसी दुख या आतक से नहीं
जीवन मे पहली बार घटित इस रोमाच से
भर गइ हैं तुम्हारी आँख
कि तार-तार हो चुके हरियर वन
और हृदय तक विदीर्ण इस पोखर के बावजूद
जिस घर मे तुम पैदा हुए
उसकी देहरा पर रखा पातल का जल भरा लोटा
अभी भी कर रहा है तुम्हारा इन्तजार।

मेरे लिए तो

यह क्या कि हम साथ रहे
ओर अब नहीं हें

असफलता के शिविर म
इतना विलाप है कि जैसे
आर विलाप भी नहीं है

यह अकेला हे विलाप

ओर जो चला गया हे
हमे हमारी असह्यता मे छोडकर
केसे उसकी शिकायत कर
जब उसकी खुशी मे
अपना ही कोई
दुख जीत जाता हो

और जब उसकी हँसी उमडती आती हो
कैसे कहे कि वह सुदर नहीं था

मेरे लिए तो
दृश्य डबडबा जाता है
और उममे तुम मुझे
और सुदर दिखती हो।

लुप्त प्रजाति की दुनिया

एक पेड था
डूब गया जिसका बीज

उसकी डाल पर बैठती थी एक चिडिया
जो अब किसी घासले मे नहीं लौटती

एक जानवर था
जो उस पेड के तने से रगडता था अपनी खाल
कालपात्र में रखा है उसका जीवाश्म

एक मनुष्य था
जो सोता था दुपहरी मे उस पेड क नीचे
उसकी जडो पर सिर रखकर
खुदाई में मिलेगी
उसकी पथराई हुई हड्डियाँ

एक पूरी दुनिया थी
उस पेड के आसपास
कहाँ मिलेगा उसका बीज!

सुनना चाहता हूँ

जो सवाद कहता है
पहला निवाला भूख से
डिम्ब विजेता शुक्राणु से
बरसात की पहली बूँद

जमीन के तपते हुए तवे से
सुनना चाहता हूँ उसे

सुनना चाहता हूँ
कि किस तरह गाई जाती है
सूरजमुखी के खेत मे प्रभाती
क्या कहती है परदेसी चिडिया
हर बरस जाडो में लौटकर
अपने गुलमोहर के पेड से

सुनना चाहता हूँ
कि किस तरह देती हैं धन्यवाद
सूर्य के अक्षयपात्र से
दाना चुगती हुई पत्तियाँ
किस तरह सूर्य अपनी चमक के लिए
कृतज्ञ होता है
पत्तियो के हरेपन का

सुनना चाहता हूँ
कि क्या कहता है जग लगा ताला
जब अचानक मिलती है
बरसो से गुमी हुई चाबी

कितनी साफ सुनाई देती है
पुरखो की इत्मीनान भरी साँस
सुनना चाहता हूँ।

सबब

मैं यहाँ ऊब गया हूँ। एक दिन मैं दोस्तो की इन बैठको से
उठकर कहीं चला जाऊँगा।

साचा हिमालय पर चला जाऊँगा। थका-क्लात मैं ऋषि-मुनियो
से मिलूँगा। पूछूँगा शाति के रास्ते। अपने साथ रख लेने का
आग्रह करूँगा।

सभव है कि
उन शाति प्रिय आत्माओ के बीच रहते हुए मुझे अपनी दुनिया के
लाग याद आएँ। उनकी साधारण बैठको में होने वाली असाधारण
बातें याद आएँ- मैं नहीं लौटूँगा फिर भी।

एक खत लिख दूँगा कि सुखी हूँ
कोई नहीं करे चिन्ता।

मैं बताऊँगा अगर कोई देवता गुजरे आकाश मार्ग से
और पूछे मेरे पलायन का सबब

मैं कहूँगा कि वे हरियाली की बात करते थे
लेकिन कभी उन्होंने पानी की जुगाड के बारे म नहीं साचा।

कि वे औरतो पर होने वाले जुल्म की बात करते थे
पर कभी अपनी औरतो को देहरी लाघने की इजाजत नहीं दी।

मैं उन्हे बताऊँगा कि कैसे वे जाति की समानता पर बहस करते थे
लेकिन विवाह उन्हाने अपना ही बिरादरी की लडकी से किया।

दश कर्जे क बोझ स दुहरा हुआ जा रहा था और जनप्रतिनिधियो

के पास करोडा रुपये थे। वे अदालत आर कानून को
अपनी रखैल की तरह इस्तेमाल कर रहे थे

यह भी कि वे अस्पतालो और स्कूलो का अभाव देखते रह
फिरा भी सारा पैसा मदिरो के निर्माण में खर्च किया

स्वतत्र विचारो और सगठन के बावजूद चारी छिपे वोटो मे
तब्दील हाने से खुद को नहीं वचा सके

सभव ह देवता मुझे बुजदिल कहे आर मुझे भी गोर से देखे
मगर वो इतने से ही हेरत मे पड जाएगे
आर मेरे पलायन को एकदम गलत नहीं ठहरायगे।

जॉर्ज लुइस बार्खेस (अर्जेन्टीना के प्रमुख कवि निबंधकार और कथाकार। 1899 मे अर्जेन्टीना मे जन्म। शिक्षा स्विटरजरलैंड और इग्लैंड मे। पहली कविता पुस्तक 'पैशन फॉर बी ए' 1923 मे प्रकाशित। अल्टराइस्ता काव्य आदालन के प्रमुख सिद्धान्तकार और रचनाकार। कविता मे शक्ति के लिए बिब, निकट स्थानायता मिथकीय और अतिभौतिक यथार्थ, स्मृति व अन्तर पाठता पर आग्रह। अतिम वर्षों मे अधत्व के शिकार।

प्रमुख कृतियाँ कविता – 'सेलेक्टेड पोएम्स' 'ड्राम टाइगर्स' 'इन प्रेज ऑफ डार्कनेस' 'द बुक ऑफ सेड'। गद्य – 'फिक्शन्स' 'लिब्रेयन्थ' 'अदर इन्क्विजिशस', 'ए पर्सनल एथोलॉजी', 'डाक्टर बोडीज रिपोर्ट , 'द एलेफ एड अदर स्टोराज' 'द यूनिवर्सल हिस्ट्रा ऑफ इन्फेमा' आदि)।

ऐसे आती है कविता मुझ तक

–जॉर्ज लुइस बोर्खेस

(1971 मे जॉर्ज लुइस बोर्खेस कालम्बिया विश्वविद्यालय द्वारा अपन लेखन पर आयोजित विचारगोष्ठियो की एक श्रृखला के लिए आमत्रित किये गय थे। यहाँ बार्खेस ने अपनी कृतिया के अग्रेजी सस्करणों क सपादक और अनुवादक नार्मन थामस डि गियोवान्नी, कोलम्बिया विश्वविद्यालय म राइटिंग प्रोग्राम के प्रमुख फ्रेक मैक्शन और विश्वविद्यालया के छात्रा के साथ अपने गद्य, कविता और अनुवादो पर अनेक महत्वपूर्ण वार्ताए रिकार्ड करायी थीं। कविता पर हुई एसा एक बातचात क कुछ सपादित अश यहाँ प्रस्तुत है जिसमे बार्खेस ने कविता के रूप और गठन पर कुछ दिलचस्प बात कही हैं।)

मैक्शन मुझ लगता है कि बोर्खेस से बातचीत शुरू करने का एक आसान तरीका यह है कि वे अपनी कविता क बारे म सहज और आकस्मिक रूप से कुछ बताये।

बोर्खेस हाँ, बातचात का एक तरीका तो यह है कि उसमे भाषण न हो। अन्तत हम सभी कवि बनने की कोशिश कर रहे हैं। अपनी असफलताओ के बावजूद मै अभी भी कवि बनने की कोशिशो म लगा हुआ हूँ। किसी भी समय मैं अब बहत्तर वर्ष का हो जाऊँगा।

मुझे लगता है कि युवा कविया म उस चीज से शुरूआत करने की प्रवृति है जो सबसे कठिन है – मुक्त छद। यह बहुत बडी गलती है। मुझे अर्जेन्टीना के कवि लियापोल्डो ल्युगोन्स की एक बात याद आता है जा उन्होंने 1909 मे छपी अपनी पुस्तक 'ल्युनेरियो सेटीमेटल'

मे कही थी। यह पुस्तक आज भी एक क्रातिकारी पुस्तक है। पुस्तक की भूमिका म उन्होने लिखा है कि वे कविता मे प्रयोग करने की कोशिश कर रहे थे और इस प्रयास मे वे नये नये छदो की खोज और पुराने समय के छदो को नये रूपाकारो मे ढालने के काम म लगे हुए थे। वे जानते थे कि वे जो कुछ कोशिश कर रहे हैं वह व्यर्थ है और अन्तत असफलता ही उनके हाथ लगेगी पर इस प्रयास मे उन्हाने अपने पाठको के सामने यह साबित कर दिया कि वे कविता के पुराने क्लासिक रूपो से पेश आने म समर्थ हैं। उन्होंने यह भी लिखा है कि कोई भी आदमी क्रातिकारी बनकर अपनी शुरूआत नहीं कर सकता। अपने मामले मे उन्ह लगा कि उन्होने प्रयोग करने का अधिकार अर्जित कर लिया है क्योकि वे तब तक अपने अनेक कविता सग्रह प्रकाशित करा चुके जो बहुत अच्छे माने गये थे या कम से कम उन्ह एक सहनीय हद तक क्लासिक कविता के सग्रह माना जा रहा था। मैं समझता हूँ कि यह एक बहुत ईमानदार वक्तव्य है। पर साथ ही एक नैतिक किस्म का वक्तव्य भी है। शायद जरूरत पडे तो इसके लिए इससे बेहतर तर्क भी खोजा सकता है। यदि आप सानेट पर हाथ अजमा रहे हैं तो एक तरह की भ्राति मे भरोसा कर चलते हैं कि सचमुच आपके सामने एक रूपाकार है – सानेट का रूपाकार, फिर चाहे सानेट का वह इतालवी रूप हो या शेक्सपीयर द्वारा इस्तेमाल किया गया रूप। यह रूप तब भी मौजूद था जब आपने कविता की एक पक्ति भी नहीं लिखी थी। तो आप जब लिखते हैं तो आपको केवल लयात्मक शब्दो को खोजना होता है। ये लयात्मक शब्द आप जो कुछ कर रहे हैं उसकी सीमा निर्धारित कर देते हैं और चीजे आपके लिए आसान हो जाती हैं। यह सब कहने के पीछे मेरा शेक्सपियर या वर्ड्सवर्थ या कीट्स या यीट्स के किसी सानेट स बेहतर नहीं मानता तो मेरे लिए यह प्रश्न अर्थहीन होगा। किसी एक रूप को पसद करने और दूसरे रूपो को खारिज करने की आवश्यकता नहीं है क्योकि आप दोनो को अपना सकते हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि यदि आप सानेट लिख रहे हैं तो कुछ है जो आपको पहले स प्राप्त है और पाठक भी उस रूप की पूर्वकल्पना कर लेता है जबकि मुक्त छद में कोशिश करते हुए हर चीज आपके भीतर से ही आनी होती है। कविता के किसी पुराने रूप को अजमाने के बजाय मुक्तछद लिखने के लिए आपको तकनीकी दृष्टि से बेहद निपुण होना आवश्यक हे। हाँ, अगर आप मे वाल्ट विटमैन जितनी प्रतिभा है तो बात दूसरी है, क्योकि तब आपके पास एक जबर्दस्त भीतरी शक्ति या अन्दरूनी आवेग होगा जो आपको मुक्त छद इस्तमाल करने के काबिल बनायेगा पर हम से बहुतो के पास यह काबलियत नहीं है। मैंने भी 1923 मे जब अपना पहला कविता सग्रह "फरवर डि ब्यूनआयर्स" छपवाया था तो यह गलती की थी। मैंने मुक्तछद मे कविता लिखी थी – तब तक मैंने अपने तरीके से विटमैन को पढा था और मुझे लगा था कि ऐसी कविता लिखना बडा आसान है। आज मुझे लगता है कि वह काम कितना मुश्किल है। यदि मैं किसी क्षण के आवेग मे कुछ लिखता हूँ तो मुझे किसी निर्धारित रूपाकार का आश्रय लेना होगा क्योकि यह मेरे लिए आसान है। इसलिए मेरी तो युवा कवियो को यही सलाह है कि वे शुरूआत कविता के क्लासिक रूपाकारो से कर और

उसके बाद ही प्रयोगधर्मी बनें। मुझे आस्कर वाइल्ड का एक कथन याद आता है – इसमे एक भविष्यसूचक या पैगम्बरी दृष्टिकोण है। आस्कर वाइल्ड ने कहा "यदि कविता के एक निश्चित रूपाकार के रूप सानेट न होता तो हम लोग केवल जीनियसो की दया पर निर्भर होते"। यही बात है जो आज हो रही है, कम से कम मेरे देश म तो ऐसा ही हो रहा है। लगभग प्रतिदिन मेरे पास कविता की पुस्तके आती हैं जिनसे लगता है कि अब मै जीनियसो की दया पर ही निर्भर हूँ। दूसरे शब्दो मे, ये तमाम तमाम कविता पुस्तके अर्थहीन हैं। यहाँ तक कि इन कविता पुस्तकों मे रूपक भी अपनी पहचान नहीं बना पाते। रूपक दो वस्तुओ को जोडने वाले होते हैं, पर इन पुस्तको मे मैं कहीं भी किसी तरह की सम्बद्धताए नहीं पाता। मन पर यह प्रभाव पडता है कि तमाम चीज बिना किसी तारतम्य के बडी जल्दबाजी मे लिखी जा रही है जैसे कि सारा लेखन किसी कम्प्यूटर द्वारा किया जा रहा हो। मेरी अपेक्षा रहती है कि कुछ पढकर मुझे किसी चीज का आनद आए। मैंने जीनियसो वाली गलती अपनी पहली पुस्तक मे की थी (शायद दूसरी पुस्तक मे भी और शायद तीसरी मे भी) पर उसके बाद मैंने पाया कि सानेट म कोई ऐसी बात है जो वास्तव मे जादूभरी है, जिसे समझाया नहीं जा सकता। दरअसल मैं यह कहना चाहता हूँ कि नियमो को तोडने के लिए पहले नियमो की जानकारी होनी जरूरी है। यह बात बहुत स्पष्ट है पर इतनी स्पष्ट होने के बावजूद अधिकाश युवा कवि इस बात को समझते नहीं।

इसी स जुडी हुई एक और बात मेरे दिमाग म आ रही है। अब ऐसे क्यो होता है कि मैं कभी तो सॉनेट मे लिखता हूँ और कभी मुक्त छद मे? यह एक भेद भरी बात है कि कैसे मेरी कविताए लिखी जाती हैं। मैं सडक पर टहल रहा हूँ या नेशनल लायब्रेरी की सीढियाँ चढ रहा हूँ और मान लीजिए मैं ब्यून आयर्स के बारे मे सोच रहा हूँ – तब अचानक मुझे लगता है कि कुछ होने जा रहा है। मैं बैठ जाता हूँ। जो कुछ घटने वाला है, मैं उसके प्रति सतर्क हो जाता हूँ। यह एक कहानी हो सकती है, एक कविता भी हो सकती है– मुक्त छद म या किसी और रूप मे। इस क्षण मे महत्वपूर्ण बात यह है कि जो कुछ घट रहा है उसके साथ छेड-छाड न की जाये। हम चाहे जितने महत्वाकाक्षी हों चाहे जिस देवदूत का साया हम पर मडरा रहा हो, चाहे जिस कला की देवी से हमारा साक्षात्कार हो रहा हो – या आधुनिक मिथको का इस्तेमाल करे तो चाहे हम अपने अवचेतन के जिस इलाके मे हो, हमे अपने भीतर घटते हुए को पनपने देना चाहिए। थोडे समय बाद, (यदि इस बीच मे स्वय को झासा नहीं देता रहा हूँ तो) मुझे कविता की एक पक्ति प्राप्त होगी, या धुधलके मे लिपटा कुछ मान होगा – या कोई झलक जरूर मिलेगी। बहुधा तो मैं इसकी शिनाख्त नहीं कर पाता, यह एक फीकी सी आकृति मे होती है। वह मलिन सा बादल धीरे धीरे एक आकार मे ढलने लगता है, मैं अपनी भीतरी आवाज को कुछ कहते हुए सुनता हूँ। पहल पहल जो कुछ मैंन सुना होता है उसकी लय से मुझे पता चलता है कि यह एक कविता बनने जा रही है या नहीं इस कविता का आकार सानेट मे होगा या मुक्त छद म। बहरहाल कविता लिखने का यह एक तरीका

है।

एक दूसरा तरीका जो मरी समझ से बहुत अच्छा तरीका नहीं है वह यह कि लिखन के पहले ही किसी प्लाट को निर्धारित कर लिया जाय। बहरहाल मुझे तो प्लाट भी प्राप्त होता है। मसलन, अभी दो तीन दिन पहले मैंन अचानक पाया कि मर पास एक कविता के प्लाट का विचार है। पर अभी इतनी जल्दी इसके साथ कुछ करना सभव नहीं है। मुझे प्रतीक्षा करनी होगी। समय आने पर यह मर पास आयगा। एक बार जब मैं 2-3 पक्तियाँ लिख लेता हूँ तो मुझे सपूर्ण आकार के बारे म एक माटा सा अनुमान होने लगता है और यह भी पता चलने लगता है कि यह कविता परम्परागत रूप म हागी या मुक्त छद म। इस सारी बात को कहने का एक ही मतलब है कि कविता कवि को दी जाती है। मैं नहीं समझता कि कोई कवि अपनी अपनी मर्जी से तैयार होकर बैठे तो कोई कविता उसक द्वारा लिख ली जायगी। मैं तो ऐसे किसी भी प्रलोभन को भरसक राकने की कोशिश करता हूँ। कई बार मुझे ताज्जुब होता है कि आखिर इतनी सारी कविता पुस्तक में लिख कैसे गया। मैं कविता को आग्रह करने देता हूँ। कई बार य कविताए बहुत हठीली और कसकर चिपकने वाली हाती हैं और मुझसे एक खास ढग स पेश आती है। मुझे लगता है कि मैंने इन्हें नहीं लिखा तो ये लगातार मुझे परेशान करती रहगी। एक बार जब ये लिख ली जाती हैं तो मैं होरेस की सलाह पर अमल करता हूँ। मैं एसी किसी कविता को हफ्ते भर दस दिन तक एक तरफ पडे रहने देता हूँ। निश्चय ही कुछ दिना के बाद मुझे पता चलता है कि मेंन कितनी भयावह गलतियाँ की हैं। में उन्ह सुधारता हूँ। तीन चार बार की कोशिशा के बाद लगता है कि बस इसे और अधिक सुधारा नहीं जा सकता या इसम और कुछ परिवर्तन इसे बिगाडेगा ही। बस इसके बाद ही मैं उस कविता को छपने कहीं भेजता हूँ। मैं क्यो भेजता हूँ उन्ह छपने? तो सुनिय, महान गद्यकार और शायद महानतम मेक्सिकी कवि अलफासो रेयेस ने मुझसे कहा था "हम जो कुछ लिखते है, उसे हमें छपाना चाहिए क्योकि यदि हम नहीं छपायगे ता हम उसे निरन्तर बदलते रहगे और एक हद के बाद कहीं भी नहीं पहँचेगे।" इसलिए लिखी हई चीज को छपवा लेना चाहिए और दूसरी चीजो की तरफ बढना चाहिए।

प्रश्न आप कविता के निर्धारित रूपाकारो की बात कर रहे थे। यह इस पर भी तो निर्भर करता है कि आप किस तरह क माहौल म पले है। में तो यह कल्पना नहीं कर सकता कि मैं सॉनेट या गीत लिखूगा।

बोर्खेस मुझे खेद है। यह बहुत अजीब बात है कि आप अतीत के प्रति इतने उदासीन हैं। यदि आप अग्रेजी म लिख रह हैं तो आप एक परम्परा का अनुसरण कर रह हैं। भाषा अपन आप म एक परम्परा है। तो क्यो न गीतकारा की लबी और महान परम्परा का अनुसरण किया जाये? मुक्त छद मे लिखने वाल महान कवि ज्यादा नहीं हैं पर एसे तमाम कवि मिल जायग जिन्होंने परम्परागत रूपाकारा को बखूबी अर्जित कर लिया है। यदि आप अतीत को पूरी तरह नकार देते हैं ता इस बात का पूरा खतरा

है कि आप यह पाय कि एसा करते हुए आपने जिन चीजा का खोजा वे भी पहले हो खोजा जा चुकी थीं। क्या आपम इस सदी क अपन साथा कविया क वारे म उत्सुकता नहीं है? पिछली सदी क कवि? अठारहवीं सदी के कवि? क्या जॉन डॉन का आपके लिए कोई अर्थ नहीं? मिल्टन से आप कुछ नहीं सीखते? मैं सचमुच आपके इस प्रश्न को सुनकर हैरान हूँ।

प्रश्न कोई अतीत के कविया को पढन के वाद जो कुछ उसने मुक्त छद म सीखा है उस अनुसार व्याख्या भी तो कर सकता है।

बोर्खेस मैं यह नहीं समझ पा रहा कि आप मुक्त छद जैसी कठिन चीज से अपनी शुरूआत क्या करना चाहते हैं?

प्रश्न पर मुझ यह कठिन नहीं लगता।

वार्खेस ठीक है मैंने आपका लिखा पढा नहीं है इसलिए मैं उस वार म कुछ नहीं कह सकता। लिखना सरल काम है, पर पढना वहुत कठिन है। बहुत सार मामला म इसका सबध आलस्य से है। मुझे लगता कि मुक्त छद क समर्थन म एक तक यह दिया जाता है कि पाठक जानता है कि उसे इस कविता को पढकर काई नयी जानकारी नहीं मिलगी उसे किसी चीज मे विश्वास करने के लिए उकसाया नहीं जायेगा। यह पाठक मुक्त छद से एक ऐसे भाव की अपक्षा करता है, कि पढकर वह कुछ उदात्त हो रहा है जीवन स जुड रहा है उसे भावनाआ न विदीर्ण कर दिया है। मेरा मानना यह है कि मुक्त छद म ऐसा कुछ है जो पाठक पर भौतिक रूप से असर डालता है। मुक्त छद का प्रभाव यदि सगीतात्मक नहीं है (साधारणतया यह नहीं होता) तब भी पाठक यह जानता है कि वह जव कविता पढ रहा होता है ता कवि उससे किस भावना की उम्मीद कर रहा होता है।

(बोर्खेस ऑन राइटिग से)

जितेन्द्र श्रीवास्तव

तुम जब चाहो

तुम ठीक जानती हो
लोग सच नहीं कहते
भला दिल्ली कहाँ दूर है।

दिल्ली और तुम्हारे शहर मे
बस एक रात का फासला है

तुम जब चाहो
हम मिल सकते हैं
एक दूसरे को निहार सकते हैं जीभर
छो लेना चाहे अगर
छो ले महज उँगलियाँ नहीं
पूरा का पूरा प्यार
कार्तिक हो उन दिनो तब कार्तिक का घाम
जेठ हो अगर तब जेठ की छाँह
आषाढ हो तब दिन का भींगापन

जो भी न हो ठोस
मिलकर महसूस सकते हैं ठोस की तरह
जैसे बाहो में जीवन
यह जानकर भी
कि महज दो बाँहो मे जीवन नहीं होता

जीवन चार आँखो से देखा गया एक सपना
बीस उँगलियो से तराशी हुई एक तस्वीर
चार पैरो से चली हुई दूरी
बिन बोले चार अधरो का कम्पन
बिन कहे एक दूजे के लिए बटोरा आक्सीजन है

जीवन एक दूसरे मे घुल जाना है
इस तरह घुल जाना
कि असभव हो जाए अलगाना

तुम जब चाहो जहाँ चाहो जैसे चाहो
हम मिल सकते हैं खिलखिला सकते हैं
झाँक सकते हैं एक दूसरे की पुतलियो मे
यह सोचते हुए कि पुतलियो मे झाँकना
मन मे झाँकना है
कि भीतर का सच पुतलियो मे अँटका होता है

तुम जब चाहो हम मिल सकते हैं
और अँटकी हुई चीजो को निकालकर
जीवन सँवार सकते हैं।

विवेक गुप्ता

विस्थापन

एक दिन जाना होगा अपनी जगह छोडकर
लोग आयेगे विदा करने
और विदा नहीं कर पायेगे
वे नहीं पूछ पायगे
कितना दुख है तुम्हे और क्या

किसी से बिना कुछ कहे
अपने को जुदा करके चले आना होगा
उस दुनिया से जहा जडे थीं गहरी धसी हुई
शाम ढलती थी तो वहीं ढलती थी
सुबह वहीं होता थी
अकेली रातो की टीस ने वहीं जन्म लिया था
वहीं प्यार था वहीं घृणा

अपने लिए कुछ नहीं जुटाया था वहाँ रहते
सिवाय अपने
वहाँ अकेले थे अपने तमाम दुखो के साथ
अब जुदा होने के बाद वे दुख करेग पीछा
जैसे छायाए चलती हैं चादनी रात म दबेपाव
किसी निर्जन उदास समय मे
पुरानी आवाजो के टुकडे बहे चले आयेगे हवा के साथ
सपने बार-बार खींच ले जायेग वहीं
नींद म हसाते और जगने पर रुलाते हुए

पीडा को और घना करतीं
स्मृतिया बहगीं इस तरह
जैसे जख्मो से रह-रहकर बहता है मवाद

अदर ही अदर फूटगे जख्म
भीतर उठ रही होगी टीस
एक आह उठेगी और किसी का पता नहीं चलेगा
वह प्यार की थी या घृणा की
पीडा की या टास की
या उस दुख की
जो वहाँ रहते था और चला आया था यहा तक
अकल साथी की तरह।

चाकू

दुकानदार ने उसे ठीक से देखा तक नहीं
और उसे भय था
कहीं वह कुछ पूछ न बैठे
फिर कुछ रुपयो के बदले
बटन पर अगूठे का दबाव पडते ही
सामने वाले के पेट की तरफ खुलता
मैं उसके हाथो मे था

कुछ ही देर मे उसके साथ रहकर
मैंने जान लिया
जिसे वह ध्वस्त करना चाहता था
उस दो के बराबर एक-के मुकाबले
मैं और वो एक और एक मिलकर दो थे

अधेरे मे घात लगाये बैठे
उसकी आँखो मे किसी के
रास्ते से होकर गुजरने की
बेसब्र प्रतीक्षा थी
और मेरी पकड पर
मजबूती से जमा था उसका दाया हाथ

उसे एक कत्ल करना था
और उसकी जेब मे मौजूद
मैं उसके इरादे को बल दे रहा था।

अपने ताले के आगे

उम्माद नहीं थी
मरे साथ भी करेगा ऐसा

लेकिन अब
धुँधली रोशनी म
थका हारा
खडा हूँ
अपने कमरे के आगे
अजनबी की तरह

क्या चावी की मध्यस्थता मे ही
था हमारा हमेशा का सबध

कोई दोप नहीं
आसपडोस के लोगो का
जो शक शुबहे मे
घेर लेते

मार ही दे मुझे
अपने ही दरवाजे
जैसे मे पीटता हूँ ताले को

ऐसा कर ही दिया है इसने मुझे।

कि एक कोई पहचान लेता है–
चावी छूट गयी है?
ताला खुल नहीं रहा।

नाहक नुकसान मत करिये
अच्छे भले ताले का
ठहरिये मैं कोशिश कर देखता हू

जो काम करती मेरी चाबी
वही कर देता है उसकी जीभा

ताला तो रह गया चिटखनी भी
पर टूट गया बहुत कुछ

कल के दिन
इसी ताले की
चाबी बनवाने जाऊँगा फिर

बरताव

सालो साल पहले के
पुराने पड हुए हैं पन्ने
कुछ दाग रह गये हैं
अगुलियो और नमी के
कुछ स्याहियां के छींटे

रद्दी के भाव बेचा नहीं है इन्हे
रखा है तह पर तह कर

बदन के जो कपडे
होते गये छोटे
जगह-जगह मसकने
और दरकने के बावजूद
नयी चीजो के बदले
दिया नहीं है इन्ह फेरी वाले को

देखा है इन्हीं से
अपने जीवन का अक्स
छूटते जा रहे समय के बरअक्स

ईंट और ककरीट से
नये बनाये जा रह घर मे
बचाये रखी है
मिट्टी की एक जगह
रखा है सुरक्षित
कई पीढियो का स्पर्श

पहली सुबह से ही जल रही

रसोई आर पेट की आग से
पक और पग रहा है
अपना मन
पहली शाम से ही
लगाये रखा हे
आँखो मे अजन

कद काटते बडप्पन मे
सेंत रखा है
स्मृतियो का बालपन
पथराये शरीर की खोहो म
सिहरता एक तन

दिलो-दिमाग की आलमारियो मे
भरी रखीं
कई-कई डायरियाँ तारीखे
सही-गलत के कितने ही
धूल भरे निशान
धुधली लिखावटो वाली अनमेल चिट्ठियाँ
लम्बी यात्राओ के पायदान

मुझसे अब भी जुडे
अपनो के ये सुरक्षित कोष देख
कहती है एक मानुषी
पता नहीं कितनो से रहा है
प्रेम तुम्हारा
किस-किस मे बसती है तुम्हारी जान।

जीवन

अधूरा था जीवन जिसे जाना था
सीना था अपने ही शरीर के तार-तार कपडे
हृदय।
देखना था मृत्यु के पार जीवन
अपनी अनलिखी डायरियो के पृष्ठ
जोड-घटाव
एक लडकी को लिखा अधूरा सा प्रेमपत्र।
अभी और भी झेलने थे शाप
खिसकनी थी पाँव-तले की जमीन
वह दीवार जिसके सहारे खडा था
अभी और कितनी ही नदियो मे कुडो मे
करना था स्नान।
दु खा हताशाओ क्रोध और घृणा के बीच
ओ समय के सारथियो।
अभी कितना कुछ पीना था,
अपमान
यह मेरे जीवन का अन्त तो नहीं था।

नरेश चद्रकर

हिलना

सवारी छोड कर लौटते टाँगे वाले को देख रहे हैं हम
उसकी चौकडी की शर्ट
हिल रही है हवा मे

मेहमाना को घेरे बैठे हम सब पूछ रहे हैं
"कैसे हैं वहाँ सभी"
हमारे हाथ के रोए हिल रहे हैं

बच्चे ने जोर से चिल्लाकर पुकारा है
"मम्मा देखो न कितना सुन्दर चित्र बनाया मैंने"
हमारे कान के पर्दे हिल रहे हैं

हिल रही है आज घर की दीवारे
कमरे की सारी छते

जैसे हिल रहा है जल
और उठ रही हैं लहरे
हिल रही हैं डालियाँ
और झर रहे हैं फूल

हिलना ही हिलना चारो ओर
जैसे ध्वनि- तरगो पर हम हैं
और हम सब मे ध्वनि-तरगे।

पहली बार मैंने हिलने को पहचाना

और खिडकी क बाहर

हवा मे हिलती लतर को
हाथ से छूते हुए मैंने खुद से कहा
हिलना मन।
जैसे हिलती है गार्ड का हरी झडी।

पहली बार मैंने हिलने को पहचाना-
और पहचानते हुए हिला मेरे भीतर एक डर भी

कल अगर मेरे राए हिलना छोड द
न हिले मेरे कान के पर्दे
न हिले आँखो पर झपकती पलक
न हिले स्मृतियो मे डूब कर मेरा रोम-रोम

कल ही शायद तो फिर बैठ जाएगी
झपकती हुई मेरे सिर पर
चीले ही चीले।।

अन्धकार

चुपके-चुपके घुटनो में मुँह छुपाये
बीत रहा है रात
गहरी नींद मे डूबे थके-मादे लोग
कबसे एक ही करवट पडे हैं
अन्धकार मे डूबीं
अपनी ढुलकी चाल से
चल रही हैं घडी की सुइयाँ

मैं अन्धकार के
सबसे निर्जन कोने मे खडा
बार-बार भयभीत होता हुआ
अन्धकार के बारे मे सोच रहा हूँ

क्या पता कब गिर पडूँ?
किसी पत्थर से टकरा कर
अपने पैरो की आहट भी
भय पैदा करती है मुझमे
तेज से तेज देखती हैं आँखे
पर कुछ दिखाई नहीं पडता
अपने हाथो को भी
महसूस भर कर पाता हूँ

कान के पास गाता हुआ आता है भुनगा
और उसका स्वर
इतना तीक्ष्ण जान पडता है
जैसे कान को छूकर
बादलो को छेदता हुआ

उड गया है कोई जहाज

महसूस करता हूँ मैं
जैसे मेरे आसपास
असख्य पुतले दौड़ रहे हैं
ये विकार रहित पुतले
मेरे पैरा की अगुलियो पर
गिरते-पडते भाग रह हैं
मासूम पुतलो के घुटने
गिरने पर भी नहीं छिलते
वे गिरकर फिर उठ खडे होते हैं

इन छोटे-छोटे पुतलो के बीच
खडा एक बडा पुतला
(जो कुछ-कुछ कलेण्डरों वाले
ईश्वर की आकृति जैसा है)
मुझे देख हँस रहा है

अन्धेरे मे हा-हा कार नहीं है
सब कुछ चुप-चुप सा
बिलकुल अन्धेरे जैसा ही है
जैसे मेरा भयग्रस्त पीला चेहरा
और बडे पुतले के होठो पर
खेलती शरारती मुस्कान।

रो-रो कर बच्चे

पहाड पर लेटकर
एक स्त्री स्त्री होने की कीमत पर
करती है मजूरी

लटका देती हे अपना स्तन
दूर नीचे झोपडी मे रो रहे
बच्चे के मुँह मे

पुरुप दिन भर स्तन पकड-पकडकर
चढते-उतरते हैं पहाड

शाम स्त्री
खुद को तह करती हुई
उतरती है प्रवेश करती है
झोपडी मे एक माँ

रात मे पुरुप जब
बच्चो के सोने का इन्तजार करते हैं
वीच-वीच मे रो-रो कर बच्चे
पुरुपा को
उनकी माँओ की याद दिलाते हैं

आतुर है समुद्र

सुदर है समुद्र का विप्लव
पछाड खा कर
टूटती विखरती लहरा को

कुछ कदम समुद्र म जाकर थामता हूँ
जितना

उससे ज्यादा
हिलती हैं रेत मे धँसी नावे
जहाज का तरह डोलता हैं
दूर-दूर की बस्तियाँ

मछुआरे की झोपडी मे
नमक पहुँचाने को आतुर है समुद्र

समुद्र की मछलियाँ
मचलती हे मछुआरे की बाँहो मे
जिन पर सिर रखकर मछुआरिन को सोना है।

वे हमारे हक मे हैं

उसी शहर मे जहा
फर्लांग दो फर्लांग से आसरा लेकर
चमकते हैं सुनहरी कगूरे
भुरभुराती ईंटो मे बचे खडे हैं जहा भूर-भूरे
किले रनिवास स्मारक कुछेक खास
वहीं शहर जो पलता-पसरता चला गया है
जैकारा-दर-जेकारा
वहीं हैं वे।

वे हैं ओर मिची आँखो से बूढी कहानियाँ सुनात हैं
वे ठीक वेसे हैं कि जैसे
दूसरे शहरो के अधेड
जो जमीन के तेजी से गायब होते चले जाने को लेकर
बेहद त्रस्त हैं
जो खुले मे साना और बेहतर समझते हैं आज
कि उदाहरण हॉसले सग
जिनके सपने मे उतरता है आज भी पूरा चाँद
सकून की हद तक जिन्हे अच्छा लगता है
बहता जल
और जो घर की चिकचिक के बावजूद
अक्सर
मछलियो को आटे की सेवइयाँ डालते मिल जाते हैं।

वे जो किसी भव्य भवन को देख
ठिठक कर खडे हो जाते हैं
और साधिकार कहते मिल सकत हैं
कि इससे पूर्व तथा उससे भा पहले
यहाँ क्या था

काफी वब बचाकर सडक पार करत हैं वे
और पार पहुँच कुछ दर तक
कनर पर हाथ रख खड
खासत-हाफते रहत हैं।

इसके बावजूद
वे ही हैं कुशल पैदल चलने वाले
कुछ ज्यू को यू
उन्होंने ही इजाद की हा पगडडिया
शायद इसालिए, उन्ह हीं
वृक्षा की छाया म खड हाना/सुस्ताना आता है।

चमक्ते कगूरों वाले इस कमॉडिटी शहर म वे
तमाम उठक-बैठक नाकझाक भागदौड छाना-झपटी मारकाट वगैरह के चलते
पक्क घरान क किसी राग की तरह
वहिचक बने हुए हैं।

व हैं इसीलिए
शहर म बचा हुआ है एक शहर और
व हैं इसीलिए
शहर का किसी दूसर काण स भी दखा जा सकता है।

वे हमारे हक मे हैं

उसी शहर म जहा
फलाग दो फर्लांग से आसरा लकर
चमकत हैं सुनहरी कगूरे
भुरभुराती ईंटा मे बचे खडे हैं जहा भूरे-भूरे
किले रनिवास स्मारक कुछक खास
वही शहर जो पलता-पसरता चला गया है
जैकारा-दर-जैकारा
वहीं हैं व।

वे हैं और मिची आँखो से बूढा कहानियाँ सुनाते हैं
वे ठीक वैसे हैं कि जैसे
दूसरे शहरो के अधेड
जो जमीन के तेजी से गायब होते चले जाने को लेकर
बेहद त्रस्त हैं
जो खुल मे सोना और बेहतर समझते हैं आज
कि उदाहरण हौसले सग
जिनके सपने म उतरता है आज भी पूरा चाँद
सकून की हद तक जिन्हे अच्छा लगता है
बहता जल
और जो घर की चिकचिक के बावजूद
अक्सर
मछलिया को आटे की सेवइयाँ डालते मिल जात है।

वे जो किसी भव्य भवन को देख
ठिठक कर खडे हो जाते हैं
और साधिकार कहते मिल सकते हैं
कि इससे पूर्व तथा उससे भा पहले
यहाँ क्या था

काफी बच बचाकर सडक पार करते हैं वे
ओर पार पहुँच कुछ देर तक
कमर पर हाथ रखे खडे
खासते–हाफते रहते है।

इसके बावजूद
वे ही हैं कुशल पैदल चलने वाले
कुछ ज्यू की यू
उन्होने ही ईजाद की हो पगडडिया
शायद इसालिए, उन्हे ही
वृक्षो की छाया मे खडे होना/सुस्ताना आता है।

चमकते कगूरो वाले इस कमॉडिटी शहर मे वे
तमाम उठक–बैठक, नोकझोक भागदौड, छीना–झपटी मारकाट वगैरह के चलते
पक्के घराने के किसी राग की तरह
बेहिचक बने हुए हैं।

वे हैं इसीलिए
शहर मे बचा हुआ है एक शहर और
वे हैं इसीलिए
शहर का किसा दूसर काण से भी दखा जा सकता है।

आग्रह

यदि मैं बालू के तप्त समतल रेगिस्तान मे
बीचोबाच खडा होकर चीखूँ
मुझे चाहिए यहाँ
पहाड नदी वृक्षा से भरा जगल
तो निश्चय ही
व्यर्थ जाएगी मेरी चीख

यदि यही बात
पृथ्वी को थपथपाते हुए
उसके कान मे कहू
तो सम्भव है घिर जाऊ अचानक
पहाड नदी जगल के चमत्कार से

पृथ्वी पर फेला यह तप्त ओर बजर मैदान
गारन्टी इस बात का
पृथ्वी आतुर बहुत दिनो से
किसी आत्मीय आग्रह के लिय।

ईश्वर

ईश्वर है
कि बस पहाड पर लुढकने से बच गई
बच्चा स्कूल से सकुशल लौट आया
पिता चिन्तामुक्त माँ हस रही है
प्रसव मे जच्चा-बच्चा स्वस्थ हैं
पत्र आया है कि याद आता है
षडयत्रो के बीच बच गया जावन
रसातल को नहीं गई पृथ्वी अभा तक

वह डर से
भरोसे मे तब्दील हो गया है।

उसके नहीं होने मे

खटिया के बिना
कैसे चलेगा काम-काज
घर-दुआर का बाग-बगीचे का

दादा को तो ज़रूरत है ही
अपनी पूरी बुढारा काटने के लिए
एक खटिया की

खेत-बधार से लौटे
पिता को
थाडी देर सुस्ता लेने की खातिर
घर की चिता म गोते लगाने की खातिर

लेवा बनाने म मग्न
दौरी बुनने मे माहिर
माँ को हरदम जरूरत है खटिया की
चाहे वह टूटी हुई क्यो न हो

फिर दादी को क्या नहीं चाहिए
मकई-मसुरिया के बाल
ललमी-खरबूजा की लतर
लौके या कोहड के बिरवे की
तत्पर रखवाली के वास्ते

दीदी को दखा था कभी-कभा
खटिया पर निश्चित बैठकर
स्वेटर बुनते
हाथा म रचते महदी

देखा था भौजी को
अपने जाघो पर सुलाकर
बडे प्यार से बबुआ को तेल लगाते
लेटकर पिलाते दूध

काका बारबार कहते हैं
बगैर खटिया के
उठकी-बैठकी अच्छी नहीं लगती कभी
हित-मित्र भी आते हैं तो
थूक जाते हैं

वास्तव मे
जिस तरह घर के होने मे होती है
किसी घर की चिता
किसी चीज के आदी हो चुके लोगो के लिए होती है
उसके नहीं होने म।

लालटेन

जब मैं लालटेन जलाता हू
सोने-सा दमकने लगता है
पूरा घर

मुझे लालटेन की रोशना मे
अधेरे के बहुत बडे-बडे पावो के
न गिने जा सके जितने चिन्ह
साफ-साफ दिखाई पडते हैं

जैसे खोये हुए सब के सब सामान
और दोब की फाको मे कनमनाते सोच-विचार
नजर आते हैं एक-एक कर

मैं सुनता हू
लालटेन जलाने के बाद
भीता से रुक-रुक कर टकराती हुई
झींगरो के जार-जार स बालने की तेज आवाजे
ओर उनका नितात चुप हो जाना

कुत्ते का भौंकते हुए रोना
आर खूटे पर बछडे का अतिम बार
हकरना भा

लालटेन से कुछ ही दूरी पर बेठे
मेरे पिता के चेहरे की सिकुडने
किसी उत्तम ऋतु मे भरपूर मेहनत और लगन से बनाई गई
खेता की टेढी-मेढी
पगडडियो-जैसी मालूम पडती हैं

लिट्टी पकाने के लिए सुलगाये गये आड के पास
मरियल-मरियल-सी मेरी माँ
ख्याला म हजारा वर्षो से भली-भाति रक्षित
कोई भूमि होती है

जैसे सहमी-सहमी और स्थिर-सी हवाय
आने और लोट जाने के लिए व्याकुल फतिगिया
मेर घर क दरवाज क ऐन सामने से भटकता हुआ
गुजरता है एक रात आकाश का
एक तारा

मैं उन हवाआ
उन फतिंगियो
और उस भटके हुए तारे को बहुत दूर तक
दिखाता टू लालटेन

हर बार

मेरे लिए लालटेन जलाना
सिर्फ पूरे घर को ही नहीं
पूरी पृथ्वी और पूरे आकाश को
फिर से दखना
और फिर से टटोलना होता है।

स्थिति

बीत न जाये रोपाई का नक्षत्र
रोप दी जाती है
ईख की आँख
कियारी-कियारी

चाँद को लगे ग्रहण या सूर्य को
गर्भवती ओरत
किवाडो का पल्ला

कोई भी परोजन ठानने से पूर्व
उसे निबाहने या निपटाने के लिए
करना ही पडता है
कोई न काई उपाय

पहली-पहली वर्षाऋतु की हाला म
जब गहगहाता है सबका मन
चमकते हैं सेचमक
रोये

राय
चमकते है सनक
ता लोटती है उमग
शान स

ऐसी पडे ठढक
हाथ-गोड हो जाये पाला से पाला
स्वेटर पहनते हैं लुग की गाती बाँधते है
बाल-बच्चे

बूढे-जवान ओढते हैं ऊन की गभीर चादर
तापते हैं
जलाकर धान के पुअरा

ऐसे ही ऐसे ही ठीक
दर न हो जाये कही
उलट फेर न हो जाय
हकासे-पियासे रिश्तेदारा के घर से
लेकर आता हे खबर
बेगरिया

तीसरी पहर रात को
टिटिहरी देती ह
जब-जब अशुभ सूचना
यू धडक जाता हे नहीं
यूँ दरक जाता है दिल

सचेत हो जाते हैं दोना कान
टप टप टपकने जैसा
तड तड टूटने जैसा किसी का रोना
सुनने का।

अभी हम बहुत दूर हैं

जब दास्त पचास का होकर मरा
हम अपनी-अपनी उम्र गिनने लगे

कनपटी से झाँकते सफेद बालो को
खिजाब ने छिपा लिया था
हमारे झूठो ने छिपा ली थी हमारी जन्म तारीख
हमने दोस्त के घरवालो से कहा था
'यह तो होना है कौन टाल सके'
हमने कइ राते जागकर बितायी थीं
और सर्दी-खाँसी का छोटी-सी शिकायत पर भी
हममे से कई
झट् भाग थे डॉक्टर के पास

कुछ दिना तक
हमे बीवी लगी थी विधवा और बच्चे अनाथ
बिलखते हुए
जैस दोस्त की बावा और बच्चे
कुछ दिनो तक
हमारी चर्चाओ में थीं दोस्त की याद
उसक पसदीदा खानो और फिल्मा और ठहाको और गालिया को
हमन याद किया
कुछ दिनो तक हमारी जुबान पर उसका नाम था किसी प्रार्थना की तरह
हमने याद किया मर चुके कई पुराने दास्तो को
जिनके न रहने की ठीक-ठीक तारीख भी हमे याद नहीं
जिदगी मे हमने पहली बार देखी थी जिसकी मृत्यु
वह हमारी चर्चा म अचानक आया
और फूहड तरीके से हमे घसीट ले गया

हममे से एक ने अपने जीवन मे देखी थी यह सौवीं मौत
हम हैरान थे वह बुद्ध क्यो नहीं बन गया
हमे लगा, हम मौतो के आदी हो चुके हैं

अचानक हमारे स्वभाव मे आ गयी थी
एक अस्वाभाविक गभीरता
दोस्तो और रिश्तेदारा और पडोसियो और दफ्तरवालो से मिले हम
माफियो के साथ
जेसे आखिरी मुलाकात
हमने ईश्वर से अपने परिवार की सलामती की दुआएँ माँगी
जैसे आखिरी इच्छा
दफ्तर जाते समय चूमे बीवी के होठ
जैसे जा रहे हो रणभूमि
घर लौटकर लगता
जैसे पलग पर लेटे-लेटे ही खप जाएँगे हम

चटपटा खाने के शौकीन हमने
कम करवा दिये थे नमक ओर तेल
सपनो में एक अँधेरी गुफा हमे भयानक दीखने लगी थी

हम अपनी उम्र के बचे दिनो को सजो रहे थे
जैसे महीने के आखिर म तनख्वाह
अपनी-अपनी उम्रे गिनकर हमने पाया
हम छू रहे हैं पचास की परछाईं

टिफिन बॉक्सो का फीकापन चखकर
हम सब ठहाके लगाते
मानो ठहाको मे लपेट कहना चाहते हा
नहीं-
अभी हम बहुत दूर हैं मोत की तारीख से

चायखाने मे दास्त की खाली कुर्सी पर आ बैठता है एक और दास्त

महकती चाय का गीत

उसकी पतीली मे उबल रहे है
दुनिया के तमाम दुख
और आदमी को आदमी की तरह न जीने देने की
तमाम दुनिया की साजिशा से बेखबर
वह गा रहा है

वह गा रहा है
स्टोव के पचम स्वर पर
होठा को गोल कर साटी बजा रहा है

वह दुनिया के न जाने किस काने स
सबसे ज्यादा खूबसूरत और सबसे ज्यादा खुशबूवाले फूलो की खुशबू
अपनी अँजुरी मे भर लाया है
इससे कुछ अलग ही महकती है उसकी चाय

रोजमर्रा की चीजो को लगातार अप्राप्य बनाने वाले
नहीं खडे हे उसके ठेले के किनारे
रोजमर्रा की चीजो को लगातार अप्राप्य बनते देखने और झेलने और
जीने को मजबूर ही पीते हैं उसकी चाय
उसकी चाय जो अभी तक पेटेट नहीं हुई है

नई गुलामी की चमचमाती जजीरो की आवाज
उसने सुनी नही है
उस खबर नहीं कि पतीली और काँच के छोटे-से गिलास की
उसकी ललछौहा चाय उससे छीन लेने के लिए
दुनिया के सबसे बडे लोकतत्र के मठो म चर्चा चल रही है

इस चर्चा से बेखबर वह होठो को गोल कर साटी बजाते हुए
महकती चाय का गात गा रहा है

देखा वे घाल रह हैं उसकी चाय मे बाजार का स्वाद
देखना व लपक कर छीन लगे
उसक होठा से उसका गात।

अस्पताल का द्वंद्व

मैं डर कर भाग रहा था उस भय से
जो मेरे आसपास नहीं-
डॉक्टरो की जुबान पर था
जाँच की रिपोर्टे पढना मेरी पहली उत्सुकता थी
दूसरी थी उनका अथ जानना
जो मुझे कोई नहीं समझा सका

दवाखानो आर अस्पतालो के चक्कर लगाते हुए
मैंने जाना
कि जीवन का अतिम सत्य मृत्यु नही
बल्कि आखिरी साँस तक फैली हुई जीने की चाह थी
अस्पताल के लबे गलियारे मे दोनो छोरो तक
मृत्यु का आतक पसरा हुआ था
और उससे लडने सूराखो से निकलता चींटियो की फौज थी
सफेद और हरा रग आँख मिचौली का रग था
जो दीवारो और परदो से उतर
मेरी त्वचा पर पुत रहा था
फिनाईल की गध म से आशकाओ क भभके निकल रहे थे
अस्पताल मे घुसते ही बेदम होती धूप थी
वहाँ हवा की आवाज साँस के मरीज की सी आवाज थी
जो बहुत फँस फँस कर मुश्किल से निकलती थी
दूसरे शवो की खेरखबर लेने आते
लकडी की सफेद बैंच पर बैठे बेठे
लगभग शव हो चले लोगो से
मुझे सहानुभूति थी
मरीजो के लिए लाए गए खाने मे हर खैरख्वाह
डालना चाहता था रत्तो से स्वाद

कुछ नहीं से बचे रहने की लडाई मे
शामिल थ बच्चे, बूढे युवक और स्त्रियाँ एक ही तरह से
डॉक्टरो के गले मे लटके आले पर
सबका विश्वास था
आर रिपोर्टो की फाईल से निर्धारित था सासा की
सख्या और गति
बावजूद पीली उदासी के मनहूसियत से लडने के लिए
वहाँ थोडा बहुत हँसी ओर थकी मुस्कुराहट थीं
जो कराहा और रुलाईया क बीच
अदम्य जावन की तरह चमकती थीं

पानी के साथ दवाएँ लीलते हुए
टूटी हुई कसमो अधूरे वादा क साथ ही
बाकी रहीं इच्छाआ का जोर भी
बामारा से लडता था
ओर एसे म किसी नवजात का रुदन सुन
मृत्यु का भय कोने मे सिमट जाता था

इस तरह बच रहे थे लोग जाते जी मरन से।

शैलेन्द्र दुबे

शीर्षक हीन

(1)
एक सीखचे को पकडे खडा है
दृश्य बिखरा है अपनी
पूर्णता म

कई सींखचे भीतर जन्म ले रहे हैं
अन्दर कारा‌आ की
लम्बी सुरग है
कई दरवाजे बन्द हें

भीतर एकदम
चारा ओर के सींखचा ही सींखचा मे
केद पडी हैं बेडियाँ

उन्मुक्त है आकाश

(2)
एक दूसरे आदमी से मेरा आदमी
कृत्रिम हाथ मिला रहा हे
उसका होना
मेरे आदमी ने
बिल्कुल नहीं सूघा
और जबकि वह बडबडा रहा था
केसे बताऊँ
मैं समुद्र के पास टीले पर बैठा
लहरो की प्रशान्तता मे

सीनाभर हवा से
झागो का खेल देखता
दूर तक नाला हो गया था

(3)
उसने कुछ नहीं कहा
आर न सुना ही
मैं ही जागता रहा
अपनी छाया के साथ

अपने ही श्रापो के
विकर्षण से एक रात भोगता हूँ
गहरी काली छाँह

में पकडना चाहता हूँ
शीशा के पार की
धुधली मानवाकृतियाँ
वे बिछली देहे
जो बदलती रहती हैं
अपने वस्त्र

मरे लिये इतना काफी है
दहो का खुलना
वे अब सोने के लिये
पूर्वाभ्यास से ग्रस्त हैं।

हरि मृदुल

बनियान

छेद गिने थे परसो छ
आज मिले छत्तीस
हतप्रभ हू
एक ही दिन मे
केसे हो गये तीस
तो पहनी ह जो यह बनियान
रिस रहा है यहीं से यह जावन

मोजे

जब खरीदे थे मोजे
जूते काफी पुराने थे
नय मोजे इनकार कर रहे थे
इन जूतो की सगत के लिए
खैर तय तो मुझे करना था
एक अरसे बाद ही जूते बदले जा सके

इधर मैंने अनुभव किया है कि
रुआसे से दिखते हैं माजे
नये जूतो के साथ अब ।



पेंटिंग आर एम एस मलिक

कविता मन की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति है

(शीर्ष मराठी कवि विंदा करंदीकर से राजाराव की बातचीत)

(23 अगस्त 1918 को सिंधुदुर्ग महाराष्ट्र में जन्मे विंदा करंदीकर को आधुनिक मराठी कविता का एक शिखर पुरुष माना जाता है। पाँचवे दशक में मराठी में जो नव काव्य धारा आरंभ हुई वे उसके प्रणेता है। मार्क्सवाद से गहरे प्रभावित विंदा की कविता जीवन रस की विविधता से परिपूर्ण है। उनका दृष्टिकोण एक खुला दृष्टिकोण है। उनका जीवन सतत् सृजन सक्रिय रहा है। मराठी में उनके प्रमुख कविता संग्रह हैं- स्वेद गंगा (1949) मृदगंध (1954) ध्रुपद (1959) जातक (1968) तथा विरूपिका (1981)। विंदा करंदीकर ने बच्चों के लिए भी खूब लिखा है और बाल कविताओं के उनके 12 कविता संग्रह हैं। इसके अलावा ललित निबंधों की उनकी दो पुस्तकें स्पर्शाची पालवी' तथा 'आकाशा चा अर्थ' भी बहुचर्चित पुस्तकें हैं। 'परंपरा और नवता' तथा 'उद्गार' उनके वैचारिक पक्ष को स्पष्ट करने वाली पुस्तकें है। विंदा ने अरस्तू के काव्यशास्त्र पोएटिक्स' का मराठी अनुवाद किया है। गेटे के 'फाउस्ट' तथा शेक्सपियर के 'किंगलियर' के उनके द्वारा मराठी मे किये गये अनुवाद एक उपलब्धि माने जाते है। विंदा ने संत ज्ञानेश्वर के 'अमृतानुभव' का आधुनिक मराठी मे रूपान्तर भी किया है। अंग्रेजी मे उनकी आलोचना की दो पुस्तकें 'लिटरेचर एज ए वाइटल आर्ट' और 'ए क्रिटिक ऑफ लिटरेरी वेल्यू' उपलब्ध है।

विंदा को मिले पुरस्कारों की सूची लंबी है। उन्हे महाराष्ट्र सरकार के 10 पुरस्कार मिल चुके हैं। सीनियर फुल ब्राइट पुरस्कार, सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार कुमारन आसन पुरस्कार कविराज कुसुमाग्रज पुरस्कार कबीर सम्मान जनस्थान पुरस्कार कोर्णाक सम्मान आदि भी मिल चुके हैं। तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ ने 1994 मे उन्हे डी लिट की मानद उपाधि से सम्मानित किया है। विंदा ने अमरीका और रूस की यात्राएं की हैं और अनेक भाषाओं मे उनकी रचनाओं का अनुवाद हो चुका है।

विंदा से यह बातचीत आर राजाराव ने मूल रूप से अंग्रेजी मे की थी जिसका मराठी अनुवाद उनके साक्षात्कारों की पुस्तक उद्गार' मे संकलित है। इस बातचीत का संपादित अंश यहाँ प्रस्तुत है)

राजाराव *क्या आप यह मानते हैं कि ब्राह्मण लेखक होने की वजह से दलित लेखकों के बारे में आपकी राय पूर्वग्रहदूषित थी ?*

विंदा मैं ब्राह्मण लेखक हूँ तो केवल इस अर्थ में कि ब्राह्मण माता पिता ने मुझे जन्म दिया है और

ब्राह्मण प्रतीकों और बीज कथाओं का भी मैं यदा-कदा अपने लेखन में प्रयोग करता रहा हूँ। अपने विचारों और जीवन दृष्टि में मैं ब्राह्मणवादी नहीं हूँ। मेरे पिता ने सावरकर के कुछ सुधारवादी विचारों को आत्मसात् किया था और दलितों के प्रति कुछ प्रेम दिखाने की वजह से उनका कुछ समय तक सामाजिक बहिष्कार हुआ था। तरुणाई के दिनों में मुझ पर रसेल मार्क्स और फ्रायड के लेखन का बहुत प्रभाव पड़ा। दलित युवकों ने जब लिखना शुरू किया उसके पहले ही मैं बौद्धिक दृष्टि से विमुक्त और प्रौढ़ पचास साल का एक बुर्जुग था। इसलिए मेरी दृष्टि में किसी पूर्वाग्रह दोष के होने की संभावना नहीं थी। धोखा दूसरी तरफ था। दलितों पर होते रहे अत्याचारों के बारे में पूरी जानकारी होने की वजह से दलित लेखकों को (वे दलित हैं इसलिए) कुछ ज्यादा ही सराहना करने की मेरी सहज प्रवृति रही होगी। यदि वह लेखक वामपंथी कार्यकर्ता या प्रगतिशील विचारों का हुआ तो यह सहानुभूति कुछ ज्यादा ही होती थी। लेकिन आज तक मैंने इस सहानुभूति को दलित लेखकों के साहित्य मूल्यांकन करते समय हावी होने नहीं दिया है। उनके साथ जो सामाजिक अन्याय हुआ है उसकी क्षतिपूर्ति इस प्रकार नहीं हो सकती। यह तो हो गया मेरे सचेत या कांशस मन की बात। अवचेतन मन या उसमें छिपी गुप्त प्रेरणा की जो गूढ़ बात है उस बारे में मैं कुछ नहीं कह सकता।

सामाजिक चेतना निर्मित करने वाला सारा वाङ्मय बोध प्रवण ही होता है यह मैं नहीं मानता। मैं मानता हूँ कि सच्ची सृजनशीलता वाला ललित वाङ्मय ही हमारे अंतरंग का निर्माण कर सकता है। बोधप्रवण साहित्य केवल मन के ऊपरी हिस्से को छू सकता है और कभी कभी तो उसका परिणाम उसके मूल उद्देश्य से बिलकुल उलटा हो सकता है। सारा मार्क्सवादी या दलित लेखन बोधप्रवण ही होता है यह मैं नहीं मानता उस संबंध में मेरा निर्णय उस विशिष्ट कृति के प्रत्यक्ष स्वरूप पर निर्भर करता है मैं उसका सवसाधारणीकरण नहीं करता।

❑ *आपकी वैचारिक यात्रा और आपके साहित्य की विकासयात्रा परस्पर व्याघात उत्पन्न करती हैं ऐसा आपको लगता है?*

● वे अलग अलग हैं पर परस्पर व्याघाती नहीं हैं। एक विचारक के रूप में मेरा संबंध यथार्थ और उसके कार्यकारण भाव से होता है मैं सत्य या शिव खोजने की कोशिश करता हूँ। एक कलावंत की भूमिका में किसी कल्पनाप्राप्त जीवनदर्शन को साकार करने का प्रयत्न मेरा रहता है और उसमें संवेदना और भावना विवेकनिष्ट व विवेकभ्रष्ट वास्तव तथा अवास्तव ये सभी अन्तर्भाव हो सकते हैं। विचारवंत बहुत ही अनुशासित होता है लेकिन कलावंत सबको शामिल करने वाला होता है। सामान्यतया यह कहा जा सकता है कि सृजनशील कलाकार होने के नाते मुझे हुए अनुभवों का थोड़ा बहुत परिणाम मेरे साहित्य के भीतर उठे प्रश्नों पर पड़ा है और विचारक के नाते ज्ञान का थोड़ा बहुत परिणाम मेरे साहित्यिक के कल्पनाप्राप्त जीवनदर्शन पर पड़ा है।

❑ *आपकी कुछ कविताओं में इरोटासिज्म के कुछ गाढ़े रंग हैं, एक तरह का गूढ़वाद है। अपनी मार्क्सवादी विचारधारा के साथ आप इसकी संगति कैसे बिठाते हैं?*

● मैं इन दोनों में संगति बिठाने का प्रयत्न नहीं करता। मैं स्वयं इतने तमाम विरोधाभासों में भरा हुआ हूँ और उसी तरह मेरी कविता है। मानवीय अनुभूति की सारी अवस्थाओं को मैं एक समान सच्चा मानता हूँ कुछ प्रसंगों में मैं गूढ़ मन स्थिति अनुभव करता हूँ और तब किसी विचारधारा को सच सिद्ध

करने क लिए उस अनुभव को पीठ दिखाने की बजाय मेरी कविता उस अनुभव को आकार देने की कोशिश करती है। मानव जीवन किसी भी एक सुसगत विचारपद्धति की अपेक्षा अधिक विशाल है और मनुष्य की सवेदना इतनी जटिल है कि किसी तर्कशुद्धता से उसे नापा नहीं जा सकता। मेरी कविता म कुछ गूढता की अर्न्तध्वनि हा सकती है फिर भी मैं अपने विचारा या रोजमर्रा के जीवन का मैं एक रेशनेलिटी से ही जीता हूँ। जीवन म कुछ आकस्मिक प्रसग कुछ अनपेक्षित स्थितियाँ और कुछ न सुलझने वाल प्रश्न हो सकते हैं पर सामान्यतया व्यक्ति के पास जीवनक्रय व सामाजिक विकास दानो म ही कायकारण भाव का आधार सुस्पष्ट करते रहने क अलावा चारा क्या है? अपने व्यावहारिक जीवन की सभावनाआ को मै विचारपूर्वक ही तय करता हूँ। ऐसी वैचारिकता और उसकी सफलता की मर्यादाओ का भी मैं जानता हूँ फिर भी हम मनुष्या के पास विचार के सिवा कोई दूसरा विश्वसनीय साधन नहीं है- इस मैं स्वीकार करता हूँ। सक्षेप म यही कहूँगा कि मै गूढवादी नहीं बुद्धिवादी हूँ। सही कथन यही होगा कि मैं सशयवाद का अकुश साथ म रखन वाला मार्क्सवादी बुद्धिजीवी अपने को मानता हूँ। हाँ लेकिन मेरे लौकिक जीवन को नियत्रित करने वाली यह विचारपद्धति मेरी कविता की भी सीमा रेखाए निर्धारित कर दती हा एसा नहीं है।

☐ *फिर एक कवि की हैसियत से आपकी विचारधारा कौन सी है?*

● मैं यह नहीं मानता कि प्रत्येक लेखक को किसी विशिष्ट धार्मिक राजकीय या साहित्यिक विचारप्रणाली पर विश्वास रखना ही चाहिए। उसका विचारवत चाह जा मानता रह पर उसक भीतर के सृजनशील कलाकार का काम इसके बिना भी चल सकता है। सृजन की प्रक्रिया म चतन मन क साथ साथ अवचेतन का भी उतना ही महत्वपूर्ण यागदान होता हे। कविता किसी जीवित प्राणी की तरह इस तरह विकसित होती है कि कवि तक को उसके अतिम स्वरूप के बारे म स्पष्ट रूप से पहले से कुछ मालूम नहीं हाता। यदि कोई कवि किसी विशिष्ट विचारप्रणाली के अनुसार अपनी सृजनप्रक्रिया का नियत्रित करन लगा तो वह कलाकृति रचने क बजाय किसी कारीगरी वाली वस्तु का निर्माण कर रहा होगा। यह सच है कि किसी विचारप्रणाली पर दृढ विश्वास रखने वाले कुछ कविया ने महान कलाकृतियाँ रची हैं पर यह ध्यान मे रखना चाहिए कि उनकी असाधारण सृजनशील प्रेरणा ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए उस विचारधारा को चुना। मिल्टन टेगौर नेरूदा- जैसे कवि इसके सुप्रसिद्ध उदाहरण हैं। लेकिन सामान्य कविया के लिए किसी नियमनिष्ट विचार प्रणाली स जुड़ना उनका कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए बधनकारी भी हा सकता है। सृजनशील साहित्य सामान्यतया किसी कल्पनाप्रवण जीवनदर्शन को साकार करता है। और साहित्य का महत्त्व इस बात स निधारित हाता है कि साहित्य म उस जीवनदर्शन की व्याप्ति और उसकी गहनता उसकी चित्ताकर्षकता और कलात्मकता की एकात्मकता कैसी है। मनुष्य जीवन का काई भा अनुभव भाव भाषा शैली या आकार कविता क लिए निषिद्ध नहीं है। कवि होने के नाते मै एक 'खुले दृष्टिकाण म यकीन रखता हूँ अन्य किसी पूर्व सकल्पित विचारप्रणाली मे नहा।

हाँ आप यह बात कह सकते है मेरा ऐसा कहना आत्मसमर्थन की एक रक्षात्मक व्यूह रचना है। पर मैं उस बाबत बहस नही करूगा। मेरी कविता म परस्पर विराधी लगन वाल विविध प्रकार क तमाम भावनात्मक वैचारिक और कलात्मक दृष्टिकाण आत रह हैं। उसम यथार्थ आर कल्पना सामाजिक वस्तुस्थिति का मार्क्सवादी चित्रण और अकल्पनीय अनुभतिया की गूढवादी रचना उपहासात्मक उद्रव

और प्रतीकात्मक चिंतन भाषा और शिल्प के नये प्रयोग पारंपरिक छंद और शिल्प- ये सभी उसमें एक साथ मौजूद हैं। उसकी प्रवृति सुसंगत बनने की अपेक्षा समावेशक किस्म की हैं। मैंने जिस 'खुले दृष्टिकोण' को स्वीकार किया है उसी में मेरे सृजनशील कलात्मक अनुभव की निष्पत्ति हो सकती है।

☐ *क्या कवि अपने प्रतीकों को सचेत रूप से चुनता है या उसे अपने ही प्रतीकों के सुप्त सामर्थ्य के आकलन के लिए समीक्षक की मदद लेनी पडती है? क्या हम यह कह सकते हैं कि शुद्ध कवि की तुलना में समीक्षा करने वाले कवि के पास अपनी कविता को समझने का ज्यादा सामर्थ्य होता है।*

● प्रतीक और बिंब में फर्क है मात्र एक ही शब्द दोनों प्रकार का कार्य कर सकता है। प्रतीक में एक चीज दूसरी चीज के लिए इस्तेमाल की जाती है। सामान्यतया एक ठोस वस्तु जब किसी अपूर्व वस्तु के वर्णन के लिये इस्तेमाल होती है तो हम उसे प्रतीक कहते हैं जैसे कमल पवित्रता के लिए क्रास शहादत के लिए चिथडा दारिद्रय के लिए इत्यादि। प्रतीक पारंपरिक हो सकते हैं या नवनिर्मित हो सकते है। पर सामान्यत कवि भी इनका इस्तेमाल सचेत ढंग से करता है। बिंब स्वत ही सुसवेद्य है और खुद ही संवल्ना और भावना से जुडा रहता है। ऊपर उल्लिखित कमल क्रास या चिथडा का इस तरह इस्तेमाल हो तो वे बिम्ब बनकर आयगे।

बिंब बिन बुलाये ही आता है कवि उनको सायास ढंग से खोजता है तो वह हानिकारक हो सकता है। यह सच है कि बिंब कविता से कहीं अलग नहीं हो सकता जब एक से अनेक बिंब कविता में स्वत स्फूर्त ढंग में आते हैं तो उनमें चुनाव सचेत ढंग से करना पडता है। चूंकि एक ही बिंब यदि बार बार इस्तेमाल हो तो उसकी ताजगी समाप्त हो जाती है उसमें निहित भावना की उष्मा चुक जाती है और वह एक प्रतीक में बदल जाता है। सच बात तो यह है कि इस प्रकार बिम्ब विरुद्ध प्रतीक के विश्लेषण की अपनी सीमाए भी हैं। कोई भी प्रतिभाशाली कवि अपने बिम्बों की ताकत अपनी कविताओं के संदर्भ में अच्छी तरह समझता है लेकिन अच्छा समीक्षक उन बिंबो का विचार एक व्यापक संदर्भ में कर सकता है। जानकारी सृजनात्मक हो सकती है वैसे ही शुद्ध वैचारिक भी। विशुद्ध कवि के पास सृजनात्मक जानकारी होती है समीक्षक-कवि के पास दोनों। लेकिन इस बात की वजह से समीक्षक -कवि विशुद्ध कवि से बेहतर नहीं माना जाना चाहिए।

☐ *कविता मे दुर्बोधता की परम्परा के बारे मे आपकी क्या राय है?*

● *ऐसी कोई परम्परा है यह मैं नहीं मानता। यह सच है कि कुछ अच्छे कवियों की कविताओं मे कभी कभी दुर्बोधता आती है लेकिन विशुद्ध काव्यात्मक दुर्बोधता को हम वैयक्तिक वस्तुस्थिति कह सकते हैं पर यह कोई परम्परा नहीं बन सकती। जब कोई सामान्य कवि फैशन के लिए अपने खोखलेपन को छिपाने के लिए या समीक्षकों को प्रभावित करने के लिए दुर्बोधता का सहारा लेता है तब यह सच्ची काव्यात्मक दुर्बोधता नहीं बल्कि कृत्रिम दुर्बोधता होती है। वैसा हो तो वह एक घृणास्पद बात होगी।*

☐ *आपने कहा है कि सृजन प्रक्रिया में भावना की कोई जगह नहीं होती, लेकिन सृजन तो भावना से ही प्रेरित होता है।*

● मेरा यह कथन जिस सदर्भ म है उसे यहाँ दोबारा रखना उचित होगा "जब मैं कागज-कलम लकर लिखने बैठता हूँ तब मैं सोचता नहीं। सोचना निर्मितिपूर्व की अवस्था है। इसी वजह से कहा जा सकता है कि कविता के जन्म क समय भावना के लिए कोई स्थान नही है - जिस अर्थ मे भावनाशीलता को हम समझते हैं। जब मैं लिखता हूँ तो सृजनात्मक शक्ति के प्रभाव म आकर ही लिखता हूँ, और वह प्रेरणा विचार भावना और सवेदना- इन सभी को अपनी साधन सामग्री के रूप मे इस्तेमाल करती है।" अब आप समय गय हाग कि मैं क्या कहना चाहता हूँ। यह जरूरा नहीं कि सृजन का हर कृति भावना से प्रेरित हो। अनेक सभावनाओ मे से वह एक सभावना है। सृजन की प्रक्रिया इतनी विविधताओ से भरी हुई, आकस्मिक और अचभित करने वाली है कि उसका कोई एक ही रास्ता नहीं हो सकता।

☐ *आप अपनी कविताए पिछले चालीस वर्षों से जनता के अलग अलग वर्गों को सुना रहे हैं। इस कविता पठन का आपकी कविता पर क्या कोई असर हुआ है? कविता पठन की मर्यादाओ और उसके उपयाग क बारे मे आपके क्या विचार हैं?*

● हाँ मैंने वर्षों तक अपनी कविताआ को जनता के सामने पढा है- मराठी कवि सम्मेलनो म और बहुभाषा मुशायरा म भा। इसम सुशिक्षित और अशिक्षित अभिजात वग के समूह और हजारा का सख्या म आम आदमी- सभी प्रकार क श्रोता होते है। इसके अलावा मैंने अपनी कविताओ के अग्रेजी अनुवाद अमरीकी विश्वविद्यालया के छात्रो के सम्मुख या रूस मे पुश्किन फेस्टिवल मे भी पढे हैं। मुझे एसे कविता पठन से बहुत आनद मिलता है। एक वजह यह है कि अपनी कविता पढते हुए मुझे कविता म जा भावस्थिति है उसका फिर से आनद मिलता है। दूसरी वजह यह है कि आम जनता से मैं अपने सबध बना सकता हूँ। एक और खास वजह है कि मेरा कविता मानव जीवन क कुछ खास पहलुआ को खोज करती है और उन्ह बिलकुल अलग ढग से पेश करने का काशिश करती है। इसी वजह से भाषा रचना और शिल्प के नवीनतम प्रयोग मैं करता रहा हूँ। कविता पढते समय ये प्रयोग लोगो तक पहुँच पाय हैं या नहीं इसकी खोज भी मैं करता रहता हूँ।

जिस कवि को काव्य पठन का लबा अनुभव है वह जानता है कि सभी कविताए काव्य पठन के लायक नही होतीं। इनमे कुछ अच्छी से अच्छी कविताए भी हो सकती हैं। सच तो यह है कि प्रत्येक कविता यह तय करती है कि उसे कैसे पढा जाये। कुछ कविताए मूक पठन की माग करती है। काव्य रसिक को उन्ह अकेले म ही पढना चाहिए। कुछ कविताए पडाल मे ही पढी जाने लायक होती हैं। कुछ कविताए इस मामले म कुछ नहीं कहती। पडाल म पढी जाने लायक कविताए अनुरूप उच्चारण से और भी अधिक अर्थवाही हो जाती हैं। एसी कविताए न तो दूसरी कविताओ से श्रेष्ठ होती हैं न उनसे घटिया। उनका स्थान मध्यम हाता है। इसका अर्थ यही होगा कि समुदाय के बीच जाकर काव्य पठन की अपनी सीमाए हैं।

लेकिन ऐसी मर्यादाआ का मेरे कविता लखन पर कोई असर नहीं हाता। जब मैं कविता लिखता हूँ तो मेरे सामने काई विशिष्ट पाठक नहीं होता। इसलिए श्राताआ का कविता अच्छी लगने की सही या गलत दानो वजह हो सकती हैं। अच्छी कविता क महत्व का निकष श्राताओ की तालियाँ या वाहवाही मान तो वह नुकसानदह हा सकता।

लेकिन मैं यह मानता हूँ कि इन सामाओ के भातर काव्य पठन की अपनी उपयागिता है। महाराष्ट्र म काव्य पठन की एक लबी परम्परा रहा है। 1940 के आसपास नयी कविता के उदय क बाद इस

सवध को नुकसान पहुँचा है। हालाकि उस समय मैं एक नया कवि ही था मुझे यह बात पसद नहीं आ रही थी। मैं और मेरे दा और कवि मित्रा ने अपनी कविताए लोगा तक ले जाकर यह दूरी मिटाने का प्रयास किया। मुझे लगता है कि हमे किसी हद तक सफलता भी मिली। अच्छे कवि को अपने मन म यह मालूम होता है कि उसके जीवन की पहली प्राथमिकता कविता हा है और काई चीज नहीं। लेकिन उसे यह भी जानना चाहिए कि यदि यह कविता सामान्य श्रोतागण से दूर गयी तो वह ज्यादा समय जिदा नहीं रह पायेगी।

☐ *आपने कहा है कि असाधारण प्रतिभा और भाषा पर सीमित अधिकार एक साथ रह सकते हैं और उसक बावजूद कवि अपना प्रभाव दिखा सकता है- यह कैसे?*

● भाषा पर प्रभुत्व का हाना किसी महान प्रतिभा का सबूत नहीं। महान जीवन दर्शन को अपनी कल्पना शक्ति से समझना एक बात है और उसे अर्थवाही शब्दा मे ढालकर लोगों तक पहुँचाना एक दूसरी बात है। यह सच है कि अपनी प्रतिभा की अभिव्यक्ति के लिए लेखक का भाषा पर प्रभुत्व होना जरूरी है लेकिन यदि भाषा पर प्रभुत्व न भी हो ता तब भी उस प्रतिभा की व्याप्ति और गुणवत्ता का आशिक दर्शन हा ही जाता है। यह तो हम अक्सर कहते हैं कि फला आदमी के पास कहने को बहुत कुछ है पर वह प्रभावी ढग से अपनी बात कह नहीं पाता। साहित्यिक प्रतिभा के बारे मे भी यह सभव है। अक्सर ऐसा समझा जाता है कि अग्रेजी म लिखने वाले भारतीय लेखको क पास भाषा की पर्याप्तता नहीं है इसलिए उनके लेखन म गुणवत्ता नहीं है। इस बात का प्रत्युत्तर दने के लिए ही मैंने अपनी यह बात कही है।

☐ *कल्पनाप्रवण जीवन दर्शन को समझने की कूवत और उन जीवन दर्शनो को अभिव्यक्त करने की शक्ति को यदि हम अलग अलग मान ल तो जिसक पास वह कूवत है, लकिन अभिव्यक्ति का सामर्थ्य नहा है ऐसे बहुत सारे लोगो को भी हम कवि मानना पडेगा!*

● ऐसे लोगा को मैं निश्चय ही सभाव्य कवि मानूगा। सामान्य पुरुष व स्त्रियाँ दोनों सभावित रूप स किसी हद तक कवि हात हैं। क्योकि हर एक के पास कल्पनाशक्ति और सौदर्य दृष्टि हाती ही है। जो आप लोगा मे नहीं है ऐसा कोई भी खास गुण कवि में नहीं होता। कवि के भीतर कुछ सर्वसामान्य गुणा का ही असमान्य विकास हुआ रहता है। इसके अलावा इस चर्चा के सदर्भ मे भाषा पर प्रभुत्व की बात अनिश्चित अर्थ वाला है। व्यावहारिक जीवन म इसका अर्थ है स्पष्टता से और बिना किसी अवरोध क बोलने की क्षमता। किसी लेखक को अनुरूप शब्द तुरत याद नहीं आ रहा है या उसे अपनी अनुभूति के निकट का शब्द खोजने क लिए श्रम करना पडता है तो उसका भाषा पर प्रभुत्व नहीं है ऐसा माना जाता है। इस अर्थ को ज्यों का त्या कवि के बारे म लागू नहा किया जा सकता। वास्तविक महत्व इस बात का है कि वह जो श्रम करता है अतिम रूप में उसकी निष्पत्ति क्या होती है। इस दृष्टि से उसकी भाषा सबधी निर्णय शक्ति भाषा पर प्रभुत्व होने से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है।

अग्रेजी आपकी दूसरी भाषा हो सकती है फिर भी आप उन लोगा से अग्रजी के बेहतर लेखक हो सकते हा जिनकी मातृभाषा अग्रजी है। मारिस चार्ने का यह कथन सच हो सकता है कि '*लोलिता*' में अमरीकी बोलचाल की भाषा की दृष्टि से लगभग प्रत्येक पृष्ठ पर एक त्रुटि है लेकिन उससे क्या हुआ? रशियन मातृभाषा हान क बावजूद नबाकोव ने सीखी हुई अग्रजी भाषा का परिणामकारक और

अभिव्यक्तिपूर्ण उपयोग कर अपने कलात्मक उद्दिष्ट को प्राप्त किया है। पोल भाषा मातृभाषा होने के बावजूद जोसफ कॉनरड ने सीखी हुई अंग्रेजी भाषा म कजामिया द्वारा वर्णित 'दुर्दम्य शैली' निर्मित की है। और अपने इस सामर्थ्य क बल पर वह अंग्रजी का एक महान उपन्यासकार सिद्ध हुआ। ब्राउनिंग जैसे श्रेष्ठ अंग्रेजी कवि की मातृभाषा अंग्रेजी होते हुए सामान्य रूप से जैसा अधिकार उसे उस भाषा पर होना चाहिए था वह नहीं था।

❑ *आज के मराठी युवा कविया को आप क्या सलाह देगे?*

● यह कि किसी को सलाह मत लो। खासतौर पर मेरे जैसे बूढो स तो बिलकुल नहीं। आप जिस दुनिया का सामना करने जा रहे हैं उसक लिए मेरी सलाह किसी काम की नहीं होगी। और आपके लेखन क लिए तो हानिकारक साबित होगी।

❑ *बुजुर्ग कविया का सलाह न ल ता परम्परा की जानकारी युवा कविया को कैसे होगी?*

● बुजुर्गों के कहने से परम्परा की जानकारी होती है यह आप कैस कह सकते हैं। बुजुर्ग लाग बहुत बार अपने बीते दिना को याद दाहराते रहत हैं। अपन जीवन म प्रभाव डालने वाले व्यक्तियो, किताबो और घटनाआ के बारे म बढा चढा कर बताते रहते हैं। बुजुर्ग कवि इसके अपवाद नहीं है। उनका मार्गदर्शन उनकी अच्छे और बुरे की कल्पना से निर्देशित होता है। इसे परम्परा से नहीं जोडना चाहिए। मैं खुद परम्परावादी नहीं हूँ। लेकिन तरुण कविया की कविताए उनके प्रयाग सिर्फ कुछ दिन खलबली मचाने वाली नहीं बल्कि यहाँ क साहित्य की मूलधारा से जुडने वाली हानी चाहिए। इसके लिए कवियो का परम्परा की जानकारा हाना बहुत जरूरी है। इसलिए उन्ह अपने जनजीवन से जुडे रीति-रिवाजा लोक साहित्य आदि से परिचय बढाना चाहिए श्रेष्ठ ग्रथो को पढना चाहिए और अपने प्रदश के सास्कृतिक और साहित्यिक इतिहास का अनुशीलन करना चाहिए। परम्परा की सच्ची जानकारी आत्मसात् करने का काई भी 'शार्टकट' नहीं होता। यह बहुत ही कष्टदायक प्रक्रिया है। बुजुर्ग कविया की सलाह इस दृष्टि स अप्रासगिक है।

❑ *ऐसा कहा जा रहा है कि कुछ वर्षों से आपने अपना काव्य सृजन स्थगित कर रखा है। क्या आपकी सृजन शक्ति चुक गयी है, ऐसा आप मानते हैं?*

● जिस प्रकार का लखन मैं अब तक करते आया हूँ उसी प्रकार का लेखन करने की कूवत मुझम अब भी है। लेकिन मर आज तक के लखन म से जा श्रष्ठ है, उससे बढकर लिखने की कूवत मुझम अब नहीं है। इसी कारण स 1965 म मैंन अपना लघु निबध लेखन स्थगित किया था और 1980 से कविता लिखना स्थगित कर दिया है। सृजन की शक्ति चुक गयी है ऐसा नहीं बल्कि आत्मोलघन की कूवत खत्म हो गया है। मेरा अपने पहले के लेखन का ही नये नये आवरणा को प्रस्तुत करने और अपने लेखन की मात्रा का बढाने की बिलकुल इच्छा नहीं है। मरे हाथा लिखी गयी पिछली श्रेष्ठ कृतियो और अपने वाचको का इतना सम्मान करना ता मरा कर्तव्य है।

(अनुवाद सजीव चादारकर)

अपनी रची हुई भाषा बहुत मोहक लगती है।

(रघुवीर सहाय से महावीर अग्रवाल की बातचीत)

(यह हमारे लिए सुखद था कि जिन दिनों 'उद्भावना' कविताक की तैयारियाँ चल रही थीं, हमें लघु पत्रिका 'सापेक्ष' के सपादक श्री महावीर अग्रवाल के सौजन्य से स्व रघुवीर सहाय का एक महत्वपूर्ण और अब तक अप्रकाशित साक्षात्कार उपलब्ध हुआ। यह साक्षात्कार कुछ वर्ष पहले लिया गया था। श्री महावीर अग्रवाल ने अपनी बातचीत में रघुवीर सहाय के सामने कई बुनियादी प्रश्न रखे थे। इस साक्षात्कार के लिए हम श्री महावीर अग्रवाल के आभारी हैं। - सपादक)।

रघुवीर सहाय मुझसे कभी भी लपककर नहीं मिले। बातचीत करने का अवसर जब भी आता एक सौजन्य और गहरी गम्भीरता मे मरघट जैसी शाति के बीच खिसियाहट और उपेक्षा जैसा एक स्थायी भाव हमारी अनेक मुलाकातों मे रहा। 'भारत भवन' द्वारा आयोजित एशिया कविता समारोह' (19 से 22 मार्च 88) मे सम्मिलित होने वे भोपाल आए। मैंने उनसे कहा सापेक्ष' के सारे अक आपको नि शुल्क भेजे हैं। न आपने पत्र लिखा और कविताए भी नहीं भेजीं। यदि इन्टरव्यू नहीं देना चाहते है तो सीधे-सीधे मना कर दीजिए। वे कुछ देर मौन रहे। शायद मेरी बात से उन्हे ठेस लगी। उन्होने कहा '' 'सापेक्ष के लोक सस्कृति विशेषाक मे आपके श्रम और सम्पादकीय दृष्टि ने एक ऐसा इतिहास बनाया है जो आने वाली सदी मे भी याद रखा जाएगा।'' मे प्रसन्न हो गया। मई '88 मे ही मैं दिल्ली गया। सयोगवश उनसे भेट हो गई। जनवादी लेखक सघ के आयोजन के बाद कहानी और कहानीकार भारत भवन मार्क्सवाद और पुरस्कार आदि अनेक बिदुओ पर बातचीत होती रही। मानव अस्मिता वैश्विक स्थितियाँ और समाज मे वैषम्य के प्रति उनकी सवेदना को जानने और समझने का वैसा सुयोग फिर नहीं बना। ~महावीर अग्रवाल

*

महावीर अग्रवाल कविता लिखना आपने कब से शुरू किया? यदि स्मरण हो तो यह भी बताइए कि, आपकी पहली कविता का विषय क्या था? साथ ही यह भी बताइए कि आपकी पहली कविता किस पत्रिका मे और कब छपी थी?

रघुवीर सहाय बच्चन जी को हम मच पर सुनते थे। उनकी पुस्तक भी पढते थे। कुछ-कुछ उसी तर्ज पर लिखने की कोशिश करते थे। यह 1946 की बात है। मैथिली शरण गुप्त की कविताएँ हमने स्कूल

म पढीं। रामकुमार वर्मा की एक पक्ति 'मैं तुम्हारी मौन करुणा का सहारा चाहता हूँ' की नकल करते हुए इसी भावभूमि पर पहला कविता 'कामना' 17 अक्टूबर '46 का लिखी। इसा क्रम म 'आजकल के जुलाई-अगस्त '47 क अक मे 'आदिम सगीत' नाम से पहली कविता छपी। वह जल रही है ज्योति' कुछ इस तरह का भाव उसम था। गाधी जी की हत्या पर 1948 मे एक कविता लिखी। इसके बाद 1948 म ही 'प्रताक' द्वैमासिक क सपादक अज्ञेय जी का अपनी कविताएँ भर्जी। उसके पावस अक म 'सायकाल' नाम से वह कविता छपी और सराही गई। कविता लिखने का सिलसिला आगे बढने लगा।

❑ *आप कविता क्यो लिखते हैं?*

● कविता मुझ जीवन क साथ जावन के उद्देश्य क साथ जाडती है। कविता जीवन का अभिव्यक्ति का माध्यम है। ससार को समझने की दृष्टि देती है। बेहतर इसान बनाने मे मदद करती है। कविता क माध्यम से मैं स्वय से बातचीत करता हू। अपने समकालीना से बात करता हू। अपने समाज की बात करता हू। मैं यह मानता हू कि राटी की तुलना म कविता का महत्व कम नहीं है। पट क लिए रोटी दमन व शोषण के विरुद्ध कविता दोनो ही जीवन का जरूरी सत्य है। कविता नए जीवन की खाज करता हुई आगे बढती है आगे बढाती है। मनुष्य को सवेदनात्मक स्तर पर विचलित करने की क्षमता कविता म होती है। ऐसे अनेक कारण हैं जो मुझे कविता लिखने के लिए बाध्य करते हैं।

❑ *आप अपनी रचना प्रक्रिया के विषय मे कुछ बताइए।*

● रचना एक अनबूझी प्रक्रिया है। अपनी रचना प्रक्रिया को हूबहू अभिव्यक्त करना कठिन है। लिखने से पहले विषय वस्तु के साथ भीतरी तादात्म्य बनाते हुए कथ्य की गहराई तक भीगना पडता है। एक कविता जब बार-बार लिखता हू तो उसके अनेक ड्राफ्ट बनते हैं। काट-छाट होती है और कुछ नई बात भी जुडती हैं। 'सार सार को गहि लिए थोथा देहि उडाय' क अनुरूप अनावश्यक पक्तियाँ और अनावश्यक शब्द हटते जाते हैं। एक मुकम्मल कविता बनने लगती है। कहानी या कविता का अकुर भीतरी मन मे कब अकुरित हा जाता है हम ज्ञात ही नहीं हाता। कविता का तत्व अस्पष्ट रहता है। जब तक वह शब्दो म आकार नहीं लेता कुछ कहना कठिन रहता है। सर्जनात्मक क्षण का विस्फोट अचानक होता है लेकिन इसके पीछे समूचे जीवन को अनुभव सम्पदा और उसकी सोच होती है। कवि वातावरण और अनुभव ससार को अनेक सूत्रो से सम्पृक्त और सम्बद्ध करता है उसक बाद ही कलम उठाता है।

❑ *वस्तु और शिल्प म आप किसे प्रमुखता देते हैं और क्यो?*

● कला और साहित्य की सरचना मे दोना ही प्रमुख हैं। यथार्थ और विषयवस्तु को भूमिका को लिखना भी एक कलात्मक अनुभव है। कविता तथ्यो और सूचनाओ का जखीरा नहीं है। शिल्प की भी अपनी कोई सत्ता नहीं है इसके बाद भी शिल्प एक बहुत बडा ताकत है। मानवीयता का पहचान सामाजिकता का समझ क साथ रचनाकार सगीत नृत्य चित्रकला का भी प्रयाग करता है और शिल्प बनता है। सौंदर्य और कलानुभूति का सिलसिला लेखक की अस्मिता बनाता है। रचनाकार के भीतर कथ्य का रचनाकार दबाव निरन्तर जारी रहता है जो कलात्मक दृष्टि स सौंदर्य का आधार पाकर रचना का आकार लेता है।

□ *कविता म बिम्ब, प्रताक और मिथका का उपयोग किस तरह हो?*

● हम अपनी बात जब कलात्मक अनुभव द्वारा कहते हैं तो हमारा परिवेश हमारी सोच हमारा अनुभव समार रचना म कभी-कभी बिम्ब प्रतीक और मिथक क साथ उतरता है। एक समय एसा आता है कि नाम भा प्रताक और मिथक म बदल जात हैं। मिथक म अतात के माध्यम से हम वर्तमान और भविष्य के सकत देत हैं। प्रतीक हम उसे मानते हैं जिसका महत्व मामाजिक जीवन म स्वीकृति पा चुका हा। कविता म प्रताक बिम्ब और मिथक का प्रयाग करना मुझे उचित प्रतीत नहीं हाता।

□ *कविता की भाषा को लेकर अक्सर प्रश्न खड़ा किया जाता है। आप बताइए कि कविता की भाषा कैसी होनी चाहिए।*

● अपना रचा हुई भाषा रचनाकार को बहुत माहक लगती है। भाषा कभी भी एक रूप नहीं हाती बदलती रहती है। भाषा कवल शब्द का खल नहीं है अच्छी भाषा एक लम्बी साधना द्वारा आकार ग्रहण करता है। छन्द का ज्ञान कवि क लिए बहुत जरूरी है। छन्द और सगीत का गहरा सम्बन्ध है। सच्ची और समृद्ध भाषा का निर्माण सगीत और नृत्य की भाषा के साथ हाता है। भाषा का सामर्थ्यबोध उसम रचा-बसा सवेदनशालता द्वारा दिखाई पडता है। कविता म सरोकारा को जागरूकता की दुनिया बहुत बडी है यदि हम भाषा को सकुचित न कर खुली रहने दे ता कविता की भाषा और अधिक समृद्ध हागा।

□ *पाठक वर्ग की आम शिकायत है कि, कविताएँ दिन-ब दिन दुरूह हाती जा रहा हैं इसलिए लोग कविताआ से नहीं जुड पा रहे हैं। इस पर आपके क्या विचार हैं?*

● सवाल यह है कि कौन से पाठक यह शिकायत कर रहे हैं। चेतना क स्तर पर अध्ययन के स्तर पर हर व्यक्ति का अपनी सामाएँ होती हैं। इसके बाद भी यह सही है कि आम आदमी से कविता दूर होती गई है। इसका एक कारण तो यह है कि कवियों ने अपने भावबोध और शिल्प मे विकास किया। दूसरा कारण आम आदमी स जुडने की अथवा अपनी बात अपनी कविता का शिल्प उसको समझाने की जरूरत ही नहीं समझी। एक आर मुक्तिबोध बहुत बडे और समर्थ कवि हैं पर आम आदमी यह कैसे समझ पाएगा। दूसरी ओर नागार्जुन का कविताओ म जो अभिधात्मक पक्ष है वह आम जनता तक पहुचता है। हमारी कविता म सीधे और भोगे हुए यथार्थ का कमी है। समाज से जीवत सम्पर्क आम जनता के सुख-दुख म सम्मिलित होना छूटता जा रहा है। अनुभव म समग्रता का भावबोध जरूरी है। पाठक वर्ग को भी निरन्तर कविता पढते हुए उस पर बहस करत हुए अपनी समझ का विकास करना चाहिए।

□ *लेखन एक सामाजिक दायित्व है। अत आप बताइए कि लेखक का क्या कुछ भी निजी नहीं रह जाता?*

● रचना लिखना एक सामाजिक प्रक्रिया हे। रचनाकार को मैं एक सजग और जिम्मेदार नागरिक मानता हू। दिशाहीनता और भविष्यहीनता ने नइ पाढी म भटकाव और दुविधा को जन्म दिया है। लाकतात्रिक ओर मानवीय आधार पर उसे सम्बल चाहिए। समाज का एक ईकाई के रूप म एक व्यक्ति के रूप म एक लखक के रूप मे एक बेहतर समाज बनान का दिशा म हम सोचत है। मुक्तिबोध

रघुवीर सहाय

1929 म 9 दिसम्बर को लखनऊ मे जन्म। अग्रेजी साहित्य मे एम ए (1951)। दैनिक 'नवजीवन' मे उपसपादक-सास्कृतिक सवाददाता (1949-51)। 'प्रतीक' (दिल्ली) के सहायक सपादक (1951-52)। आकाशवाणी के समाचार विभाग मे उपसपादक (1953-57)। 'कल्पना' (हैदराबाद) मे (1957-58)। आकाशवाणी (दिल्ली) मे विशेष सवाददाता (1959-63)। 'नवभारत टाइम्स' (दिल्ली) मे विशेष सवाददाता (1963-68)। समाचार-सपादक 'दिनमान' (1968-69)। प्रधान सपादक 'दिनमान' (1969-82)। 1982 से 1990 तक स्वतत्र लखन। 1990 मे 30 दिसम्बर को निधन।

कृतियाँ *(कविता) दूसरा सप्तक (1951), सीढियो पर धूप म (1960) आत्महत्या क विरुद्ध (1967) हँसो हँसो जल्दी हँसो (1975), लोग भूल गए हैं (1982 इसी पुस्तक पर साहित्य अकादमी पुरस्कार), कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ (1989) एक समय था (1995)।*

कहानी *सीढियो पर धूप मे (1960) रास्ता इधर से है (1972) जो जो आदमी हम बना रहे हैं (1982)*

निबध *दिल्ली मेरा परदेश (1976) लिखने का कारण (1978) ऊबे हुए सुखी वे और नहीं होंगे जो मारे जाएँगे, भँवर लहरे और तरग (1983) अर्थात् (1994) इनके अलावा दर्जनो अनुवाद।*

कहते है 'जो है उससे बेहतर चाहिए'। काव्य अनुभव म वैयक्तिकता और सार्वभौमिकता दोनो होती है। कविता कवि को निजी रूप म बेहतर इन्सान बनाती है। यदि नहीं तो कविता मे कहीं न कहीं खोट है। मैंने यह बात कई बार कही है वह रचना जो पाठक या श्रोता के मन मे पतन का विकल्प जागृत नहीं करती न तो साहित्य की उपलब्धि होती है और न समाज की। कवि का दायित्व है कि वह समाज को समझे। अपने कार्य क्षेत्र का विस्तार करे। कवल लिखने तक ही सीमित न रहे।

❑ ***कवि के अदर व्यक्ति और समाज के हितो के बीच का द्वद्व क्या किसी सार्थक लेखन की भूमिका बनाता है?***

● कलम का सास्कृतिक अवदान समाज म रचनात्मक मूल्यो की खोज है। अन्याय व अत्याचार देखकर छटपटाहट होती है। आक्रोश जन्म लेता है- इस तरह लखक अपने प्रामाणिक अनुभव को अपने सघर्षो क साथ ही समाज मे घट रही घटनाओ को अपने लेखन का विषय बनाता है। साहित्य देश काल का प्रतिनिधित्व भी आगे करता है। समाज की जो सश्लिष्ट बनावट है उसम कद्रीयकरण का निषेध है। व्यक्ति और समाज के हितो के बीच द्वद्व नहा होना चाहिए तभी सार्थक लेखन के लिए रचनात्मक उर्जा सही दिशा मे प्रस्फुटित होगी।[1]

❑ ***लेखन क कारण आपको व्यक्तिगत जीवन मे कभी किसी सघर्ष का सामना करना पडा? कोई अविस्मरणीय घटना।***

● संघर्ष की बात लेखन के कारण नहीं रहा हैं। दो घटनाएं जरूर हैं। कृष्णनारायण कक्कड़ कुंवर नारायण और डा देवराज मिलकर 'युग चेतना' निकाल रहे थे। मुझे इसका दिल्ली प्रतिनिधि बनाया गया। 1957 में मेरी एक कविता 'हमारी हिन्दी' इसमें छापी गई। उसी समय 'सरस्वती' के सम्पादक श्री नारायण चतुर्वेदी ने मेरे विरुद्ध एक लेख लिखा। विद्यानिवास मिश्र ने सरकारी खरीद की 400 प्रतियाँ खरीदने के लिए मना कर दिया। इसके तत्काल बाद 'कल्पना' के सम्पादक बद्रीविशाल पित्ती ने मुझे हैदराबाद बुला लिया। 1982 मे मुझे *'दिनमान'* के सम्पादक से हटाकर *'नवभारत टाइम्स'* मे सहायक सम्पादक के रूप मे काम करने का आदेश मिला और मैंने कुछ समय तक किया। इतने वर्षों के सम्बन्धों को लडकर और अधिक कटु नहीं बनाना चाहता था इसलिए मैंने त्यागपत्र दे दिया।

☐ *क्या, रचनाकार के लिए वैचारिक प्रतिबद्धता का होना आप जरूरी मानते हैं। यदि हां तो क्या? यदि नहीं तो क्या?*

● वैचारिक प्रतिबद्धता जरूरी है बशर्ते वह स्वार्थ व फैशन के रूप मे ग्रहण न की गई हो। वैचारिक प्रतिबद्धता का अर्थ वामपंथी राजनीति नहीं है। जिस कविता का आम आदमी की दुनिया से सम्बन्ध है वह राजनैतिक कविता है। यह जरूरी नहीं है कि कविता लिखने वाला कवि विचारों से वामपंथी हो हो। प्रगतिशीलता और जनवाद का नारा जो अधिक लगाते हैं वे ही उनसे अधिक दूर रहते हैं। सगठित राजनीति से कविता अलग होती है। अन्याय के प्रतिकार के लिए उबलना और लिखना एक बराबरी के समाज का विचार रखना और वैसा ही आचरण करना सही वैचारिक प्रतिबद्धता है।

☐ *वर्तमान मे क्या लेखन के द्वारा सामाजार्थिक बदलाव सभव है?*

● रूढिग्रस्त जीवन पद्धति जब टूटती है तो सामाजिक और आर्थिक बदलाव धीरे-धीरे प्रारम्भ हो जाता है। रचना अक्सर बुराइयों के विरोध मे खडी होती है। महावीर जी कविता की अपनी शक्ति होती है पर कविता लिखने से ही बदलाव नहीं आ जाएगा। बदलाव, परिवर्तन या क्रांति अकेले का काम नहीं है। समाज की दूसरी शक्तियाँ भी मिलकर काम करती हैं। अपनी साहित्य साधना के आधार पर मैं इतना कह सकता हू। अब सुसंगठित नैतिक और राजनैतिक चेतना का विकास लेखन द्वारा ही सभव होगा। साहित्य एक मात्र साधन नहीं है जिससे बदलाव लाया जा सके। यह एक लम्बी और सामूहिक लडाई है।

☐ *आप किस कवि से अधिक प्रभावित हैं, या रहे हैं? उनकी कुछ उल्लेखनीय रचनाएँ, जिनसे आपके लेखन को गति या दिशा मिली?*

● किसी न किसी रूप मे सभी रचनाकारों के रचनात्मक तत्व के जो महत्वपूर्ण अंश हैं उसने प्रभावित किया है। यशपाल और उनका 'विप्लव' मुझे चुम्बक की तरह खींचता रहा है। प्रेमचंद के विराट कथा संसार ने अपनी छाप छोडी। आजादी के आंदोलन मे साहित्यकार लिखते ही नहीं थे-सडक पर भी जनता के साथ रहते थे। एक सीमा तक कथनी और करनी मे साम्य था। अमृतलाल नागर श्री नारायण चतुर्वेदी भगवतीचरण वर्मा सुमित्रानंदन पंत, हरिवंश राय बच्चन गिरिजा कुमार माथुर और राजकमल चौधरी की कलम का मैं बहुत सम्मान करता हू। वैचारिक मतभेद के बाद भी अज्ञेय जी से बहुत प्रेरणा मिली। निराला मुक्तिबोध और शमशेर के प्रति बहुत आकर्षण रहा है। इन सबको सुनने और सबसे भेंट करने का अवसर पाया है। त्रिलोचन और नागार्जुन के सामने नैतिक और

राजनैतिक उद्देश्य रहे हैं। स्वतत्रता आदोलन के साथ-साथ कल्पना की प्रखरता का कैनवास विराट होता गया। यही कारण है कि इनका लिखा साहित्य बहुत जीवत और स्मरणीय है।

❑ *कविता भी एक यात्रा है। आप अपने समकालीना म किन कवियो को अपना एक सहयात्री पाते हैं? अपनी पसद की कुछ कविताआ और उनके कवियो क बारे मे बताइए।*

● कविता यात्रा म मरे समकालीन शमशेर जी के साथ मगलेश डबराल भी हैं। धूमिल का अनुभव ससार और भाषा समृद्ध है। कुवर नारायण सर्वेश्वर दयाल सक्सेना बिजेन्द्र विनोद कुमार शुक्ल लीलाधर जगूडी और कुमार विकल मे काव्य अनुभव की समझ और पकड बहुत सूक्ष्म है। राजेश जोशी गोरख पाण्डेय सोमदत्त ऋतुराज प्रयाग शुक्ल अशोक वाजपेई चन्द्रकात देवताले अरुण कमल और आलोक धन्वा की कविताआ म अनुभव का विस्तार है। हिन्दी कविता का यह महत्वपूर्ण दौर है। नई-नई अनुभूतियो का नई-नई ध्वनिया का इन्द्रधनुषी रगो और सवेदनाओ का एक समूचा ससार हमारे सामने है। इसके बाद की पीढी का सर्जनात्मक अवदान और अधिक मूल्यवान है। खुशी की बात यह है कि दूरदराज के क्षेत्रा म भी इस दौर मे बहुत अच्छी कविता लिखी जा रही है।

❑ *कविता के विकास और सार्थक फैलाव मे रेडियो, दूरदर्शन और कवि सम्मेलना पर आपके क्या विचार हैं?*

● दूरदर्शन ने सामाजिक रिश्तो को तेजी से बदला है। घर की चारदीवारी म परिवार कैद होता जा रहा है। मेले पिकनिक तीज-त्यौहार विवाह और अन्य सामाजिक सस्कारो क लिए समय बहुत कम रह गया है। यह रचनाकार को भी इस मायने म आत्मकद्रित बनाता है कि साहित्यकार बात तो समाज की करता है लेकिन समाज से कटा हुआ है। दूसरो के सुख-दुख मे हिस्सेदारी कम हो गई है। दूरदर्शन सत्ता द्वारा इस्तेमाल किया जाता है तो कविता का सार्थक फैलाव अब इसके द्वारा सभव नहीं दीख पडता। हरिवशराय बच्चन महादेवी वर्मा दिनकर और शिवमगल सिह 'सुमन' को कवि सम्मेलनो म मैंने सुना है। अब तो कवि सम्मेलनो को बहुत घटिया फूहड और स्तरहीन बना दिया गया है। इसके बाद भी मैं अपनी कविता पढकर सुनाना चाहता हू। मैंने अनेक मित्रा को पुस्तको क बदले अपनी कविता का टेप भेट मे दिया है।

❑ *कविता पोस्टर्स को आप किस रूप मे देखते हैं? क्या कविता को लोकप्रिय बनाने और चेतना क विकास मे इनकी कोई सार्थक भूमिका बन सकती है?*

● समाज का जैसा परिवेश है मीडिया का जैसा दबाव है पारिवारिक और सामाजिक रिश्ते जिस तरह सिकुड रहे हैं भागमभाग का जो माहोल है इन सबके बीच चेतना क विकास की दृष्टि से 'कविता पोस्टर्स' एक प्रभावी माध्यम हा सकता है। कविता पोस्टर्स मे उन्मेष और आवेग तो होता ही है हमारी आकाक्षा भी नए रूप मे प्रतिबिम्बित हाती है। कवि की अनुभूति को भावना और विचार को कविता पोस्टर बहुत अच्छी तरह प्रस्तुत करते हैं। नुक्कडा पर कविता पाठ करते हुए, जगह-जगह कविता पोस्टर लगाकर यह काम हम निरन्तर कर ता जनता से आत्मीय सवाद बनने म अधिक समय नहीं लगगा।

❑ *कविता के अलावे आप और किस विधा मे लिखते हैं? क्या अन्य विधा मे लेखन करने का*

कोई कारण है?

● आप तो जानते ही हैं। निबंध और कहानियों की जो पुस्तक हैं उनके नाम लिख लीजिए। कई बार लिखते समय मन म दुविधा रहती है कि यह जा बात दिमाग मे उभर रही है इसे अब कविता मे लिखगे। विचार बदलता भी था इससे कहानी अच्छी बन पडगा। निबंध की विधा भी मुझे बहुत आकर्षित करती रही हैं। पत्रकारिता से जुडे रहने के कारण भी 'दिल्ली की डायरी' और सम्पादकीय लिखे है। होता यह है कि ढलान पर बहता हुआ पानी अवरोधो के बाद भी अपनी राह स्वय बना लेता है। उसी तरह कथ्य जब मस्तिष्क म उभरता है कविता या कहानी लिखने का रास्ता बिना किसी अवरोध के सहजतापूर्वक बनाता जाता है।

❑ *और अंत म कविता की आलोचना और उसके आलोचको के विषय मे आपकी क्या राय है ?*

● आलोचना एक पुनर्मूल्याकन है। आलोचक अपनी बात अनेक बिंदुओ म कहते हैं। आप एक या दो बिंदु पर भी आलोचक से सहमत होते हैं तो यह आलोचना, रचना और पाठक के बीच सेतु का काम कर सकता है। आलोचना के माध्यम से साहित्य बार-बार कसौटी पर कसा जा रहा है। दूसर शब्दो म आलोचना एक सिंहावलोकन है। वह रचनाकार को आत्मलोचन का अवसर प्रदान करती है। हर व्यक्ति की एक सीमा होती है उसी तरह आलोचना की भी सीमाए हैं। शिकायत यह है कि आलोचक अपने आपको पूरी तरह तैयार नहीं करते। साधना और परिश्रम से जी चुराते हैं। तैयारी के बिना वे रचना के साथ न्याय नहीं कर पाते और रचना के साथ उनका सम्बन्ध आत्मीय नहीं बन पाता। कुल मिलाकर आलोचना की भूमिका अच्छी नहीं है।

कविता के स्थायी सरोकार कम बदलते हैं।

(वरिष्ठ कवि कुवरनारायण से विजय कुमार की बातचीत)

हिन्दी कविता के मौजूदा परिदृश्य म वरिष्ठ कवि कुवरनारायण का एक नितान्त अलग तरह का उपस्थिति है– तमाम तरह के अर्थहीन शार गुल से दूर मितभाषा गहन वचारिकता मे पगे एक आत्म सजग कवि का उपस्थिति। अपनी चार दशक की काव्य यात्रा मे कुवरनारायण ने इतिहास की विडम्बनाओ और मनुष्य की नियति का सामना किया हे पर वे सोच का बना बनायी रूढियो ओर आसान मुहावरा से बचे हैं। इस कविता मे देश समाज और समकालान का भडकीला चमक नहीं एक आन्तरिक दाप्ति है एक विकल मन हे और एक क्लैसिक अनुशासन। अपनी कविता के बारे मे कुवरनारायण ने एक जगह कहा ह कि "कविता मरे लिए केवल एक अनुभव या भाव की अभिव्यक्ति मात्र नहीं वह ज्यादा फले ओर ज्यादा गहरे 'भाषाई जगह' (लिग्विस्टिक स्पेस) का रचना या खोज भा है।" दरअसल कुवरनारायण जा का कविता हवा का तरह है इसमे सच्चाइयाँ हैं तनाव है अलग-अलग तापमान है पर इसकी मुख्य विशेषता इसम दिखती हुई पारदर्शिता है।

कुवरनारायण जी से यह बातचात आमने सामने बैठ कर हा होना था पर अनेक कारणो से हो नहीं पाया। दो बार दिल्ला जाना हुआ पर बातचीत का सुयोग बैठ नहीं पाया। फिर लिखित प्रश्न उन्ह भेजे गये। इस वजह से इस बातचात म एक अनावश्यक ओपचारिकता भा हे जिसे पूरी तरह समाप्त कर देना सम्भव नहा था। सामने बेठकर हुई बातचात मे शायद जवाबा मे से कुछ ओर नये सवाल उभरते। खैर किसी भा कवि से बातचीत मे उसका कविता के जादू के बारे मे अतिम रूप से कभा पता नहीं चलता पता चलना भी नहीं चाहिए।

विजय कुमार *आप अपने बाल्यकाल के अनुभवो क बारे म, अपने कवि मन पर पडे शुरूआती प्रभावा और निर्णायक प्रसगो के बारे मे कुछ बताये?*

कुवरनारायण एक इटरव्यू मे तो कुछ ही बातो का जिक्र किया जा सकता है– उन सभी का नहीं जो आपक प्रश्न स निकलती हैं। बचपन के कुछ अनुभव ता हमशा याद रह जाते हैं कुछ हमारे अन्तर्मन म गहरे डूब जाते ह हम लगता है हम उन्ह बिल्कुल भूल गए पर एसा होता नहीं। जब भा हमारे अन्तर्मन पर किन्हीं कारणा से असामान्य दवाव पडता ह जैस लिखत समय या किन्हीं अन्य विषय परिस्थितिया का तब ये विलुप्त अनुभव भा अनायास चेतन म तैर आते हैं और हमार चिन्तन आर व्यवहार

म सक्रिय हो जाते हैं।

आज म पचास साठ साल पहले के लखनऊ और अपने पारिवारिक जीवन से जुडी दो-एक बातो की चर्चा करूँगा जिनका मेरे साहित्यिक जीवन म थोडा महत्व है। स्वतत्रता आन्दोलन के दौरान चौथे पाँचवे और छठवे दशको में- लखनऊ वाला हम लोगो का घर देश क नेताओ की सरगर्मी का एक छोटा-मोटा अड्डा-सा ही बन गया था। ऐसा शायद ही उस समय का कोई बडा या छोटा नेता हो जिसकी आये दिन घर पर मेहमानदारी न होती रही हो। सन् '42 मे जब पडित नेहरू तथा अन्य नेताओ की गिरफ्तारी हुई तब ' नशनल्ड हेराल्ड' अखबार का कार्यभार मेरे बडे चाचा को सौंपा गया। आन्दोलन स चाचा का सीधे न जुडा होना फिर भी अन्दर से लगभग सभी बडे नेताओ का विश्वासपात्र होना उन्हे जिम्मेदारी क लिए खासतौर पर उपयुक्त ठहराता था।

लेकिन जिन परोक्ष अनुभवो को मैं अपने लिए ज्यादा महत्वपूर्ण मानता हूँ वह ऐसे अनेक नेताओं को निकट स जानने का अवसर था जिनका आग चल कर देश के भविष्य पर निर्णायक असर पडा। उनके आपसी मतभेद उस समय भी कम प्रखर न थे। आचार्य नरेन्द्र देव के विरुद्ध अयोध्या-फैजाबाद म लड गए दो चुनावो का अनुभव आँख खोल देने वाला था। जिस तरह उन्हे अनीश्वरवादी प्रचारित करके एक साधारण से बाबा को जिताया गया वह राजनीति के सबक में मानो मेरा पहला मोहभग था और धर्म की विकृत राजनीति स वह पहला परिचय जिसने आज धर्म और जाति के नाम पर भारतीय समाज का विशृखल कर दिया है। उन दिनो घर पर पडित गोविन्द वल्लभ पन्त और उस समय यू पी क मुख्यमत्री श्री चन्द्रभानु गुप्त का भी आना-जाना था जिनकी इस चुनाव म प्रमुख भूमिका थी। एक बार इस चुनाव के नतीजे पर मैंन श्री गुप्त से पूछने की धृष्टता की थी कि क्या यह सब उचित था? जिस पर उनका दो टूक जवाब था कि 'प्रेम और युद्ध म सब चलता है।' मैंने दबी जबान से कहा था "आशा है आगे चलकर राजनीति म प्रेम और युद्ध के बीच फर्क समाप्त न हो जायेगा?' इस बात को आज गहरी तकलीफ से महसूस करता हूँ कि 'सब चलता है' की राजनीति आज एक ऐसी जगह खडी हो गयी है जो औचित्य का नहीं, खुल्लमखुल्ला स्वार्थ की राजनीति भर बची है।

इस तरह के अनुभवो क बावजूद मेरी साहित्यिक मान्यताओं पर उन नैतिक आदर्शों और चारित्रिक दृढता का ज्यादा स्थायी और गहरा असर पडा जिसके गाधी जी प्रतीक थे। उस सचाई की ताकत को सोचता हूँ जो इतनी बडी साम्राज्यशाही के खिलाफ देश को सगठित और एकजुट रख सकी तो आज के राजनीति की आत्मघाती अदूरदर्शिता स लगता है मानो उसने एकता और चारित्रिक गरिमा के अर्थों को ही रौंद डाला है।

उन्हीं दिनों जिन विशिष्ट व्यक्तियो के निकट सम्पर्क मे आने का मुझे मौका मिला उनमें मुख्य रूप स आचार्य नरेन्द्रदेव आचार्य कृपलानी और डा राम मनोहर लोहिया क प्रति विशेष रूप से ऋणी अनुभव करता हूँ। उस समय भी उनकी राजनीति का मुझ पर अधिक प्रभाव न पड कर उनके विद्वता पक्ष न ही अधिक आकृष्ट किया। 1944-45 मे एक वर्ष तक नरेन्द्रदेव जी के साथ बम्बई मे रहना मानो मेरी शिक्षा में उस उदार दृष्टिकोण का जुडना था जिसमे अगर एक छोर पर समाजवाद तो दूसरे पर बौद्ध धर्म दर्शन के लिए भी पर्याप्त जगह थी। 1951 मे मैंने और मेरे साथ ही रघुवीर सहाय न भी लखनऊ विश्वविद्यालय स अग्रजी म एम ए किया। इसक बाद ही एक साल मैं आचार्य कृपलानी क साथ दिल्ली मे रहा। उन दिनो वे अग्रजी का 'विजिल' अखबार निकालते थे काग्रेस स अलग

हो चुके थे और नहरू जी की नातिया के प्रखर आलाचक हाते हुए भी व्यक्तिगत स्तर पर दोना के बीच कटुता कभी नहीं आन पायी। सुचता जी काग्रेस म ही रहीं और इस बात को लेकर भी पारिवारिक मुलाकातो म अकसर विनोदी वातावरण बन जाता था। कृपलानी जी म अद्भुत तक-क्षमता थी जिसको सभा धाक मानते थे। मर कवि-व्यक्तित्व के निर्माण मे इन दोना आचार्यो की महत्वपूर्ण भूमिका रही है, अन्यथा शायद परिवार के विशुद्ध व्यावसायिक वातावरण से बाहर निकल पाना मर लिए मुश्किल हाता।

बचपन म ही, परिवार म दो वर्षो के अन्दर ही क्षय-रोग से कई मौता का होना एक बहुत बडा हादसा था। पहले माँ और फिर असमय युवावस्था मे बडी बहन जिनसे मेरा गहरा लगाव था और जिनम साहित्य के प्रति सच्चा अनुराग था का निधन मेरे जीवन मे एक बडे परिवर्तन का कारण बने।

❑ *कवि क रूप म आपकी जीवन दृष्टि मुख्यतया किन बातो से प्रभावित होता रही है? पाँच दशक के अपने कविता कर्म में अपनी वैचारिक यात्रा के बार मे कुछ बताय?*

● इस सदी में विज्ञान की शब्दावली और चिन्तन-पद्धति का हमार सोच विचार के सभी क्षेत्रा पर गहरा प्रभाव रहा है- कुछ कुछ उसी तरह जैसे मध्ययुगा म कभी धामिक शब्दावली छाई रही। लेकिन जीवन केवल एक भातिक तथ्य नहीं है न केवल भौतिक तथ्या को अध्ययन करने वाले आजारा स उसका पूरा अध्ययन ही किया जा सकता है। उसका सारतत्व चतना है जो शरीर को अनुप्राणित और सचत रखता है। उसका अध्ययन भाष्य और निरूपण वस्तु की तरह नहीं हो सकता न उसे वस्तु की तरह नियत्रित और व्यवस्थित ही किया जा सकता है। उसके लिए सर्वथा भिन्न उपाय और युक्तियाँ जरूरी हैं। वह अथाह ऊर्जा का स्रोत है- और किसी भी प्राकृतिक ऊर्जा की तरह अगर हम उस रचनात्मक दिशाओ म प्रवृत्त नहीं करा पाते ता वह या तो सुषुप्त पडी रहती है या फिर विध्वसक रूप भी ले सकती है- आणविक ऊर्जा की तरह। प्रकृति की तमाम शक्तियाँ आज मनुष्य के बस म हैं लेकिन क्या वह बुद्धि और विवक भा हमारे बस म है जो उनका सही इस्तमाल कर सके?

आज की अन्धाधुन्ध उत्पादन और उपभोक्ता प्रक्रिया का दख तो एक अजीब तरह के अपव्यय का एहसास होता है- जो उतना भयावह है जितना किसी भी ऊर्जा क सचित कोश का आकस्मिक विस्फोट। चीजा की बहुलता हमे मानवीय अर्थो मे समृद्ध बना रही या हमारे बीच दूरिया बढा रही इस सवाल की छानबीन हमे एक एसी जगह ला कर खडा करती है जिसका ताल्लुक गहरे आत्मपरीक्षण से है। जरूरत स बहुत कम हो या जरूरत से बहुत ज्यादा दोनो ही मनुष्य का विकृत करते हैं- अलग-अलग तरह। जब मैं आत्मपरीक्षण की बात करता हूँ तो मेरा मतलब उस विवक क परिष्कार से है जो जरूरी और गैर-जरूरी के बीच फर्क कर सके किसी नये या पुराने आध्यात्मवाद म गाता लगा जाने से नहीं है। पहली जरूरत है कि हमारे आपसी सबधा म उदारता और विश्वास बढे। इसक लिए अपने भीतर भी झाकते रहना जरूरी है। कोई नया बात नहीं कह रहा पर कभी कभी पुरानी सचाइया को भी दुहराते रहना जरूरी है ताकि वे भुला न दी जाय। अपने अन्दर देखना एक एसा सचाई स सामना है जिसके साथ हम प्रतिक्षण रहने को बाध्य हैं और जिसकी न तो हम अवहलना कर सकते हैं न जिसे धाखा द सकते हैं। मेरी कविताओं की एक विनम्र कोशिश रही है कि हमार सवदना को परिधि सकुचित न होने पाए।

☐ *एक समय था जब आप अपने कवि कर्म म मिथक क प्रति आकर्षित थे। आपने इतिहास को आधार बनाकर भी कविताएँ लिखीं, क्या अब आपको यह सब आवश्यक नहीं लगता?*

● यह सोचना ठीक नहीं कि 'मिथक' पुराने जमाना क किस्से कहानी भर हैं। उनके आदि-रूपों और आज के रूपो मे दिलचस्प समानता है। इस समानता की जड़ें मनुष्य क उन बुनियादी भयो, आशाओं निराशाओं आकाक्षाओ इच्छाओ आदि में हैं जो आज भी ज्यादा नहीं बदले हैं। मनुष्य केवल यथार्थ-जीवी नहीं स्वप्न-दृष्टा भी है। जीवित रहने क लिए उसे ऐसे सपना और आदर्शों का बल भी चाहिए जो उसे एक उद्देश्य द और निराशा से उस बचाय। ''आत्मघाती'' इस अर्थ में मृत्यु का निराशा क विरद्ध एक मिथक भी है और एक मनोवैज्ञानिक मोर्चा भी। मिथकों क प्राक्-रूपों म मनुष्य के जीवन और मृत्यु सबधी तमाम अनुभव सचित हैं- निजी भी और सामूहिक भी। उसी तरह क सबध है। रोज नये-नये मिथक बनते और टूटते हैं। उनक बीच उनके सरचना को आसानी से पहचान सकते हैं। जैसे प्रगति क मिथक म हम मनुष्य की एक बेहतर जीवन के लिए अदम्य आकाक्षा का परिलक्षित कर सकते है। इसी तरह रक्षक'-'सर्वशक्तिमान' या महाबली' (सवियर-बचानेवाले) मिथक को आज भी हम 'नायक' और 'लोकनायक' की विभिन्न छवियो मे सरलता से महसूस कर सकते हैं।

इसी सदी में मिथकों की सरचना और मिथकों की भाषा पर महत्वपूर्ण काम हुआ है। कार्ल युग क अध्ययनो और शोधो न मिथक की ओर दुनिया का ध्यान खींचा था और आज ''सामूहिक अन्तर्मन ' (कलेक्टिव अनकान्शस) तथा ''कविता म प्राक्रूपों क पैटर्न्स'' (आर्कीटाइपल पैटनस इन पोएट्री) जैसे पद हमारी सामान्य भाषा मे आ गये है। इसी क्षेत्र में लेवी-स्त्रोस तथा रोलां बार्थस के कामों को हम याद कर सकते है। इस तरह के अध्ययनो ने भी मुझे किसी हद तक नचिकेता क आख्यान की ओर आकृष्ट किया था। इस धारणा को भी बल मिला कि नये का मतलब पुरान का सर्वथा अस्वीकार नहीं पुराने क साथ नये तरह के सम्बन्धो की खोज भी जरूरी है- कविता में खास कर।

☐ *आपके बारे म कहा जाता है कि आप मूलत एक अन्तर्मुखी कवि हैं। परन्तु आपके पिछले कविता सग्रह तक आते आते हमने देखा कि आप बाहर की दुनिया की हलचलों के प्रति सीधे सीधे मुखातिब भी हैं। एक कवि क रूप मे क्या इसे आप अपनी सवेदन यात्रा मे आया कोई मूलगामी परिवर्तन मानते हैं?*

● अन्तर्मुखी' 'बहिर्मुखी' सापेक्ष पद है। कोई भी रचना न तो पूरी तरह अन्तर्मुखी होती है न ही पूरी तरह बहिर्मुखी। वह दोनो होती है- सश्लिष्ट- जैसे जीवन। इसीलिए समस्यामूलक भी। हम आसान पदो मे या अलग-अलग वर्गों में रखकर उसका सरलीकरण नहीं कर सकते। ऐसा करना उसकी प्रामाणिकता को झुठलाना है, लकिन जीवन म उनसे उनकी पूरी जटिलताओं अस्पष्टताओं और विरोधाभासो के साथ जूझना पडता है। रचनाकार की दिक्कत भी कुछ-कुछ उसी प्रकार की होती है।

समीक्षा मे (और ये मुख्यत समीक्षा के पद हैं) विश्लेषण और समझने की सुविधा के लिए हम ''अन्तर्मुखी ' या ''बहिर्मुखी' जैसे एकल पक्ष को प्रस्तावित कर लेते हैं- लेकिन जीवन को हम उस तरह नहीं जाते। जीना या जिए हुए पर लिखना जीवन से उसकी समग्रता और जटिलताओं

कुवरनारायण

जन्म 19 सितम्बर 1927। लखनऊ वि वि से अग्रजा साहित्य मे एम ए कविता के साथ चिन्तनपरक लख। कहानियाँ, साहित्य समाक्षा तथा अन्य कलाओ पर भी लिखते रहे हैं। अनेक अन्य भाषाओ के कवियो का हिन्दा म अनुवाद किया है। कविताओ और कहानिया के कई अनुवाद भारताय और विदेशा भाषाओ मे छपे हैं। आत्मजया का 1989 मे इतालवी अनुवाद रोम से प्रकाशित हुआ था। उत्तर प्रदेश सगात नाटक अकादमी के उपाध्यक्ष तथा भारतेन्दु नाट्य अकादमा के अध्यक्ष रह चुके है। कृतियो पर अब तक हिंदुस्तानी अकादमी पुरस्कार, प्रेमचद पुरस्कार तुलसी पुरस्कार, साहित्य अकादमा पुरस्कार, कुमारन व्यास पुरस्कार तथा सम्मान से सम्मानित हो चुके है।

कृतियाँ *(कविता) 'चक्रव्यूह' (1956) परिवेश हम तुम (1961)*
आत्मजया (प्रबधकाव्य) (1965) अपने सामने (1979)
कोई दूसरा (1993) अज्ञेय द्वारा सपादित 'तीसरा सप्तक' मे कविताएँ सकलित।

कहानी *आकारो के आस पास (1971)।*

अनुवाद *युनाना कवि कॉन्सटैन्टान कवाफी तथा लातीना अमराकी कवि खोरबे तुई बोर्सल की कविताआ के अनुवाद।*

म सीधा सामना है। कम से कम मैंने अपने जीने और लिखन के बीच एसे ही अन्तर्सम्बन्धो को अनुभव किया है। ऐसा न होता तो आप मेरे किन्हीं भी दो सक्लना के बीच वह फर्क न महसूस करते जिसकी आर आपन सकेत किया है। जीवन के साथ चलने का मतलब है उन परिवर्तनो के साथ भी उन समीकरणा का अनायास बनते चलना जो हमारे रहन–सहन साच–समझ मे बदलाव लाते रहते हैं। अत मेरे लिए "अन्तर्मुखी" या "बहिर्मुखी" जैसे पद रचना पर समीक्षा क आरापित पद हैं– उसकी प्रकृति से छानकर अलग निकाले हुए लक्षणपद।

☐ ***आपको अक्सर वैचारिक गहनता से युक्त क्लासिक टैम्परामेट का कवि भी कहा जाता है। कविता मे क्लासिक टैम्परामेंट की विशेषताआ क बारे म कुछ बताये। आज लिखी जा रही हिन्दी कविता म आपका क्लासिक रुझान के कुछ दूसरे कवि दिखाई दते हैं? यदि यह क्लासिकी रुझान कम हुआ है तो इसके क्या कारण हैं?***

● जब "क्लासिक" (या शास्त्रीय) को "रोमान्टिक" (या स्वच्छन्द) के खिलाफ रखकर साचा जाता है तो कई दिक्कत उठती हैं। दरअसल ये दोनो न तो वैकल्पिक पद हैं, न ही विरोधी ये दोनो दो अलग तरह के काव्यगुणो के द्यातक हैं और सापेक्ष पद है। कालान्तर मे अनेक तथाकथित "रामान्टिक 'कृतियाँ बाद म "क्लासिक" के रूप मे प्रतिष्ठित हुई– शेक्सपियर क नाटक इसका सबसे बडा उदाहरण हैं।

"क्लासिक" पद से जा विशेष काव्यगुण ध्वनित हाते है– जैसे सतुलन व्यवस्था परिमार्जन परिष्कार सरचनात्मक दृढता वगैरह– उसके पक्ष मे हूँ, परन्तु उस स्वच्छन्दता कल्पनाशीलता

के दबाव महसूस कर रह हैं?

● बाजार राजाश्रय वगैरह पहले भी थे, किन्तु आज उनका दबाव निश्चित रूप से बहुत ज्यादा विषम हुआ है। एक कवि के लिए आजीविका का प्रश्न हमेशा मुश्किल रहा है। वह कविता के लिए एक समर्पित जीवन जीना चाहता है, साथ ही आजीविका के लिए उसे एक ऐसे निर्मम यथार्थ के साथ समझौता करना पडता है जो उसके अन्दर भीषण द्वन्द्व पैदा कर सकता है– खासकर जब कविता के आदर्शों और आजीविका के साधना के बीच बहुत फासला हो जैसा इधर दिनोंदिन होता जा रहा है। साधारण सुविधाएँ जुटाने के लिए भी भीषण सघर्ष करना पडता है।

इस सबके बावजूद कविता के स्वभाव और स्वरूप म भी फर्क आया है यद्यपि कविता के वे स्थायी सरोकार कम बदलते हैं जिनकी जडे मनुष्य की भावनाओ और उसके जैविक उद्रेकों में होती है। स्थानीय हो या वैश्विक आदमी की निजी और आत्मीय दुनिया का विस्तार हुआ है जिसे हम किसी भी परिवेश और समय मे आसानी से पहचान सकते हैं और उसके साथ एकता अनुभव कर सकते हैं। इस औद्योगिक विकास का जो पहलू कुछ आश्वस्त करता है वह यह कि आज हमारी पहुच ससार के किसी भी साहित्य तक पहले से कहीं अधिक आसान हो गई है– जिससे कवि के सवेदनाओ की दुनिया ज्यादा विस्तृत और समृद्ध हुई है।

☐ *आज लिखी जा रही हिन्दी कविता मे युवा कवि अपनी 'पोएटिक पर्सनेलिटी' को लेकर किस तरह सजग नजर आता है आपको? क्या आप ऐसा मानते हैं कि आज के युवा कवियो के यहाँ भावबोध भाषिक सरचना और अभिव्यक्ति पैटर्न मे जबर्दस्त एकरसता है? यदि ऐसा है तो इसकी क्या वजह हो सकती हैं?*

● प्रत्यक्ष पर पक्की पकड जरूरी है। लेकिन विस्तृत और गहरे यथार्थ–बोध का अर्थ उतना ही नहीं। जीवन को अकसर हम केवल अपने ही अनुभवो तक कुछ इस तरह सीमित मान लेते हैं कि उसका विशदीकरण नहीं हो पाता। मनुष्य के बाहर और भीतर की दुनिया एक व्यक्ति के निजी अनुभवों से कहीं ज्यादा बडी होती है उसक उत्खनन और खोजबीन क साधनो का भी उपयोग कर सकने की क्षमता लेखक मे होनी चाहिए। प्रखर रचनात्मक प्रतिभा केवल अपने ही नहीं दूसरो के अनुभवो को भी आत्मसात् कर सकने मे समर्थ होती है तभी उसके अपने अनुभवो को भी वह व्यापकता गहराई और सम्पन्नता मिल पाती है जो श्रेष्ठ साहित्य का विशेष गुण माना गया है। एकरसता के पीछे अक्सर अनुभव की कमी या अप्रामाणिकता, उस हद तक जिम्मेदार नहीं होती जितनी उस पर गभीर चिन्तन और उसे मौलिक रचनात्मक अभिव्यक्ति दे सकने की। अपने अध्ययन और जानकारी की दुनिया को बडा रखना भी इसलिए जरूरी है। एक कवि की "पाएटिक पर्सनल्टी" मे उस विकसित सवेदनशीलता का प्राथमिक महत्त्व है जिसके बिना वह सबके सुख के साथ आत्मिक जुडाव महसूस नहीं कर पाएगा। प्राचीनो की शब्दावली मे कहूँ तो यदि साधारणीकरण अपूर्ण रह जाएगा तो रसानुभूति भी अधूरी या अपरिपक्व रह जाएगी।

☐ *क्या आप यह मानते हैं कि इधर लिखी जा रही हिन्दी कविता मे विषधर्मिता तो खूब विकसित हुई है पर शब्दो को लेकर यह कविता अधिक सपन्न नहीं है। उर्दू, बगला और मराठी का काव्य रसिक प्राय यह बात समकालीन हिन्दी कविता के बारे मे कहता है। आप इस बारे मे क्या सोचते हैं?*

● नाद-सम्पन्न कविता का भी अपना सामर्थ्य हो सकता है। नाद अलंकरण है जिसकी ज्यादती या दुहराव भी कविता का रवायती और वाञ्छित बना दे सकता है। छन्दों और अलंकारों की जकड़न से छूटने के लिए ही आधुनिक कविता मुक्त छन्द की ओर प्रेरित हुई। छन्द कविता के लिए अनिवार्य नहीं। *अक्षर-गणना पर आधारित संस्कृत के वर्णिक छन्द तो स्वभाव से ही मुक्त छन्दों की तरह हैं* फिर भी उनके श्लोकों और सुभाषितों में अद्भुत स्मरणीयता है। मात्रिक छन्दों में नपी तुली मात्राओं का बन्धन होता है। आज की कविता में मात्राओं का यह बन्धन शिथिल है लेकिन सर्वथा अनुपस्थित नहीं है- कभी लय तो कभी अर्न्तध्वनि तो कभी तुकों भीतरी तुकों, उनकी अनुगूंजों के आभास के रूप में कमोबेश मौजूद रहता है। कुछ समय पहले नयी कविता में अर्थ की लय की बात भी उठी थी जो बिल्कुल बेमानी नहीं। बोलचाल की भाषा की भी अपनी एक लय होती है। इन सभी स्रोतों से आज की कविता प्रभाव खींचता है। *बिम्ब भी उसका एक महत्वपूर्ण अवयव है* लेकिन वह उसका निर्णायक तत्व नहीं है। पारंपरिक काव्य-रीतियों से बाहर निकलने की छटपटाहट नयी नहीं- उर्दू के महान कवि गालिब ने भी तंगनाए-गजल की शिकायत की थी।

हिन्दी कविता के पीछे भी सिर्फ वर्णिक और मात्रिक छन्दों की ही नहीं ' छन्द-प्रयोगों ' की भी लंबी परम्परा है। केशवदास की ''रामचन्द्रिका' का तो छन्दों का अजायबघर ही कहा जाता है जिसमें अनेक छन्द स्वयं केशवदास के बनाए हुए हैं। निराला को भी हम प्रयोगों की उसी कड़ी में रखकर सोच सकते हैं। मेरे साथ के कवि सर्वथा छन्द-विमुख नहीं रहे है। दरअसल बिम्ब 'नाद'' की जगह नहीं आया- नाद के बीच जगह बनाता हुआ आया।

❐ *पिछले दिनों किन युवा कवियों ने आपको विशेष रूप से प्रभावित किया है? किन वजहों से?*

● *युवा-लेखन, दलित-लेखन नारी लेखन जैसे वर्गीकरणों को लेकर बहुत सहज नहीं अनुभव* कर पाता। ये मानो प्रतिबद्ध लेखन की तरह रिआयती और सिफारिशी आकलन का अपील करते हैं। *अच्छी कविता अच्छी लगती है। पहले की तरह आज भी बहुत-सी अच्छी कविताएँ लिखी जा रही हैं उस ओर ध्यान रहता है कवियों की उम्र की ओर नहीं। नये कवियों के नाम लूं तो फेहरिस्त या तो लम्बी होगी या फिर ऐसे कई नाम छूट जा सकते हैं जो बहुत अच्छी कविताएँ लिख रहे हैं।* एक इंटरव्यू की अपनी सीमा होती है। आज के महत्वपूर्ण लेखन पर अलग से लेख लिखना ही अधिक न्यायसंगत होगा।

❐ *पिछले दो सौ वर्षों मे आधुनिक युग ने विकासवाद का जो मॉडल संसार के सामने रखा, सदी बीतते-बीतते उसकी सीमाओं पर अब दुनिया भर में चर्चा है। एक बौद्धिक के रूप में आप आने वाले समय को किस रूप मे देखते हैं?*

● आधुनिक युग में विज्ञान और टेक्नोलॉजी से प्रेरित विकास का भौतिक मॉडल ही प्रमुख रहा है। उसका भरपूर असर आदमी के निजी और सामाजिक जीवन पर पड़ा है। परिवर्तनों की गति तेज से तेजतर हुई है और हमें लगता है कि हम तेजी से ' आगे बढ़ ' रहे हैं यह लगातार आगे बढ़ने का सरल भौतिक बिम्ब लुभाता है। लेकिन जब हम एक शान्त सन्तुष्ट और सार्थक जीवन जी सकने की संभावनाओं की सोचते है तो विकास का वस्तुवादी मॉडल बहुत दूर तक हमारा साथ नहीं दे पाता ऐसे व्यक्तियों या 'व्यक्तित्वों' के उदाहरणों को केन्द्र में रखकर सोचना भी जरूरी लगता है जो

फक तरह क जावन–मूल्या के आदश या प्रतीक रह हैं। यह अध्ययन कि उनका जावनदृष्टि कहाँ तक वस्तु–निर्भर ओर कहाँ तक आत्म–निर्भर रही है हम कुछ एसी सचाइया तक पहुँचा सकता है जो आने वाले वक्ता म हमारे लिए खास महत्व रखगी। प्राकृतिक सपदा का कोश सीमित है हम उसे अधाधुध खर्च नहीं कर सकत क्या कि हम भी उसका हिस्सा हैं– उससे अलग उसके उपभोक्ता मात्र नहीं। इसक पीछे जिस आत्मिक सयम और जीवन–विवेक की जरूरत है उसके लिए विकास क उस दूसर तरह के मॉडल की जरूरत हे जिसक कन्द्र म मनुष्य हा।

❑ *माडिया और बाजार शक्तिया ने व्यावसायिक छविया और प्रतीको का जिस तरह स चौतरफा हमला किया है, यह आदमा की सवेदना क बुनियादी ससाधनो, मोलिक सोच, कल्पना शक्ति, अवचतन और सहने की ताकत को भविष्य मे किस रूप म प्रभावित करेगा? क्या किसी प्रतिरोधात्मक शक्ति की कल्पना आप करते हैं?*

● कोई नया आविष्कार एक नयी ताकत की तरह हाता है। शुरू–शुरू म उसको लेकर उत्साह कभी कभी बौखलाहट की आत्मघाती हद तक पहुच जाता है। जब अणु–बम निक्ला तो लगा था कि पूरी दुनिया विनाश के कगार पर खडी है। आज ऐसा नहीं लगता उस खतर से बचन और बचाने वाली अवरोधक ताकत भी मनुष्य म पैदा हो गई हैं।

मुझे लगता है कि 'मीडिया' और 'बाजार–शक्तिया' का यह उफान भी जल्दी ही एक ज्यादा सतुलित स्तर पर स्थिर होगा। यह विकास जब छोटे शहरा कस्बा गावा तक भी फैलेगा तब हम उसकी स्फीति को इतने दमघोट ढग से डुबानेवाला शायद न महसूस करगे जैसा तत्काल बडे–बडे शहरा मे अनुभव कर रहे ह। विश्वास करना चाहूँगा कि यह खुली छूट और अव्यवस्था का बचकाना दौर है जो शायद जल्दी ही अपने पर एक प्रौढ नियत्रण पा सकगा। किसी भी ज्यादती से जब आदमी अपने लिए खतरा महसूस करने लगता है तब उसे नियत्रण में रखने वाली प्रतिरोधात्मक प्रतिक्रियाएँ भी उसमे अपने आप पैदा हो जाती हैं– कुछ–कुछ 'ऐन्टी–बाडीज' की तरह। यह शक्ति खुद आक्रामक नहीं होती अस्वीकारात्मक या 'रिजेक्टिव' होती है।

प्राथमिकताआ का लकर हमारी उत्पादन–नातिया म असन्तुलन और आपाधापी है जिसक कारण विकास–याजनाआ का पूरा लाभ ज्यादा–स–ज्यादा लोगा तक नहीं पहुँच रहा उसका एक बडा हिस्सा अनावश्यक उपभोक्ता वस्तुआ पर जाया हो रहा है। चीजा की अपेक्षा मनुष्य का अवमूल्यन हमारे समय की सबस बडी त्रासदी है। यह एक नयी तरह की गुलामी है– चीजा की गुलामी – जिससे आदमी जल्दी ही मुक्त होना चाहेगा वह अपनी जरूरता को अपने हिसाब से चाजो के हिसाब से नहीं परिभाषित और नियत्रित करना सीखेगा एसा मुझे लगता है। विज्ञापना की भरमार और बाजारो की चकाचौंध एक सामा क बाद खुद हो बेअसर होन लगत हैं। जहा तक मनुष्य क गभार रचनात्मक शास्त्रीय और सास्कृतिक प्रयासा का सवाल है उनकी हमशा एक अलग जगह रही है– मनोरजन के कारोबार से बिल्कुल अलग। टीवी सिनेमा आदि से उनकी कोई होड नहीं।

❑ *आज लिखी जा रही हिन्दी कविता क सम्मुख मुख्य चुनौतियाँ और इस कविता की विकासशील सभावनाएँ क्या हैं?*

● मेरी समझ म कविता का खास काम आज भी हमेशा की तरह हमार अन्दर उन सद्वृत्तियों

और मानवीय भावनाओ को जगाए रखना है जो आदमी और आदमी के बीच मधुर सम्बन्धो का आधार बन सके। यह आधार केवल वस्तुगत नहीं हो सकता। आपसी सबधो को किसी-न-किसी रूप मे ऐसी नैतिक, न्यायिक और मार्मिक अनुभूतियो और अनुभवो से जोडते रहना होगा जिसके केन्द्र में सबका हित हो- केवल कुछ का नहीं। जीवन में बदलाव का अर्थ है हमारे आचार विचार के उन सूत्रो का पक्का होना जिनसे अपने और दूसरो के बीच दूरिया और परायापन कम हो।

सम्प्रेषण की समस्या पर भी बराबर ध्यान देते रहना जरूरी है। हमारी बात अगर दूसरों तक पूरी तरह नहीं पहुच पाती या गलत पहुचती है तो इसकी सारी जिम्मेदारी समझनेवालो पर डाल कर बात कहनेवाला निश्चिंत नहीं हो जा सकता। अपने कहने के ढग, और माध्यम यानी भाषा को भी जाचते परखते रहना होगा। रचनात्मक दृष्टि से भी इस चेष्टा का सकारात्मक महत्व है- कवि और पाठक के बीच दूरी कम करने की दिशा मे। मेरा अनुभव है कि कथ्य अगर पक्का हो तो कविता को अपना एक स्वाभाविक-सा स्वरूप पाने म (जा गढने से फर्क बात है) दिक्कत नहीं होती बिम्ब छन्द तुक वगैरह भी अपनी सहज जगह बना लेते हैं- अन्यथा कविता के उपकरण केवल उसे अपारदर्शी ही बनाते हैं।

एक बद समाज मे भी जीवन्त कविता सभव है।

(मैथिली कवि अग्निपुष्प से विभारानी की बातचीत)

(अग्निपुष्प सातवे-आठवे दशक के मैथिली भाषा के महत्वपूर्ण कवि हैं। मैथिली की मुख्य धारा मे प्रगतिवादी चेतना को लानेवाले कवियो मे उनका योगदान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। उनका 'सहस्त्रबाहु' कविता सग्रह प्रकाशित हुआ है। वे 'समकालीन जनमत' के सम्पादक रह चुके हैं। उन्होने 'शिखा' 'आरभ' जैसी कई मैथिली पत्रिकाओ का सम्पादन भी किया जिन्होने पूरे मैथिली साहित्य को नया रूप और मोड दिया। वे काफी समय तक आकाशवाणी से सम्बद्ध रहे हैं तथा सम्प्रति पटना से प्रकाशित दैनिक 'आर्यावर्त' मे समाचार सपादक के रूप मे कार्यरत हैं।

अग्निपुष्प जी से मेरा परिचय खासा पुराना है। 1981 मे उन्होने 'मिथिला मिहिर' नामक मैथिली साप्ताहिक का मैथिली कथा विशेषाक निकाला था। जिसमे मेरी पहली कहानी छपी थी। बाद मे उसी वर्ष पटना मे मैथिली नवतुरिया लखक सघ (मैथिली नवलेखक सघ) का महत्वपूर्ण आयोजन हुआ था जिसमे उनके विचार जगत को जानने का अवसर मिला। तब से समय समय पर उनसे मैथिली साहित्य की समस्याओ पर मेरी लगातार चर्चा होती रही है। यह बातचीत अभी कुछ समय पहले उनसे पटना मे हुई थी - विभारानी)

मैथिली कविता हमेशा जीवित रहेगी

– अग्निपुष्प

विभारानी मैथिली कविता की आज क्या स्थिति है? खुद मैथिली तथा अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना मे?

अग्निपुष्प विचार के स्तर पर कहें या समग्र स्वरूप यानी काव्यतत्व के स्तर पर तो मैथिली कविता अन्य भारतीय भाषाओ के समानातर सतत् समकालीन रही है। मैथिली म प्रगतिवादी कविता का जन्म 1940 मे ही हो गया था। भुवनेश्वर सिह "भुवन" इसके पहले के कवियों में से हैं। यात्री यानी हिन्दी के नागार्जुन, मैथिली की प्रगतिशील कविता के पुरोधा के रूप मे जन्मे। आप नागार्जुन की हिन्दी कविताएँ देखें या यात्री की मैथिली कविताएँ विचार व शैली दोनों के स्तर पर हिन्दी व मैथिली कविताएँ समानातर

पटरी पर चल रही हैं। बाग्ला म यह कमलेश सेन अमल चक्रवर्ती आदि आज क कवि को ले तो उनके ममकक्ष आठवे दशक के सुकान्त सोम महाप्रकाश रामलोचन ठाकुर आदि हैं। सख्या भल ही कम हो पर गुणवत्ता है। आज की स्थिति प्रकाशन क अभाव के कारण ठीक-ठाक सामने नहीं आ पा रही है।

☐ *कहा जाता है कि समकालीन मैथिली कविता के मुख्य स्वर हैं- आक्रोश सघर्ष और जीवन। इसम कहाँ तक सत्य है?*

● इन तीनो शब्दो को अलग-अलग बॉटकर देखा जाना चाहिए क्योंकि ये तीनो स्वर मैथिली कविता के विभिन्न काल-समय क स्वर रहे हैं। पाँचवें-छठे दशक म जीवकान्त राजकमल चौधरी धूमकेतु कातिनारायण मिश्र धीरेन्द्र मल्लिक आदि हुए। इनकी कविताओ म आक्रोश का स्वर प्रमुख रहा। यह आजादी क बाद की पीडा है जो आजादी क समय देखे गए सपनो को अब टूटते हुए दख रही था। आशाएँ खडित हो रही थीं। इसमे आक्रोश उपजना स्वाभाविक था। फिर भी आक्रोश मे दिशा का अभाव रहता है।

सघर्ष दिशाबद्ध होता है। हम सघर्ष स अतर्भूत जीवन की प्राप्ति होती है। जीवन सघर्ष के बाद आता है। मैथिली कविता म जीवन की परिकल्पना नहीं के बराबर है क्योंकि सघर्ष समाप्त नहीं हुआ है।

☐ *आर्थिक सामाजिक, मानसिक और बौद्धिक रूप से पिछडे मिथिलाचल म मैथिली कविता या साहित्य का औचित्य क्या है?*

● सबसे पहले बौद्धिक और सास्कृतिक रूप से मिथिलाचल पिछडा हुआ नहीं है। अलबत्ता कटु आया हुआ जरूर है। मिथिलाचल क आर्थिक सामाजिक पिछडेपन की अभिव्यक्ति मैथिली कविता म निरतर होती रही है। साहित्य तत्कालीन समाज को लेकर रचा जाता है परतु उसका प्रभाव या परिणाम हम तुरत नहीं मिलता। उसका असर बहुत बाद म पडता है। तत्काल तो वह मध्यवर्गीय बौद्धिक जगत म तृप्ति बीज क रूप म सुरक्षित रहता है। उदाहरण के लिए हरिमोहन झा के साहित्य को ले। उन्होने मथिला समाज की कुरीतियो जिसम एक स्त्री अशिक्षा है पर गभीर चोट की है। मगर जिस समय मे व सृजनशील थे उस समय उसका प्रभाव नहीं पडा। आज इसका असर दखने म आ रहा है। आज मैथिल ललनाएँ शिक्षा प्राप्त कर रही हैं।

मैथिल समाज एक बन्द समाज है। शहरी सस्कृति का उस पर बहुत कम प्रभाव पडा है। तथापि रचनात्मकता क क्षेत्र म इस पर प्रखर सामाजिक हिकमत क साहित्य का प्रभाव दखा जा सकता है। कविता क लिए यात्री का वक्तव्य रहा- "हम कविता का फॉर्म बदल देना चाहिए।" इधर हरिमोहन झा गद्य साहित्य क माध्यम से सामाजिक कुरीतियों पर चोट कर रहे थे उधर सीताराम झा कुञ्जीनाथ झा "किरण" जेसे कवि सामाजिक आर्थिक चिन्ता तथा उन आह्वान के थे। सीताराम झा की य दो पक्तियाँ तो उस समय नेहद लो

है माचिस म आग, जलेगा
पाएग अधिकार निज

☐ *मैथिली स्वय आज रा शा की*

स्थिति है। कविता के लिए यह प्रचारित किया जा रहा है कि कविता का अत हो चुका है। ऐसी परिस्थितियो म मैथिली कविता के भविष्य को आप किस रूप म दखत हैं?

● आज मैथिली की साहित्यिक राजनीति का गढ साहित्य अकादमी हो गया है। मैथिली अकादमी चेतना समिति जैसी सामाजिक-साहित्यिक सस्थाएँ राज्य सपोषित सस्थाएँ हैं। इसलिए यहाँ पारपरिक साहित्य क सरक्षण की बात ही की गई। कुछ काम हुए भी किन्तु बजाए सरक्षण के क्षरण ही अधिक हुआ है। यथास्थितिवादी लाग इन जगहा पर कुडली मारकर बैठे हैं। इन्हाने नवकविता को आगे आने ही नहीं दिया सरक्षण की कौन कहे ! और एसा मैथिली अकादमी से लेकर साहित्य अकादमी तक म है। इसी यथास्थितिवाद क विराध में मैंन कुणाल के साथ मिलकर शिखा'' पत्रिका निकाली सकल्प (कदार कानन) भारती मडन आरभ सधान आदि पत्रिकाएँ समय-समय पर निकलती रही हैं। और मैं आपको बताऊ कि नवकविता जावित रही है ता लघुपत्रिकाआ क माध्यम से और आगे भी इन्हीं क माध्यम से जिन्दा रहेगी। एसा हर भाषा के साथ है। लघुपत्रिकाएँ ही नए साहित्य के सृजन पल्लवित पुष्पित और रचनाकारा की पहचान का माध्यम रही हैं। मैथिली कविताआ का भविष्य भी इन्हीं लघु पत्रिकाआ क द्वारा सुरक्षित है और रहेगा।

❑ *मैथिली कविता किन-किन वादा का लेकर चली ओर कब-कब? हिन्दी क समकालीन वादा की तुलना म इसकी हर समय क्या स्थिति रही है? क्या वादा से कविता का विकास सभव है?*

● मैथिली कविता कभी भी किसी भा वाद का लेकर नहीं आई। कभी काई वाद आया भी तो वह व्यक्तिवाद म ही सीमित होकर रह गया। जैसे कीर्तिनारायण मिश्र ने अकवितावाद मायानद मिश्र ने अभिव्यजनावाद मार्कण्डेय प्रवासी ने तदर्थवाद चलाया। मगर इसका विस्तार नहीं हा सका क्याकि सातव दशक मे जब ये सार वाद चलाए गए तब इनक पीछे काई विचार नहीं था न ही फॉर्म को लकर न ही कथ्य के स्तर पर वादा के सहार मैथिली कविता न कभी रही थी न है। फिर भी समग्र मैथिली कविता को दो भागा मे विभाजित किया जा सकता है। एक ता यथास्थितिवादिया द्वारा लिखी गई कविताएँ और दूसरी नवकविता जिसक पुराधा रामकृष्ण झा ''किसुन'' रह।

हिन्दी के वाद मथिली पर कभी नही छाए। मसानी पीढी जिसे राजकमल चौधरी ने चलाया था वह भी हिन्दी तक ही सामित रही। मैथिली म वह नहीं आई।

❑ *आज तमाम वादो से परे मैथिली कविता लिखी जा रही है। इसे कविता का वाद पर हावी होना कहा जाएगा या यह समझा जाना कि वाद की उपयुक्तता खत्म हो गई है?*

● पहले भा मैंने कहा कि मैथिली कविता साहित्यिक वादा म कभी भी बधकर नहा रही। मगर परिवर्तनस्वरूप और खासकर जब नवकविता की उद्भावना हुई तब इसम मार्क्सवादी एप्रोच आया। यूँ भी समाज म दो ही तो वर्ग ह। शोषित और शोषक। यही राजनीतिक क्षेत्र मे भी है। प्रगतिवाद निश्चित रूप स मार्क्सवाद के करीब है।

❑ *नव दशक के बाद मैथिली के पूरे लखन मे नए स्वर उभर नहीं रह हैं? इसका कारण क्या है? और नए स्वर आए इसके लिए क्या उपाय किए जा सकत हैं?*

● मैं इस नहीं मानता। नए स्वर आ रह है। निश्चित रूप से आ रह है। तब क्या है कि रचनाएँ स्वान्त सुखाय ता लिखी नहा जातीं। स्वर धीमा होन का मुख्य कारण प्रकाशन का अभाव है। पहले

पटरी पर चल रही हैं। बाग्ला म यह कमलश सेन अमल चक्रवर्ती आदि आज क कवि को ले तो उनक समकक्ष आठव दशक क सुकान्त सोम महाप्रकाश रामलोचन ठाकुर आदि हैं। सख्या भल ही कम हो पर गुणवत्ता है। आज की स्थिति प्रकाशन क अभाव के कारण ठीक-ठीक सामने नहीं आ पा रहा है।

❑ *कहा जाता है कि समकालीन मैथिली कविता क मुख्य स्वर हैं- आक्रोश सघर्ष और जीवन। इसम कहाँ तक सत्य है?*

● इन तीनो शब्दो को अलग-अलग बाँटकर देखा जाना चाहिए क्योंकि य तीनो स्वर मैथिली कविता के विभिन्न काल-समय क स्वर रहे हैं। पाँचवें-छठे दशक म जीवकान्त राजकमल चौधरी धूमकेतु कार्तिनारायण मिश्र वीरेन्द्र मल्लिक आदि हुए। इनकी कविताओ म आक्रोश का स्वर प्रमुख रहा। यह आजादी क बाद का पीढी है जो आजादी क समय देख गए सपनो को अब टूटत हुए देख रही थी। आकाक्षाए खडित हो रही थीं। इससे आक्रोश उपजना स्वाभाविक था। फिर भी आक्रोश म दिशा का अभाव रहता है।

सघर्ष दिशाबद्ध होता है। हम सघर्ष से अतर्भूत जीवन की प्राप्ति होता है। जीवन सघर्ष के बाद आता है। मैथिली कविता म जीवन की परिकल्पना नही के बराबर है, क्योंकि सघर्ष समाप्त नहीं हुआ है।

❑ *आर्थिक सामाजिक मानसिक और बौद्धिक रूप से पिछडे मिथिलाचल म मैथिली कविता या साहित्य का औचित्य क्या है?*

● सबसे पहले बौद्धिक और सास्कृतिक रूप स मिथिलाचल पिछडा हुआ नहीं है। अलबत्ता रुकु आया हुआ जरूर है। मिथिलाचल क आर्थिक सामाजिक पिछडेपन की अभिव्यक्ति मैथिली कविता मे निरतर होती रही है। साहित्य तत्कालीन समाज को लेकर रचा जाता है परतु उसका प्रभाव या परिणाम हमे तुरत नहीं मिलता। उसका असर बहुत बाद मे पडता है। तत्काल तो वह मध्यवर्गीय बौद्धिक जगत मे तृप्ति बीज क रूप म सुरक्षित रहता है। उदाहरण के लिए हरिमोहन झा क साहित्य का ल। उन्होने मथिला समाज का कुरीतियो जिसम एक स्त्री अशिक्षा है पर गभीर चोट की है। मगर जिस समय मे व सृजनशील थे उस समय उसका प्रभाव नहीं पडा। आज इसका असर देखन म आ रहा है। आज मैथिल ललनाएँ शिक्षा प्राप्त कर रही हैं।

मैथिल समाज एक बन्द समाज है। बाहरी सस्कृति का उस पर बहुत कम प्रभाव पडा है। तथापि रचनात्मकता क क्षत्र म इस पर ब्रख्त नाजिक हिकमत के साहित्य का प्रभाव देखा जा सकता है। कविता क लिए यात्री का वक्तव्य रहा- ' हम कविता का फॉर्म बदल देना चाहिए। इधर हरिमोहन झा गद्य साहित्य क माध्यम से सामाजिक कुरीतियो पर चोट कर रहे थे उधर सीताराम झा कन्चीनाथ झा 'किरण'' जैसे कवि सामाजिक आर्थिक चिन्ता तथा उनसे निपटने के आशा के साथ उठे हुए थ। सीताराम झा की य दो पक्तियाँ तो उस समय बेहद लोकप्रिय हुई थीं-

है माचिस म आग, जलेगा बिना क्या रगडे?
पाएगे अधिकार निज बिना क्या झगडे?

❑ *मैथिली स्वय आज राजनीति और उपेक्षा की शिकार है। सभी भारतीय भाषाओ की लगभग यही*

स्थिति है। कविता के लिए यह प्रचारित किया जा रहा है कि कविता का अंत हो चुका है। ऐसी परिस्थितियों में मैथिली कविता के भविष्य को आप किस रूप में देखते हैं?

● आज मैथिली की साहित्यिक राजनीति का गढ़ साहित्य अकादमी हो गया है। मैथिली अकादमी चेतना समिति जैसी सामाजिक-साहित्यिक संस्थाएँ राज्य संपोषित संस्थाएँ हैं। इसलिए यहाँ पारंपरिक साहित्य के संरक्षण की बात ही की गई। कुछ काम हुए भी किन्तु बजाए संरक्षण के क्षरण ही अधिक हुआ है। यथास्थितिवादी लोग इन जगहों पर कुंडली मारकर बैठे हैं। इन्होंने नवकविता को आगे आने ही नहीं दिया संरक्षण की कौन कहे। और ऐसा मैथिली अकादमी से लेकर साहित्य अकादमी तक में है। इसी यथास्थितिवाद के विरोध में मैंने कुणाल के साथ मिलकर "शिखा" पत्रिका निकाली संकल्प (केदार कानन) भारती मंडन आरंभ संधान आदि पत्रिकाएँ समय-समय पर निकलती रही हैं। और मैं आपको बताऊँ कि नवकविता जीवित रही है तो लघुपत्रिकाओं के माध्यम से और आगे भी इन्हीं के माध्यम से जिन्दा रहेगी। ऐसा हर भाषा के साथ है। लघुपत्रिकाएँ ही नए साहित्य के सृजन पल्लवित पुष्पित और रचनाकारों की पहचान का माध्यम रही हैं। मैथिली कविताओं का भविष्य भी इन्हीं लघु पत्रिकाओं के हाथों सुरक्षित है और रहेगा।

❑ *मैथिली कविता किन-किन वादों को लेकर चली और कब-कब? हिन्दी के समकालीन वादों की तुलना में इसकी हर समय क्या स्थिति रही है? क्या वादों से कविता का विकास संभव है?*

● मैथिली कविता कभी भी किसी भी वाद को लेकर नहीं आई। कभी कोई वाद आया भी तो वह व्यक्तिवाद में ही सीमित होकर रह गया। जैसे कीर्तिनारायण मिश्र ने अकवितावाद, मायानंद मिश्र ने अभिव्यंजनावाद, मार्कण्डेय प्रवासी ने तदर्थवाद चलाया। मगर इसका विस्तार नहीं हो सका क्योंकि सातवें दशक में जब ये सारे वाद चलाए गए तब इनके पीछे कोई विचार नहीं था न ही फॉर्म को लेकर न ही कथ्य के स्तर पर वादों के सहारे मैथिली कविता न कभी रही थी न है। फिर भी समग्र मैथिली कविता को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। एक तो यथास्थितिवादियों द्वारा लिखी गई कविताएँ और दूसरी नवकविता जिसके पुरोधा रामकृष्ण झा "किसुन" रहे।

हिन्दी के वाद मैथिली पर कभी नहीं छाए। मसानी पीढ़ी जिसे राजकमल चौधरी ने चलाया था वह भी हिन्दी तक ही सीमित रही। मैथिली में वह नहीं आई।

❑ *आज तमाम वादों से परे मैथिली कविता लिखी जा रही है। इसे कविता का वाद पर हावी होना कहा जाएगा या यह समझा जाना कि वाद की उपयुक्तता खत्म हो गई है?*

● पहले भी मैंने कहा कि मैथिली कविता साहित्यिक वादों में कभी भी बंधकर नहीं रही। मगर परिवर्तनस्वरूप और खासकर जब नवकविता की उद्भावना हुई तब इसमें मार्क्सवादी एप्रोच आया। यूँ भी समाज में दो ही तो वर्ग हैं। शोषित और शोषक। यही राजनीतिक क्षेत्र में भी है। प्रगतिवाद निश्चित रूप से मार्क्सवाद के करीब है।

❑ *नवें दशक के बाद मैथिली के पूरे लेखन में नए स्वर उभर नहीं रहे हैं? इसका कारण क्या है? और नए स्वर आएँ इसके लिए क्या उपाय किए जा सकते हैं?*

● मैं इसे नहीं मानता। नए स्वर आ रहे हैं। निश्चित रूप में आ रहे हैं। तब क्या है कि रचनाएँ स्वान्तः सुखाय तो लिखी नहीं जातीं। स्वर धीमा होने का मुख्य कारण प्रकाशन का अभाव है। पहले

जैसी ही सही "मिथिला मिहिर" पत्रिका होती थी। उसमे नए लोगो क लिए एक स्तभ भी हुआ करता था। हालांकि उसमें भी यथास्थितिवादियो का कब्जा था फिर भी नई लेखनी उभरी थी। आज भी नवलेखकों में नारायण जी हरेकृष्ण झा, अरविन्द ठाकुर हैं जो लिख रहे हैं और काफी अच्छा लिख रहे हैं।

☐ *मैथिली मे महिला लेखन का भी सशक्त स्वर नहीं उभरा है। इसका कारण?*

● मैथिली मे पूरा महिला लेखन ही बहुत कमजोर रहा है। लिली रे उषाकिरण खान शेफालिका वर्मा और (मेरी तरफ देखते हुए) आपको छोड दे तो बहुत कम नाम बचते हैं महिला लेखन में कविता के क्षेत्र म भी यही बात है। फिर भी शान्ति सुमन, वाणी मिश्र सुस्मिता पाठक हैं। हाँ, कविता के क्षेत्र म एक तेजी से उभरता प्रतिभाशाली नाम है नूतन चन्द्र झा।

महिला लखन क न उभर पाने का एक कारण विस्तृत कैनवास का न होना है। मैथिल समाज मैंने कहा भी कि एक बन्द समाज है । तो बन्द समाज म बन्द स्त्रिया की कितनी अधिक सीमाएँ हो सकती हैं समझा जा सकता है। फिर भी लिली रे ने इसे तोडा है आपने भी। सुस्मिता भी अच्छा लिख रही है। उम्मीद है आनेवाले समय मे कुछ और भी नए प्रतिभाशाली लोग आएगे।

☐ *जनभाषा व लोकभाषा होते हुए भी लोक गायकी या जनकवि की कोई भी परंपरा मैथिली म नहीं है, जैसी कि पडोस की भोजपुरी में भिखारी ठाकुर "बिदेसिया" रचकर अमर हो गए। आज भी गद्दर जैसे जनकवि हैं। भोजपुरी लोकगीत भी बिहार के हर भाग को चीरते हुए मिथिलाचल म भी प्रवेश कर गये। लोग गायकी के स्वर न उभरने के कारण क्या रहे ?*

● मैथिली में लोकगायक लोककवि आदि की कल्पना गायब रहा है परतु लाक गाता म लाक की बात की जाती रही है। इस रूप मे रवीन्द्रनाथ ठाकुर (गुरूदेव टैगोर नहीं) हैं। दूसरे क्रान्तिकारी जमीन के न होने का अभिशाप आज तक मिथिला भुगत रही है। स्वतत्रता सग्राम या इसके पहले से ही आप देख तो यहाँ से कोई क्रान्तिकारी आगे नहीं आए। स्वतत्रता सेनानी का पशन लेने वाले आपको बहुत मिल जाएगे मगर आजादी की लडाई मे उनका योगदान नगण्य है। ऐसा ही साहित्यकारो के साथ भी है। उनका साहित्यिक यागदान नगण्य है। नवक्रान्तिकारी आदोलन के अभाव और यथास्थितिवादी की परिकल्पना से ग्रस्त समाज मे लोक या जनकवि कहाँ से आएगे? क्रान्तिकारी चेतना से आदोलन होता है और इसी आदोलन को पोषित करता है जनकवि या लोकगायक।

एक रचना सामाजिक चेतना क आगे-आगे चलती है। दूसर उसक अनुगामा हाते हैं। जैस समस्त देश मे नक्सलवादी आदोलन हुआ। गद्दर तो आदोलन के साथी हैं। यहा कोई आदोलन ही नहीं हुआ। नचारी (भगवान शिव के समक्ष अपनी लाचारी व्यक्त करने वाले गीत को नचारी कहा जाता है।) गाते-गाते मैथिल समाज खुद ही लाचार हो गया है।

☐ *मैथिली कविता के विकास की धाराओ की बात करूँ तो आप धाराओं और समय काल क मुताबिक किन-किन कवियो का सहभाग मानते हैं?*

● पाँचवें दशक म सीताराम झा काञ्चीनाथ झा 'किरण" यात्री उसके बाद सोमदेव धीरेन्द्र राजकमल चौधरी मायानद मिश्र कीर्तिनारायण मिश्र जीवकान्त। उसके बाद की पाढा याना सातव आठवे दशक मे धूमकेतु, महाप्रकाश भुवनेश्वर पाथेय नचिकेता सुकान्त सोम कुणाल नरेन्द्र विभूति

आनद आदि रहे। नवें दशक म हरकृष्ण झा तारानद वियागी अशोक आप आदि हैं। और भी नाम हैं जिन्ह यहाँ गिनाया नहीं जा रहा।

☐ *मैथिली म गजल का एक आवेग आया था। आज मैथिली गजल कहाँ पर है?*

● आवेग आवेग जैसा ही होता है। फैशन के रूप मे गजल आई थी सो आई और चली गई। नरेन्द्र कलानन्द भट्ट आदि ने गजले लिखीं। तारानद वियोगी भी लिखते हैं। परतु नवकविता को जो पहचान बनी उस तुलना मे यह कहीं भी नहीं है।

☐ *यात्री (नागार्जुन) के समय से ही कविता छन्द से मुक्त हो चुकी है। यह हिन्दी का प्रभाव है या अभिव्यक्ति की कसमसाहट या छन्दो की सामर्थ्य तक न पहुँच पाने की असमर्थता?*

● छन्द और मात्रा अभिव्यक्ति मे बाधक शुरू मे भी थे। छन्द और मात्रा की उपयोगिता श्रुति साहित्य के समय मे अधिक थी, क्याकि तब लिखने की परिपाटी नहीं थी। सब कुछ सुन करके ही रखना पडता था। इसलिए जब लिखने की परिपाटी शुरू हुई तव लोग खुद ब खुद इस बधन से मुक्त होते चले गए।

☐ *किन्तु जबान पर कविता तो गेयता की वजह से ही चढती है और उसके लिए छन्द मात्रा आवश्यक है ?*

● जबान पर कविता उसकी अभिव्यक्ति की पकड के कारण चढती है। छन्द और मात्रा ही यदि लोकप्रियता का पैमाना होती तो सुरेन्द्र झा "सुमन" तो आज भी छन्द मे ही लिख रहे हैं। मगर लोकप्रिय नहीं हो रहे हैं। आज फॉर्म नहीं, भाषा विषय, चेतना की अभिव्यक्ति जरूरी है। छन्द-वन्द का आग्रह यथास्थितिवादियो के चोचले है जो कविता क विकास को ही नहीं चाहत। (जार दकर) आप इस दर्ज करे। सुरेन्द्र झा "सुमन" चन्द्रनाथ मिश्र "अमर" जैसे यथास्थितिवादिया न पूरे मैथिली साहित्य का ही बडा भारी नुकसान पहुँचाया है।

☐ **मैथिली कविता पर कुछ ठोस काम शोध आदि हुए हैं?**

● छिट पुट रूप मे थोडे-बहुत हुए हैं। परतु वे गिनाने योग्य नहीं हैं। रामकृष्ण झा "किसुन" सोमदेव जी आदि ने मैथिली कविता पर काम किया है। मैथिली कविता म उतना काम भी नहीं हो पा रहा है जितना कथा के क्षेत्र मे हो रहा है। सबसे बडी बात तो कविता केन्द्रित पत्रिका का ही अभाव है। मैं इस पर सोच रहा हूँ कुछ करने को। देखिए, क्या होता है?



पेंटिंग सांगीता गुप्ता

स्वगत

(एक बतरतीब डायरी के कुछ अश)

मगलश डबराल

11 मई '96

हम कवि लागा की दुनियाएँ क्या प्रत्यक्ष सार्वजनिक और मूर्त्त स्तर पर खत्म हो चुकी है? क्या व अभिव्यक्ति के मुखर रूपों में नष्ट की जा चुकी हैं? किसी खास तरह का कवि हो जाना भी हमारे भीतर कई कविया की मृत्यु है। भीतर की ओर मरते रहन का बिब पाब्लो नेरूदा की कविताओ म कई बार आया है। मैं एक खास दृष्टि एक खास काट या शिल्प या शैली या एक खास तरह की विषयवस्तु का कवि हू यानी मेरे भीतर दूसरी विषयवस्तुए मर चुकी हैं। सवेदनाओ की यह मृत्यु हमेशा भीतर की ओर होती है। पता ही नहीं चलता कि हमारे साथ हुआ क्या है। हमारी वे दुनियाएँ कहाँ हैं? शायद वहाँ जहाँ स हम चले आये हैं। वे सिफ हमारी स्मृति म रह गयी हैं।

12 मई '96

'अ' न कुछ समय तक 'ब' स प्रेम किया फिर विवाह। यह खुशखबरी मैंने 'स का सुनायी तो उसने कहा चलो जी अच्छा बेचारा 'अ' बडे दिना से 'ब' पर महनत कर रहा था। महनत रग लायी।' सुनकर मै भौंचक्का रह गया। यानी अब ऐसा समझा जाता है कि प्रम सिर्फ मेहनत का मामला है। आप किसी स्त्री क पीछे लगे रह तो एक न एक दिन तो वह आपसे प्रेम करने लगेगी। बचारी क पास क्या चारा है। हमारे दौर मे प्रेम की भी यह हालत हा चुकी है। कुछ साल पहले मेर एक मित्र ने विवाह किया तो इस पर एक युवा कवि की टिप्पणी थी कि 'अच्छा ता वे उस ले उड।' कैसा प्रम विरोधी रवैया है।

6 अक्तूबर '96

कला प्रदर्शनियो म जाकर विचित्र-सा एहसास हाता है। लगता है जैसे कुछ सपन्न लाग किसी समारोह म इक्ट्ठा हुए हैं। मुस्कुराते हुए चहरे। कलाकृतियाँ भले ही किसी त्रासदी शाक या हमारे समय की कुरूपता को चित्रित करती हो लेकिन उन्ह दखने आय चहरा पर एक चित्रलिखित मुस्कान रहती है। कलाकृतियाँ भी ज्यादातर ऐसी कि आपक भीतर काई उत्तजना काई प्ररणा काई विचलन

पैदा न हो। वे आँखो की सतह पर ही थिरकती रहती हैं और जब हम घर लौटते हैं तो भूल चुके होते हैं कि हम एक कला अनुभव के साथ थे। उन्हे देर तक या एकटक देखते रहने की तो इच्छा ही नहीं होती।

कुछ दिन पहले पिकासो के लेखों टिप्पणियो और इटरव्यू की एक किताब पढी थी 'पिकासो ऑन आर्ट'। उसमे एक जगह पिकासो कहते हैं कि रगो को लेकर मैं हमेशा असमजस मे रहता हू। सही अभिव्यक्ति के लिए सही रग नहीं सूझता और कैनवस के सामने जब मुझे कोई रग नहीं सूझता तो मै काला रग लगाने लगता हू। लेकिन हमारे देश क कलाकारों की स्थिति इससे भिन्न है। वे अपने कैनवस को इतने रगो से पोतते रहते हैं। लाल पीला हरा बैंजनी और उसकी कई रगतें वे तब तक लगाते रहते हैं जब तक सब कुछ काला न हो जाये। जैसे एक अखिल भारतीय रग पुताई कार्यक्रम पूरे देश मे चल रहा हो। चित्रकारो को उम्मीद रहती है कि रग कला के बाजार को आकर्षित करते हैं। उन्हे पिकासो की तरह रगो की विकट समस्या से नहीं जूझना पडता। सभी कलाकार एसे नहीं हैं लेकिन ज्यादातर तो ऐसे ही हैं। एक बार मकबूल फिदा हुसैन के चित्रो की बहुत अच्छी प्रदर्शनी 'गैलरी एस्पास' में लगी थी जिसम उनके बचपन की स्मृतियो के दृश्य थे। ज्यादातर जलरगो म। वह प्रदर्शनी अभी तक याद है। हुसैन 'इमोशस' के सबसे बडे चित्रकार हैं। शायद इसीलिए उनकी कई कृतिया ऐसी हैं कि आप उन्हे देखते रह सकते हैं।

कुछ बाजार और कुछ अपनी खब्त के चलते हुसैन इन दिनो जो भी बेकार का काम कर रहे हो उसकी बात अलग है, लेकिन उस प्रदर्शनी की कई कलाकृतियाँ एक अजब उदासी छोड जाती थीं। वे मुझे अब भी याद हैं। एक चित्र हुसैन क पिता के दूसरे विवाह की स्मृति से सबधित था। उसमे एक दुल्हन चटख रगो मे आ रही है दाढीवाले पिता हाथ मे लालटेन लिये हुए उसे रास्ता दिखा रहे हैं और उनकी पीठ पीछे सिर्फ काली-सफेद रेखाओ मे बनी एक स्त्री जैसे कैनवस से बाहर जा रही है। और इस पूरे दृश्य म एक छोटा-सा लडका पहले खडा है। चेहरे पर टोपी ज्यादा प्रमुखता से दिखती है। अपनी माँ की मृत्यु और नयी माँ के आगमन का यह चित्र मुझे अब भी 'हाट' करता है। प्रदर्शनी के बाद शराब का दौर शुरू हुआ। हुसैन साहब से मैंने चित्रो की प्रशसा की और फिर कहा कि आजकल की ज्यादातर चित्रकला ऐसी लगती है जैसे अखिल भारतीय रग पुताई कार्यक्रम चल रहा हो। हुसैन अपनी भव्य धवल दाढी मे उत्फुल्ल हँसी हँसे, ' तो फिर इसे ह्वाइटवॉश कर दिया जाना चाहिए।'

यह कई साल पहले की बात है पर अकसर याद आती है। खासकर तब जब किसी चित्र प्रदर्शनी म जाता हूँ। प्रयाग जी भी कभी कभी इस जुमले को कोट करते हैं– रग पुताई कार्यक्रम– जब उन्हे किसी कला प्रदर्शनी मे कुछ खास नहीं दिखता। पिकासो का एक वाक्य है 'आइ डोंट सर्च आइ फाइंड ' भारतीय कला मे कितने लोग ऐसा करते होगे।

10 अक्तूबर '96

मूर्तिशिल्पो की प्रदर्शनी। चारो ओर खुशबू फैली हुई थी। तेज रोशनी के नीचे चमचमाते शिल्प। एक शिल्प हाथ बाधे खडा है। एक शिल्प खिलखिलाता है। एक शिल्प बदर की तरह पेड पर चढा हुआ है। एक शिल्प भिखारी की तरह दर्शको की ओर अपना हाथ बढाये हुए है। एक शिल्प कट

हुए सर की तरह पडा है। एक शिल्प उसे खरीदने वाले किसी सभावित धनपति की तरह रोब से बैठा है। एक शिल्प इस सारे कार्य -व्यापार से अपनी पीठ फिराये हुए है। एक शिल्प अपने शिल्प होने का उपहास करता खडा है। एक शिल्प म इतनी कठोरता भरा है कि जैस उस शिल्प म बदलना असभव हो।

और लोककला? वह किसी नवविवाहिता की तरह सजी-धजी बैठी है। वे पुराने घिसे हुए कपडे यहाँ नहीं हैं जिनको थिगलियाँ बनाकर यह कला निर्मित की गयी है। यहाँ वे सावली रात के रग की औरते नहीं हैं जिन्होंने अपने अपने शरीर से उतारकर रातो को जागकर ये पोशाके सिली हागी। यहाँ वे उगलियाँ भी नहीं हैं जिन पर मेहनत की गाठे पड चुकी हैं और दर्द करती हैं। यहाँ सिर्फ लोककला का छूता-टटोलता हुई कलात्मक उगलियाँ हैं। राशना और सगीत है। और किसी आदिवासी औरत के फटे पुराने कपडा से बनाया गया एक लहगा कला-बाजार के प्रवेश द्वार पर नकली प्रकाश मे झलझला रहा है।

18 अक्तूबर '96

पहाड अचानक दिखाई दिया। हालाकि वह कितनी ही बार मेरा देखा हुआ है फिर भी हर बार वह सहसा दिखाई देता है। जैस एक बिल्कुल नया पहाड दिख गया हो। कभी पीछे से झिलमिलाता है तो कभी ठीक सामने चमक उठता है। मैं जैसे-जैसे इस पहाडी रास्ते पर उठता जाता हूँ लगता है कहीं गहरे किसी बुनियाद मे जा रहा हूँ। और जब मैं घर पहुचता हू तो लगता है पहाड का एक दरवाजा खोल रहा हू। पहाड के भीतर खुलता हुआ पहाड। कई पहाडो के माथे पर एक-एक आकाश रखा हुआ है। हवा वहीं रखी हुई है। पानी वहीं बह रहा है। पहाड हमारी आवाज को गुजाते हैं। दुगना तिगुना कई गुना ऊँचा उठाते हुए। या फिर वह उनका अपना हा काई गात है जा हम अवाक् कर देता है।

20 अक्तूबर '96

मैं एक लबे स्वप्न के सिरे पर देर तक खडा रहा। दूर कहीं किसी दूसरे छोर पर उसकी दो आँखे तारों की तरह चमक रही थीं। मैं चाहता था पहले वह मुझे आवाज दे। पहले वही पुकार। हमारे बीच शायद कोई नदी थी जो एक आईने की तरह झिलमिला रही थी। ऊपर बहुत से बादल नदी के कठोर तटो पर विकल चेहरो की तरह झुके हुए थे। मैंने सोचा प्रार्थनाएँ जरूरी नहीं है फूल जरूरी नहीं है स्पर्श जरूरी नहीं हैं। मैं सिर्फ उसकी आवाज सुनना चाहता था। उसकी वह आवाज जो मर शरीर के रोओ म घास की तरह एक लहर पैदा करती थी। वह आवाज जिसमे चुबनो और मृत्यु की पुकार थी। लेकिन मैंने देखा वह दूर जा रही थी। किसी नाव की ओर या नदी की काली गहराइयो की ओर। मैं खिडकी से देर तक झाकता रहा। यह ऐसा था जैसे अपने भीतर झाक रहा होऊ। वहा कुछ नहीं था। न कोई नदी न कोई किनारा सिर्फ एक सपाट बियाबान। प्यार मैं तुम्हारा गोद म बैठा हुआ बच्चा हू। प्यार मैं कितना भी बडा हो जाऊ तुम्हारे लिए बच्चा ही बना रहूगा। जैसे एक माँ के लिए उसका बच्चा अत तक बच्चा ही रहता है भले ही वह अधेड और बूढा हो चुका हो।

7 नवबर 1996

शमशेर की एक पक्ति 'मैं बैठा हू त' बैठा ही रह गया हू'। यह कैसा खयाल है! क्या शमशेर किसी चितन मे डूबे बैठे रह गये हैं? या या ही बेमकसद नि स्वार्थ कुछ न सोचत हुए, दह और मस्तिष्क क अपन एक खास विश्राम करने क स्वभाव क साथ? या यह कोई दार्शनिक स्थिति है या फिर उठने की शक्ति नहीं रह गयी है और हा भी तो क्या हागा! गालिब भी शायद यही बात कहते हैं 'रही न ताकत-ए-गुफ्तार और फिर आग- 'और अगर हो भी तो किस उम्मीद प कहिए कि आरजू क्या है।' गालिब सवाला क जिरह और सशय और विडबनाआ क कवि हैं पर उनके यहा निराशा की भी कितनी अधेरी दुनिया है। निराशा वहा एक तरह क प्रतिरोध म बदल जाती है। लेकिन 'बैठा हू त' बेठा ही रह गया हू म कुछ और हा बात है। सुख और दुख के बाच की बैठने और चलने की इच्छा के बीच की कोई जगह। जैसी सगात मे एक सुर से दूसर सुर क बाच श्रुतिया की जगह होता है। इस 'बैठा हू' म एक शाति और निश्चितता है और 'बैठा रह गया' हाने म एक गहरा विराग जिस रस सिद्धात म शायद निर्वेद की स्थिति कहा गया है। लेकिन इससे भी अधिक कुछ और है जिसे हम सिर्फ महसूस कर सकत हैं जा 'गूगे का गुर भाई' है। अलग-अलग स्थितिया म अलग-अलग तरह से उसे 'फील' किया जा सकता है। अच्छी कविता पता नहीं कब कहा अपने हजार-हजार अर्थों क साथ हम हा व्यक्त करने लगता है।

कई बार यो ही बेकार और बेसुध बैठे और बैठा रहना चाहता हूँ। किसी चट्टान पर घास पर या पेड के तने से पाठ टिकाये हुए। कुछ न सोचता हुआ कुछ न चाहता हुआ। न नींद न स्वप्न न जागृति न कोई गतिविधि। निश्चेष्ट। हमारे राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त भले ही 'भारत भारती' मे कह गये हा कि 'निश्चेष्ट होकर बैठ रहना यह महा दुष्कर्म है' लेकिन निश्चेष्ट बैठे रहन का सुख अद्भुत है। कई बार घर जाते हुए किसी जगह पर थाडी देर सुस्ताने की गरज से मैं बैठा हूगा और फिर देर तक बैठा रह गया हूगा। बिना यह जाने कि बैठा हुआ हू। आत्मविस्मृत। आसपास व्याप्त प्रकृति क बीच अपने आपको मुक्त सौंपता हुआ या फिर प्रकृति का भी भूल जाता हुआ। लगभग निर्वात मे जहा सिर्फ इतनी हवा बची रह गयी है कि सास लने का सिलसिला चलता रहे। यह एक दुर्लभ क्षण है जब आप कहीं 'बाहर' नहीं होत अपने ही भातर रहने चले जाते है। लेकिन एस क्षण कितन दुर्लभ हैं और कैस हम अभिशप्त हैं कि चल ही चले जाते हैं। चलो चलते रहो अत म एक घटिया और मतलबी किस्म की जगह पहुँचोगे जहाँ तुम पाआगे कि सफल लाग काफी पहले से आसन जमाय बैठे हैं।

फिर भी आत्मविस्मृति का जवाब नहीं। चीन म थाग राजवश के तीन महाकविया म एक थे ली पाइ। इस महान आत्मविस्मृति की स्थितप्रज्ञ अवस्था पर उनकी कई कविताएँ हैं। एक कविता मुझे अशिम चौधरी न सुनायी थी

'देट नाइट इट स्नोड इन द गार्डन ऑफ ला याग
इट वाज़ कोल्ड बट यू वर अनकाशस ऑफ इट
नाउ आइ लुक ऐट द जेड ट्रान
एड थिक ऑफ द डेज गॉन बाय '

मैंने फिर ली पाइ की कविताए खाजना शुरू कीं। कुछ मर पास एक सग्रह म थीं और कुछ त्रिनेत्र जाशा ने लाकर दीं। वह नौ साल चीन मे रहा है। दरअसल थाग शासन काल क तीनो महाकविया तू फू ला पाइ और वाग वइ का पढना एक विराट अनुभव है। ली पाइ का नाम कहीं-कहीं ली पा लिखा गया है । खैर उनकी एक और अद्भुत कविता है

'आय सट ड्रिकिग ऐड डिड नॉट नोटिस द डस्क
टिल फॉलिग पटल्स फिल्ड द फोल्ड्स ऑफ माइ ड्रेस
ड्रकन आय राज एड वाक्ड टु द मूनलिट स्ट्रीम
द बर्ड्स वर गॉन, एड मेन ऑल्सो फ्यू।'

कैसा महान बेसुधपन है! ला पाइ सम्राटा क दरबार म नहीं गया। वह विद्राही था। दुनियावी जजाल का भूल जाना इस विद्राह का एक लक्षण था। यह उसका हथियार था। ली पाइ की कविताआ क अनुवाद करने का मन है लकिन समस्या यह हे कि मैं चीनी भाषा से कतई अनजान हू और पता नहीं ला पाइ का शिल्प और काव्य विन्यास कैसा है। प्राचीन चीनी कविता का अग्रजी से अनुवाद करना अनर्थकारी भी हो सकता है। पूर्वी भाषाआ का स्वभाव पश्चिम की भाषाआ से बहुत भिन्न है। फिर भी कुछ उपाय करूँगा। आयावा क प्रयरी लाइट्स बुक स्टोर से मैं एक किताब खरीद लाया था- *'प्राचीन चाना कवयित्रियाँ'। अफसास कि मैंन आज तक उसका एक पेज भी नहीं पढा।*

8 नवबर '96

में कुछ देर उसके पास बैठकर राना चाहता था। मैं चाहता था वह सुने कि मेरी आत्मा म कैसा कोहराम कैसा विकलता कितना सुनसान है। मैं इस तरह रोना चाहता था जैस पाना या पड क पास बेठकर रा रहा हूँ। स्त्रियाँ मुझे पानी पड हवा जैसे जीवन तत्वो की तरह लगती है। उनके भीतर अथाह जलराशि है क्ई जगला की नाविडता है या वे हवाआ का घर हैं। मैं एक बच्चे की तरह बिलखना चाहता था जो कहीं अपमान सहकर आया हो। लकिन मैं रोया नहीं। शायद वह उस राने का नहीं समझ पायेगी क्योंकि राना कोई अक्लमदी का काम नहीं है क्यांकि वह यहा नहीं समझ पाता कि वह खुद क्या है। वह अपने स्वत्व को, अपने वास्तविक को पता नहीं कहाँ छिपाये रहती है। शायद तमाम औरत छिपने की इस कला को जानती हैं और पुरुष के राने को तो आमतौर पर बुरा ही माना जाता है। उन्हे शायद पता नहीं होता कि पुरुष क भीतर भी एक स्त्री छिपा हुई होती है। मैं यह भी नही कह पाया कि दखा मर भीतर एक स्त्रा है और वह कितना विकल है। शायद दूसरा कई चाजा का तरह स्त्रियाँ भी अपने को भूल चुकी हैं। उन्हे उदास लोग पसद नही हैं। वे अवसाद स प्रेम नहीं करतीं। उदास व्यक्ति के प्रति उनम बस एक सहानुभूति-सी जागती हे। सडका पर बाजारा म देखिये चहकत हुए नौजवाना के साथ खिलखिलाती हुई स्त्रियाँ तजी स चला जा रही हैं। शायद इसालिए स्त्रिया से मेरे सबध कभा सहज नहीं हो पाय। मित्रना होता ह कुछ प्रकाश दिखता है कोई दरवाजा खुलता है फिर अधकार हो जाता है। मुझम यह पता नहीं क्या हे कि मै ही दरवाजा बद कर देता हू। लेकिन तब भी सच्चाई यह है कि मरा जावन मेरी सारी सवेदना स्त्रिया से गहरे जुडी है।

10 नवबर '96

कविता कला वगैरह कोई विशेष योग्यता न होती बल्कि यह जीवन की विशेषता होती तो सभी मनुष्य कलाकार होते। वे अपना मनचाहा ससार निर्मित करते। हरेक क्रिया कला होती और जीवन रचना होता। तो क्या होता? बेचारा उम्माद सिंह कलादीर्घा में जाकर अपना आपा क्या खोता।

11 नवबर '96

कौन-सी उम्माद है कि बेकार हो चुकी बहुत सारी चीजो को सभाल कर रखता हू। खराब पडे पेन खो चुकी कलमा के ढक्कन स्याही की खाली रीफिले घिसे हुए रबर पुराने बैटरी सेल अधलिखी और लिखी हुई चिट्ठिया जिन पर टिकट लगे हैं और जिन्हे कभी पोस्ट नहीं कर पाया। और ऐसी ही कई चीजे। इनम ये घिसी हुई पसिलें सबसे ज्यादा हैं जो अब बच्चो के लिए बेकार हो चुकी हैं जिन्हे व घिस चुके हैं और नयी साबुत पेंसिलो की ओर चले गये हैं। मैंने डिब्बो मे देखा इतनी ज्यादा पेंसिल थीं कि उनसे एक मीलो लबी पेंसिल बन सकती थी। इन नन्हा पेंसिलो स मुझे पता नहीं क्यो एक आश्वस्ति एक सतोष एक उम्मीद का अनुभव होता है। मैं उन्ह फेकता नहीं क्योंकि शायद अत म यही चीजे मेरे कुछ काम आयगी। क्या इन पेंसिलों में बच्चो का अतीत उनका सरल बचपन उनकी बीती हुई उम्र छिपी है? मुझे वे जादुई चीजे लगती हैं। जीवन से दूर लेकिन अपना शेष जीवन जाती हुई।

* * *

मार्क्सवाद का विरोध आजकल हर कहीं है। जो कोई भी आता है उसे एक चपत लगाकर चला जाता है। बल्कि विरोध नहीं एक प्रसन्नता है कि चलो यह तो समाप्त हुआ। तुर्रा यह है कि ऐसा मानने वालो मे कुछ मार्क्सवादी भी हैं जो बाहर से किन्हीं पार्टियो के सदस्य हैं लेकिन भीतर से क्या हैं यह शोध का विषय है। कुछ भूतपूर्व मार्क्सवादी भी हैं कुछ ऐसे हैं जो 'तत्काल मार्क्सवाद नहीं तो कुछ नहीं' वाले विचार के हैं। दुख यह है कि ऐसे ज्यादातर लोगो के लिए मार्क्सवाद की सत्ता ही मार्क्सवाद था। यानी कम्युनिज्म या सोशलिज्म की राजसत्ता सर्वहारा के नाम पर उसकी सरकार उसका सगठन नीति विदेश नीति आदि। मसलन सोवियत सघ की विदेश नीति भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का मार्क्सवाद थी। मार्क्सवाद के नाम पर चलने वाली राजसत्ताए जब ध्वस्त हुईं तो मार्क्सवाद भी उनकी लेखे समाप्त हो गया। उनका विचार इतना कमजोर था कि वह सत्ता क मलबे में दब गया।

19 जुलाई 1997

एक-दूसरे का हाथ थाम हुए हम कुछ दूर तक गये। जैसे अपने-अपने अलग बचपन की ओर जा रहे हों। शाम थी और एक छोटा-सा तरल आसमान था और हम दो बादलो की तरह थे। बचपन का एक छोटा-सा जगल जिसे हमने बिना गुम हुए पार किया। एक पतली सी घुटनो से नीच तक की नदी थी जैस वह नदी का बचपन हो जिसम हमारे पैर भीगते ही रहते थे। घूमने-भटकने के लिए एक पूरी उम्र थी। बीच-बीच मे हवा चलती थी और वह सब कहती हुई प्रतीत होती थी जो हम एक-दूसरे से नहीं कह पा रहे थे। हवा के थोंके हमारे अनकहे शब्द थ। उजाले की स्मृति जैसा एक उजाला था।

उस उजाले म मैंने देखा उसके भीतर बारिश थी घास क मैदान थे सीढिया थीं जा दूर तक चली गयी थीं। शायद एक कमरे की आर जहा उसका अपना एक चद्रमा था अपन तारे और अपन सौरमडल थ। यह सब उमक भातर मैंन चुपचाप देख लिया हालाकि उसने मुझसे यही कहा कि सिर्फ अधेरा है और घास का मैदान नहीं बल्कि एक दलदल है जिसम धारे-धारे पर धसते हैं और वहा तारे नहीं जमीन पर गिर हुए पत्थर हैं और सीढिया नहीं हैं बल्कि एक खालीपन है एक शून्य एक कुछ नहीं और कमरा नहीं एक गोल गुबद है जहा से सिर्फ अपनी ही प्रतिध्वनि लौटती है। मै चुपचाप उसकी आर देखता रहा। मैंने जा कुछ कहा वह भाप की तरह हवा म विलीन हो गया जबकि उसके आसू देर तक उसके गालो पर और फिर जमान पर चमकते दिखाई दिय।

*   *   *

कई सारी चाज मिलते ही खो गयीं। कुछ चीजे मर पास बची है जा बचपन मे मिली थीं। यह और बात है कि बचपन मिलते ही खो गया था। अब अधेरा एक पुराने पडोसी की तरह जब तब मिल जाता है या मिलने चला आता है। कभी लिखूगा इस बार मे भी।

*   *   *

कुछ समय पहले इस तिकोने और करीने स रखे गय पार्क म उस जगह मरे एक परिचित वृद्ध की मृत्यु हुई थी जहा अब उनकी स्मृति मे सफेद रग की एक बच लगा दी गयी है। परिवारजनो न यह अच्छा काम किया है। पार्क म बैठन के लिए इससे कुछ और जगह हो गयी है। एक किनारे हरे पडा कटी-छटा झाडियो मौसमी फूला और कहीं हरी कहीं जली हुई घास के बीच आज सुबह इस बच पर मैंन तीन बूढा को आपस म झगडत हुए देखा। फिर दिन म जब छाह आ गयी तो एक गर्भवती युवती शायद घर के काम निबटाने के बाद वहा बैठकर सुस्ताती दिखाई दी। शाम को एक प्रेमी जोडा वहा काफी दर तक आहिस्ता-आहिस्ता बात करता मुस्कराता रहा। युवक लगातार युवती की ओर दखता था और युवती ज्यादातर पडा की तरफ देखती थी। रात म वहा मोहल्ल का कुछ बूढा स्त्रिया खाना खान बैठा। उनक चारा ओर रात की सैर पर निकले लोग टहल रहे थे। मैं घर की बालकनी से दर तक यह दृश्य देखता रहा। उन परिचित की स्मृति में लगी इस बेच क आस पास इतनी तरह की गतिविधि एक विचित्र-सा एहसास था।

14 अगस्त '97

कुछ अजब तरीके की वायवीय वाष्पाय लाकात्तर अलाकिक पराभौतिक और पारलौकिक किस्म की कविता इन दिनो दिखाई देती है। 'आत्मा की आख म निवास करता हुआ या रोता हुआ प्रागैतिहासिक ईश्वर सरीखी कविताए। इनका स्वाद विचित्र-सा है। एक बासीपन या सीलापन जिसे एक फिनॉमेनन' की तरह पेश किया जा रहा हो। इसकी जड कहीं पश्चिम म ही हैं। जैसे फ्रास वगैरह म जहा कविता इहलाक स विछिन्न हाकर सिर्फ एक भाषिक और आत्मिक कल्लोल रह गयी है। इधर के कुछ फ्रासीसी कविया को छिटपुट पढते हुए मुझे लगा कि वह भले ही आध्यात्मिक या आतरिक एकालाप की तरह दिखती हा है वह एक ग्राड' ही। ईव्स सा लरा के फैशन या मों ब्ला के फाउटनपना

या पर्स या टाई के ब्राडो की तरह। वह चारो ओर भीषण भौतिकता का निषेध नहीं करती बल्कि उसके बीच प्रसन्नतापूर्वक अपनी आलौकिकता करती है। शेष समाज से उसका कोई सवाद नहीं है। क्या ऐसी ही कविता हमारी हिंदी म भी आ गयी है? उसमे ईश्वर से सीधी मुलाकात है। बीच म समाज कहीं नहीं है। यह आश्चर्यजनक है और कविता स्वप्न और स्मृति के तर्क जहा तक जा पाते हैं उनसे भी परे लगती हैं। वह ऐसी चीजो से जो कि पहले से ही रहस्यमय हैं एक नया रहस्य बुनती है। लेकिन ठोस भौतिक अपने भार और आयतन वाली चीजो म भी रहस्य होता है और कविता इसी भौतिकता के रहस्यो मे निवास करती है। वह भूगोल म रहती है या उस वस्तु जगह और समय के जादू को खोजती है जो रहस्य अगर न हो तो निरा भौगोलिक वर्णन होगा। यह भी कह सकते हैं कि कविता चीजो के भूगोल का एक एद्रीय रोमाचक जादुई सम्मोहक और कभी-कभी गोपनीय वर्णन है। कितना कठिन और कितना आनददायक है भूगोल के ब्यौरो को उनकी मासलता मे चित्रित करना। उसमे पेड पहाड हवा नदी पानी, बादल बर्फ और आकाश ही नहीं स्त्रियो के हाद और स्तन ही नहीं कलम तबाकू चाय और टमाटर जैसी चीजे भी एद्रीय अनुभव बन जाती हैं। पाब्लो नेरूदा नाजिम हिकमत निराला जैसे कवियो की महानता शायद यही है।

अगस्त '97

'रुग्ण तन भग्न मन/जीवन विषण्ण वन।' निराला की ये पक्तियाँ कभी यो ही चलते-चलते याद आ जाती हैं। निराला शारीरिक व्याधि और मानसिक सताप को कितने गद्यात्मक ढग से और कैसी अपूर्व काव्यात्मकता के साथ बतलाते है। और फिर जीवन एक विषण्ण वन है। विषाद से भरा हुआ जगल। विषण्णता के लिए वन जैसी सघन विस्तृत और रहस्यमय उपस्थिति का प्रतीक। विषण्णता का अर्थ है उदासी दुख अवसाद विषाद। इसे व्यजित करने के लिए वन से ज्यादा समर्थ प्रतीक क्या हो सकता है। और इन उदास पक्तियो मे कैसा सगीत है। चाहे तो आप इसे गुनगुना सकते हैं। लेकिन खास बात यह है कि निराला अमूर्त्तन को व्यक्त करने के लिए अत्यत मूर्त ससार की ओर जाते हैं या मूर्त ससार के वर्णन के लिए अमूर्त्तनो का सहारा लेते हैं। यह द्वद्वात्मक प्रक्रिया उनके यहा अद्‌भुत है। जीवन के विषण्ण वन को हम पूरी तीव्रता से महसूस कर सकते हैं। विचलित कर देने वाली भौतिक उपस्थिति की तरह। दृश्यों की रहस्यमयता दृश्यो का आनद और दुख निराला म जितना मिलता है उतना क्या कहीं मिलेगा। निराला का एक और गीत याद आता है 'शिशिर की शर्वरी/हिस्र पशुओ भरी।' हम देख सकते हैं कि शिशिर की रात किस तरह वनैले पशुओ स भरी हुई है। वह रात हम घेर हुए लगती है। निराला के यहा कितना बडा सिनेमा है। इस तरह की कितनी ही अभिव्यक्तियाँ हैं। उनकी एक सूची बनायी जाय तो कितनी बडी दुनिया प्रकट होगी।

कवि की नोटबुक

–राजेश जाशी

भूलन क पक्ष मे

एक अद्भुत चाज है भूलना, भूल जाना। एक दिलचस्प प्राकृतिक गुण। शायद एक बहुत जरूरा प्रक्रिया। जब हम भूलते हैं ता नया खोजते हैं खोजने की कोशिश करते है। कुछ नया रचते है। भूलने स रचन का अद्भुत रिश्ता है। स्मृति की जा अनुगृज है रचना म वह अक्सर भूल गय 'कुछ का ध्वना है। स्मृति का सचेतन हस्तक्षेप रचना के लिये बहुत अच्छा या बहुत काम का नहीं।

विस्मृति न हो तो जीवन बहुत कठिन हागा। स्मृतिया से लदा फदा जीवन या रचना स्मृति विहीन रचना से भी ज्यादा बुरी है। उसम रचनाकार की क्षमता का उपयाग नहीं होता।

भूलना एकदम या पूरी तरह भूलना नहीं होता। कभी भी कहीं भी, न जाने किस प्रसग म कुछ ऐसा जो हम भूल गये थे अचानक याद आ जाता है आ सकता है। कई बार भूला हुआ याद नहीं आता पर याद आता है कि हम कुछ भूल गये है। उसको याद करने के लिये जब अपनी स्मृति पर बहुत जार देते हैं तो कुछ और ऐसा भी याद आ सकता है जो हम पहले भूल गय थ। भूलना एक प्रक्रिया जैसा है। एक सतत प्रक्रिया। जिसमे भूला हुआ, कभी भी उपस्थित हो सकता है और याद मे बनी हुई कोई बात कभी भी विस्मृत हो सकती है। कविता का क्या इस भूलने की प्रक्रिया से इस आदत से कोई जरूरी रिश्ता है।

कविता को इस भूलने ने हमेशा नया होने मे मदद की है। गद्य विस्मृति से अपना जीवन नही तलाश सकता। उसे ता सब कुछ याद करना हाता है। सब कुछ याद रखना होता है।

अतराल

कई बार ऐसे अतराल आत हैं जब कुछ भी लिखते नहीं बनता। कभी कभी य अतराल इतना बेचैनी ऊब और जडता स भर हाते है कि लगता ह जैस आप लिखना भूल गय हैं। एस समय म कई बार किसी दूसरे का लिखा पढने का भी मन नहीं होता। मन मार कर आप पढे भी तो रचना का रहस्य नहीं खुलता। उसकी प्रत्यक्ष खूबियों तक पर आँख नहीं टिकता। कई बार ऐसे अन्तराल बहुत बड भी हो जाते हैं।

शायद हर रचनाकार को ऐसे अतराल भुगतना ही पडता होगा। उम्र के साथ कई बार ऐसे अतराल जल्दी जल्दी आने लगते हैं और शायद बड होन लगत हैं। ठीक ठाक एसा क्या हाता है जानना मुश्किल

काम है। जब हम लिखना शुरू करते हैं तब हमारे पास उससे पहले के जीवन के कई बरस का अनुभव होता है। उस अनुभव को रचना प्रक्रिया से गुजरने के लिये भी एक पर्याप्त समय मिल चुका होता है। लेकिन बाद मे यह स्थिति बदल जाती है। अनुभव कम होने लगते हैं। अनुभव अगर कम न भी हो तो उसे पकने बनने के लिये एक समय लगेगा। क्या यह समय अतराल है?

कई अनुभव ऐसे होते हैं कि वे तत्काल रचना मे परिवर्तित हो जाते हैं। बहुत तीव्रता के साथ। पर कई अनुभव उतनी ही तेजी से रचना मे नहीं बदलते। यह अलग अलग लेखकों के साथ अलग अलग होगा। रचना प्रक्रिया की जो आतरिक मशीनरी है वह कुछ अनुभवो को तेजी से रूपान्तरित करने मे अभ्यस्त भी हो सकती है। लेकिन जीवन सतत परिवर्तनशील है और लगातार और अधिक जटिल हो रहा है। इसलिए नये अनुभव और अधिक जटिल होते जाते हैं। रचना प्रक्रिया की आतरिक मशीनरी इन नये अनुभवो को रूपान्तरित करने की अभ्यस्त नहीं है। उसे इसके लिये नये मकनिज्म पैदा करने होते हैं। इस सारी प्रक्रिया मे जो समय लगता है क्या वह अतराल है?

ऐसा हो सकता है शायद।

सगीत और कविता

न जाने कितनी बचैनिया तनावो अभावो और निरर्थक भाग दौड मे फसा हमारा आधुनिक जीवन, किसी म्यूजिक सिस्टम पर गाते किसी गायक के अपने मे समेट लेने वाले राग मे अपनी नींद ढूढ रहा है। सगीत कुछ कुछ एक स्त्री की तरह है।

कविता की बहुत भीतरी पर्तों मे जा एक सगीत है वह भी क्या हमे हमारी निजि चिताओं से परे किसी और लोक मे ले जाने का उपक्रम करता है? *शायद ठीक ठीक और हमेशा ऐसा नहीं होता होगा* पर कभी कभी तो ऐसा होता ही है ।

दो किस्म के लेखक

दरवाजे पर दस्तक होती है। यह दस्तक की आवाज है जो बिना दरवाजे खोले ही अदर आ जाती है। कविता भी ऐसी ही आवाज है। जो अदर आ जाती है। दरवाजे के खुलने का इतजार नहीं करती। तुम्हारी इजाजत की उसे जरूरत नहीं। वो इतनी पजेसिव है कि तुम्हे किसी और काम के लिये वह मुक्त नहीं होने देगी। कवि अपनी ही कविता का उपनिवेश है।

कविता का स्वभाव ही तय करेगा कि वह तुम्हे कितनी छूट देती है। रचनाकार कम से कम दो तरह के होते हैं। एक वे जो रचना के इस प्रकटन के सामने समर्पण कर देते हैं। रचने का सुख लेते हैं। और दूसरे तरह के रचनाकार अक्सर ऐसे समय मे पलायन करना चाहते हैं। लिखने से बचने की कोशिश करना चाहते हैं। रचना उनकी खोपडी पर सवार होती है और वे भागते फिरते हैं। यह कम आमदायक नहीं। इस भागने मे सुख कम है तकलीफ ज्यादा है। पर रचनाकार को लगता है रचना का सामना करना शायद और भी ज्यादा तकलीफदेह है। इस बचने और भागने की सबसे बडा विडम्बना यह है कि रचनाकार पूरी तरह बचना या भागना भी नहीं चाहता। वह रचना भी चाहता है और बचना भी। ये दो ऐसे विपरीत कर्म हैं जो एक साथ सभव नहीं।

निजि मुहावरे की कैद

कवि का निजि मुहावरा – इस पद पर मुझे अक्सर एक संदेह सा बना रहा है।

जो निजि मुहावरे बहुत आकर्षक बहुत चुस्त दुरूस्त कहना चाहिए बहुत स्मार्ट किस्म के होते हैं, वे कवि को बहुत कम स्वतन्त्रता देते हैं। इन मुहावरों की संरचना में ही आंतरिक स्वतन्त्रता कम होती है। इनमें नये रास्ते तलाशना कठिन होता है। इसलिये इनकी सामर्थ्य कम होती है। मुहावरा कितना ही बेहतर हो, अपने दोहराव के साथ वह मेनरिज्म बन ही जाता है। धूमिल विनोद कुमार शुक्ल या श्रीकांत वर्मा के मुहावरे भी एक समय के बाद उनकी कैद ही बने।

इस तरह के मुहावरों से एक समय के बाद मुक्त होना कठिन होता है। रचनाकार इसमें घुटन महसूस करता है पर उससे मुक्त होने का साहस नहीं जुटा पाता। उसे अपनी अस्मिता का खतरा सताने लगता है। अपनी रचना के बिखर जाने का डर लगता है।

कुछ मुहावरे ज्यादा लचीले होते हैं। वो कम चकाचौंध पैदा करते हैं। उन पर आँख-कान टिकाने के लिये थोड़ा श्रम करना होता है। इनमें जीवनानुभवों को ज्यादा से ज्यादा और बहुत अलग अलग तरह के अनुभवों को विषयों को भिन्न अर्न्तवस्तुओं को समेटने की ताब होती है। इस तरह ऐसे निजि मुहावरे चाहे एकाएक आकर्षित न कर पर वे रचना की कैद नहीं बनते। वे अर्न्तवस्तु के साथ परिमाणात्मक रूप से और कभी कभी गुणात्मक रूप से बदल जाते हैं। ऐसे मुहावरों से छूटने के लिये रचनाकार को अतिरिक्त श्रम नहीं करना पड़ता। वहां अस्मिता के खोने का कोई भय नहीं होता। तनाव नहीं होता।

आलोचना में कवि के निजि मुहावरे की जब जब चर्चा होती है तो अक्सर चुस्त मुहावरों पर ही ध्यान केन्द्रित किया जाता है। उस मुहावरे में आन्तरिक स्वतन्त्रता कितनी है उसमें विस्तार की गुंजाइश कितनी है वह कितना लचीला है इस पर कम ही बात होती है।

निजि मुहावरा कवि की मानसिकता का मामला भी है। एक अतिरिक्त अनुशासन जो रचना की अपनी आंतरिक मांग से बाहर का है सृजन के लिये बाधक ही होगा। (कभी कभी शार्टकट या सहूलियत भी) छंद से यह एक अर्थ में भिन्न मामला है क्योंकि छंद कवि द्वारा अर्जित नहीं ।

सनकीपन और रचना

गोर्की ने एक संस्मरण में लिखा है कहीं।

लंदन के एक संगीत भवन में गोर्की लेनिन के साथ गये हुए थे। वहाँ एक कार्यक्रम चल रहा था। इस कार्यक्रम में लेनिन मसखरों को देख कर बहुत खुश हुए। इस कार्यक्रम के बारे में लेनिन ने कहा कि सिनीसिज्म प्रचलित रीतियों की तार्किक असंगति को रेखांकित करके एक व्यंग्य के मकसद की पूर्ति करता है।

इसको पढ़ते हुए मुझे सबसे पहले ज्ञानरंजन की कहानी 'घंटा' और रघुवीर सहाय की 'आत्महत्या के विरूद्ध' की कविताएं याद आयीं।

सिनीसिज्म को हमने अक्सर एक निगेटिव चीज माना है। कला में उससे बचने की सलाहें दी जाती हैं। सिनीसिज्म का उपयोग एक सार्थक रचना में एक डिवाइस की तरह भी हो सकता है। शायद रघुवीर सहाय और ज्ञानरंजन के यहाँ यह एक डिवाइस या एक टूल की तरह इस्तेमाल होता है। लेकिन अकविता

म या श्रीकात वर्मा के यहाँ कई बार लगता है जैसे रचनाकार खुद ही सिनीसिज्म का विक्टिम हो गया है।

प्रचलित रीतियों की तार्किक असंगतियों को रेखांकित करने की समझ और मंशा अगर सही नहीं है तो सिनीसिज्म निषेध की ओर ले जायगा।

शब्द और वाक्य

आत्म केन्द्रित और मात्र अध्ययन की ओर उन्मुख लेखक में अक्सर नए नए शब्दों के अन्वेषण या नये शब्द गढ़ने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। उसकी रचना में ये शब्द अलग से टके हुए से चमकते हुए से दिख जाते हैं। कई बार तो यहाँ तक होता है कि शब्द ही उसकी रचना में प्रमुख हो जाते हैं। ये शब्द ही उसकी पहचान बन जाते हैं। और एक हद तक उसकी कैद भी।

जीवन की ओर देखने वाले लेखक में वाक्य ज्यादा प्रमुख होता है। वाक्यपदीय में तो भर्तृहरि ने पूरे काव्य को एक महा-वाक्य कहा है। त्रिलोचन की रचना मे भी और उनकी बातचीत में भी इस वाक्य पर बहुत जोर है। एक पूरा वाक्य लिखो-वो अक्सर इस बात को कहते हैं।

वाक्य ही आगे जाकर मुहावरे का रूप लेता है। जीवन की ओर देखने वाली रचना में मुहावरे अधिक होते हैं। बल्कि उससे नये मुहावरे का जन्म होता है।

यहाँ जब नये शब्द भी प्रवेश करते हैं तो वे जीवन की हलचल के बीच बने-तपे शब्द होते हैं। और वे वाक्य में अपनी जगह बनाकर ही प्रवेश करते हैं।

कविता और कुर्सी

कविता कोई फिनिश्ड प्रोडक्ट नहीं है। वह एक प्रक्रिया है। इसलिए कवि और पाठक के बीच का सम्बंध भी एक सतत सम्बंध है। कुर्सी बनाने के बाद उसे खरीद लेने वाले और उसे बनाने वाले के बीच जिस तरह सम्बंध समाप्त हो जाता है कवि और पाठक के बीच ऐसा नहीं होता।

लय की कुदाल

कविता में लय अगर बहुत तीव्र है तो वह कई बार ऐसे अनुभवों को भी हमारे अन्तस से बाहर ले आती है जिनके बारे में कविता के प्रारंभ में हमने नहीं सोचा था। ये अनुभव विचार या संवेदनाएं कहीं भीतर थीं पर उनके बारे में हमें मालूम नहीं था। एक तीव्र लय जैसे उन्हें हमारे जाने बिना ही हमारे भीतर से बाहर उलीच देती है।

तीव्र लय तीव्र आवेगों के साथ गुथी बुनी हो सकती है या अति नाटकीयता के साथ भी। मुक्तिबोध की काव्य लय और श्रीकांत वर्मा की काव्य लय भिन्न है।

लय रूप है या अन्तरवस्तु?

लय के पीछे एक आवेग है नाटकीयता है क्रोध है खीज है पता नहीं क्या क्या है। ऐसी अनगिन चीजें अनगिन लयों को बना सकती हैं। जब एक लय मिल जाती है या हमारा कवि मन जब किसी एक लय को पा लेता है बना लेता है तब वह लय स्वतन्त्र रूप से भी अपना काम करने लगती है। असरदार वह हमारे जीवनानुभवों को विचारों को संवेदनाओं को कई बार हमारे विरोधाभासों और

कुठाओ को भी ऊपर के सारे अवरोधो को हटाती हुई झाड झकाडो मिट्टी की पर्तों को हटाती और चट्टानो को तोड कर बाहर ले आती है।

लय एक कुदाल की तरह काम करती है। इसे जैसे कोई एक स्वचालित मशीन चलाती है। वह हमारे अन्तस की कठिन पर्तों के नीचे दबे बहुत सारे अच्छे और बुरे दोनो को बाहर ला सकती है।

लय को जब जब आवेग से काटकर या उसे दबाकर माइल्ड करने नर्म करने की कोशिश होती है तो वह कविता को कहीं न कहीं बाधा पहुँचाती है। जब लय जीवन के राग रग से प्राप्त नहीं की जाती तो वह अक्सर माइल्ड होती है। इस जीवन हीन लय की कमियो को ढापने के लिये कविता चमत्कारो और जडाऊ किस्म के शिल्पो की ओर मुडती है।

लय सिर्फ उत्खनन का ही काम नहीं करती वह रचती भी है। जीवन का पुनर्सृजन करती है और अपने काल का भी।

कविता और वस्तुएँ

दरवाजे की घटी बजती है ट्रिन टिन ।

दरवाजा खोलता हूँ तो ढेर तमाम वस्तुए मुझे धकियाती हुई प्रवेश करती है।

– 'ए ए कहाँ चली आ रही हो। मैने तुम्हे नहीं बुलाया। मुझे तुम्हारी जरूरत भी नहीं। निकलो यहाँ से।' मै कहता हूँ।

– 'तुमने बुलाया या नहीं इससे कोई खास फर्क नहीं पडता। यह हमारा समय है। वस्तुओ की महा विजय का समय। हम जहाँ चाहे जा सकते हैं। हमने सारे बधन तोड डाले है। हम मुक्त हैं कहीं भी आने जाने को। अब हमे कोई कहीं भी घुसने से नहीं रोक सकता।' वस्तुए कहती है एक साथ।

– लेकिन यह मेरा घर है ।

– अब कोई भी जगह तुम्हारी नहीं है। स्पेस और समय की वे सारी धारणाए बदल चुकी हैं। तुम अब केन्द्र से बाहर चले गये हो।

यह रूपक सा है। पर मुझे इधर की कविता मे यह बात तेजी से महसूस हुई है कि उसमे विवरण बढ रहे है। वस्तुओ की उपस्थिति बढ रही है। और इस सब के साथ ही उसमे कविता मे भाषा का बोझ बढ रहा है। कविता मे अब ज्यादा शब्द ज्यादा भाषा का उपयोग हो रहा है। उसमे शब्दातराल कम है। भाषा के मामले मे वह मितव्ययी कविता नहीं है। वह ज्यादा बोलती है।

क्या यह इस नये बाजार की भाषा है। क्या यह वस्तुओ के आक्रमण से उपजी भाषा है। क्या कविता सिर्फ विचार के स्तर पर ही विरोध कर रही है? व्यवहार के स्तर पर इस नई प्रवृत्ति के सामने उसने घुटने टेक दिये हैं? या यह कि उसके व्यवहार और विचार के बीच कोई विरोधाभास बन रहा है?

समय की गति इतनी तीव्र हो गयी है कि रुक कर सोचने का अवकाश शायद रचनाकार के पास नहीं है ।

दिल्ली मे उनींदे

–गगन गिल

फरवरा की शाम । वप 1994। राज जेसा दिन है। हवा म ठडक है। म अभा-अभी 'स्वाति' स साहित्य अकादमा के कुछ पकाशन खराद कर इस सडक पर पहुचा हू। मदिर मार्ग पर। सडक सुनसान है। बिरला मदिर के बाहर दो-एक ऑटो खड हैं। एक से मैं पूछता हू- चलना हे? वह कहता हैं बैठिये। में गिरती-पडती अपना किताब साट पर जमाती हू। उसे चलन म दर है। उसके शरार का हरकत म एक अजाब-सा थकान है। वह अपना साट क नाचे से निकाल कर एक गदा उधडा आधा बाह का भूरा स्वेटर पहन रहा हे। धारे-धारे।

अभी मरा ध्यान उसक चेहर का तरफ नहीं गया। उसे म बाद म दखूगा। ऑटा क ड्राइविग आईन म। जिसमे उसकी आखे ओर भी धसा दिखगा ओर हड्डिया ओर भी उभरीं। उसके चेहरे पर तब भूख आर बामारी के अलावा एक ओर भा चाज दिखेगा। अभी मुझे उस चीज का नाम नहीं मालूम। आने वाले दिना मे मैं उसके लिए बिलकुल सटाक कोई शब्द ढूढ पाऊगी। लेकिन अभा नहीं। वह बाद मे होगा।

आखिर वह चलता हे। ऑटो चलत हा उसकी खासा शुरू हो जाता है। मालूम नहीं उसे ठड लग रही हे या हम ट्रैफिक का दमघोट के बाचा-बाच आ गये हैं। हमने दो मोड पार कर लिये हैं लेकिन न उसकी खासा रुकती ह न उसका ऑटो। इसके बाद ही मे उसका चेहरा देखती हू। ड्राइविग आईने म।

'यह खासा कब स ह?' में पाछ बैठा पूछता हू।

'होगा कोई 10-12 साल से।

'किसी डॉक्टर को नहीं दिखाया?

पैसा भी तो चाहिए उसक लिए'

हमारा बातचीत टूट जाता ह। सडक के दोनो ओर ट्रैफिक जा रहा है। सारी दुनिया कार्य-व्यापार म लगा हे। रुपये का सिक्का सब को दाडा रहा हे। किसा के हिस्से कम, किसी के हिस्से ज्यादा। उसका दम फिर फूल रहा है।

'आप रहत कहा है?' म बिल-बोर्ड पढते-पढते पूछती हू।

'इसा ऑटो म।

'इसा ऑटो म?' इस बार मैं उस आईन म दखत हुए पूछता हू।

हां।' यह पहली बार नजाब म आईन म दखता है जा पर आप मरमान का दख रहा हा। अभा मुझे उसक उत्तर का पूरा अर्थ समझ म नहीं आया। मैंने इससे पहल कभा किसी बघर क बारे म नहीं साचा। कभा वास्ता ही नहीं पडा। घर का न हाना क्या हाता है एक बेफिक्र नींद का न मिलना किसा को अन्त म कहा सुराख कर सकता है - अभी मुझे कुछ नहीं मालूम।

'आप दिल्ली कब आय थ?'

'1979 म।

आपका मतलब आप तब से सडक पर हा है?'

'हा।

याना उस बिना साय 14 वर्ष बात गय। म उस दख कर यह ता बता सकता हू कि यह गराब है कि उसक पास पूर कपड नहीं हैं कि वह किसा भा एस व्यक्ति जैसा लगता है, जा फाके का अभ्यस्त है। लकिन बघर? बघर ता यह कहीं स नहीं लगता।

आपका मतलब आप इस 3 फाट लबा पिछला सीट पर सात है?

हा।

और आपको नाज?'

'उन पर आप बैठा हैं।

यह बताता है कि मेरा साट क नाच उसका बक्सा ह जिसम एक कबल है। एक जाडी कपड हैं और एक कटारा है। कटारा पानी पान क काम आता है और खाना रखने क भा।

'आप खाना कहा खात हैं?

'किसा भा ढाब म।

'और बाथरूम क लिए?'

पब्लिक शौचालय हैं। नहा मैं कहीं भा लता हू। सडक क किनार किसा भा नल पर। अकसर पचकुइया राड पर नहाता हू। इतवार क दिन। यह जगह ठीक है। यहा मरे जैस कई लोग जाते हैं।

मरा घर आ गया है। उसका माटर देखता हू, तो शक होता है कि कहा रास्ते म अटक तो नहीं गया था। उससे पूछता हू, 'आपका माटर ठाक तो है न? वह कहता है जी बिलकुल ठाक। पिछले छह साला से एक पैसे का फर्क नहीं।

उतरत-उतरते उससे पूछता हू - 'सुनिये क्या हम कल किसी समय मिल सकते हैं?

'क्या?' वह जानना चाहता है।

'मैं आपके बारे मे सब जानना चाहता हू।'

उससे कुछ होगा?'

'क्या?

क्या उसक बाद सरकार मर लिये कुछ करेगी?'

'यह तो कह नहीं सकती। लेकिन अगर आप बात करने के लिए हा कर तो कम-से-कम आम लोगा का आपके जावन के बारे म पता चलगा।'

'और आपको क्या मिलगा?'

'मैं अपना काम करूंगा। मैं रेडियो के लिए प्रोग्राम बना रहा हूं।'

'ठीक है। मैं सब समझ रहा हूं। आपके पास भी तो कोई ताकत नहीं है। आप भी मेरे जैसा हैं। मैं रोड पर सवारी ढूंढता हूं और आप कहानी। अगर मेरी कहानी सुनने से आपका काम होता है तो मैं आ जाऊंगा।'

कितने बजे?'

'सुबह दस बजे?

'बहुत अच्छा।

अगले दिन वह आता है। मेरे घर। करीब साढ़े पांच फीट ऊंची उसकी दुबली काया वह कमरे के दरवाजे पर ही सिकुड़ जाता है। वह सोफा पर नहीं फर्श पर बैठ जाता है।

'मुझे यहीं बैठने दीजिये। मैं आपका सोफा गंदा नहीं करना चाहता।'

मैं कल की अपनी जान-पहचान के नाते उसे दोस्ताना मुस्कान देती हूं। उसके शरीर में चेहरे पर, हाथ-पांव में इतनी सारी नाली रगें हैं- मैंने पहले नहीं देखा था। वह बैठता है तो जैसे उसकी सारी भूख-प्यास उसके साथ बैठ जाता है।

'कुछ चाय वगैरा लेंगे?

वह कुछ झिझकता कुछ शर्माता है। सैंडी मेरे हारवर्ड के दिनों का साथी अपना टेपरिकार्डर लगा रहा है। लैटिन अमरीका के देशों के बाद यह पहला मौका है जब उसका सामना भारतीय गरीबी से पड़ रहा है। हम अमरीका के नेशनल पब्लिक रेडियो के लिए 'अन्न और भूख' विषय पर प्रोग्राम बना रहे थे कि मुझे यह आँटो ड्राइवर टकरा गया। अब हम उसकी नींद के बारे में जानना चाहते हैं असंभव नींद के बारे में। मैं चाय बना लाती हूं ताकि हम शुरूआती अटपटेपन से निकल सकें।

'नाम क्या है आपका?'

'राजा राम'

'घर कहां है?'

'उन्नाव यू पी में।'

'आँटो चलाना कैसे शुरू किया?

'पहले आठ साल तक तो रिक्शा चलाता रहा। चांदनी चौक में। फिर एक बहुत दयालु अमीर आदमी से मुलाकात हो गयी। डेढ़ साल मैंने उसकी सेवा की। उसे रोज ले जाता था। एक पैसा नहीं लिया। उसने बदले में मुझे यह पुराना आँटो ले दिया जिसे अब चलाता हूं।'

'उससे पहले क्या करते थे?'

गांव में मजदूरी करता था खेतों में। घर हमारा बारिशों में ढह गया था। दोबारा मैं उसे बनवा नहीं पाया। भूखमरी थी। एक दिन मैंने तय किया कि दिल्ली चलें।'

'गांव में कोई जमीन नहीं थी?

'नहीं हमारे पास कभी जमीन नहीं रही पुश्तों में। मेरा बाप अंधा हो गया था जब मैं 14-15 साल का था। और गांव में मुझे कोई काम नहीं मिलता था। कोई दूसरा चारा नहीं था।'

'लेकिन दिल्ला ही क्या आना चाहते थे?'

'गाव म मैं सिर पर बोझा ढाता था। और एक रात मैंने सोचा मेरे सिर पर छत तो वैसे भी नहीं है। क्या फर्क पडता है कि मैं गाव क खुले म सोऊ या दिल्ली का सडक पर? सो पहले मैं कानपुर गया फिर वहा से दिल्ली।'

'अब खुश हैं यहा पर?'

'पेट भरने आया था। मुझे खुशी है कि वह भर लेता हू। और ऑटो चलाता हू। सिर पर बोझा उठाने से तो अच्छा ही है। नहीं?'

मुझे नहीं मालूम बोझा ढाते हुए यह ससार कैसा दाखता है सडक पर सात हुए कैसा ऑटा म रहते हुए कैसा। मरे पास उसके प्रश्न का कोई उत्तर नहीं।

'ऑटा चलाते हुए कैसा लगता है?'

'ऑटा बहुत मुश्किल सवारी है। सारा वक्त खडखड करता है। जवान ड्राइवरा के लिए तो ठीक है मरे जैसो क लिए नहा। आपको पता है ऑटो चलाते हुए कोई मर भी सकता है? और फिर सब तरफ स धुआ। मुझे तो तब अच्छा लगता है जब कोई ग्राहक किसी खुला तरफ जा रहा हा ।

'आपका यह खासी क्या धुए के कारण?

'पता नहीं किस कारण। शायद भगवान की सजा हो। मैं तो बस यही जानता हू कि मैं जब धुए म सास लेता हू मेरा अदर तक सिकुड जाता है।'

'उम्र क्या होगी आपकी?'

'क्या पता? शायद पचास साल। बस इतना याद है सन '62 म म पाचवा म पढता था। और स्कूल जाना मैंने 8 की उम्र से शुरू किया था।'

मैं हिसाब लगाती हू। मेरे हिसाब स उसे 40 के ऊपर नहीं हाना चाहिए। तब क्या उसकी थकान के सब साल उसकी उम्र मे जुड गये हैं?

'आपके लिए एक अच्छा दिन क्या होता है?

'अच्छा दिन' कहते ही मरे मुह म पानी भर आता है। वर्षा मे धुल हरे पत्ते भीगी-भीगी हवा, अधगीली सडकें – सब आखा क सामने घूम जाते है।

'मुझे नहीं मालूम अच्छा दिन क्या हाता है। दो वक्त की राटा मिल जाये गनामत है।'

यह मेरा पहला पाठ है। हम एक ही शहर म रहत हुए दो अलग मौसमा मे रहते हैं। अन्न और भूख के मौसम म। घर और बघरी क मौसम म।

'अपने जीवन की कोई दिलचस्प घटना याद है आपको?'

'मेरे जीवन में क्या है? ऐसा कुछ नहीं जिसे याद कर सकू।'

'आपने कल कहा था, आप ऑटो म रहते है?'

'हा हालाकि मेरे लाइसस म कनाट प्लेस का एक दुकान का पता लिखा है। लेकिन मै वहा साता नहीं सोता मै ऑटो मे ही हू। खाना ढावे म। दस-पद्रह दिन म कभी एक बार राड साइड मे रुक कर नहाता हू। वह छुट्टी का दिन हाता है। कपड धोता हू धूप म सुखाता हू ओर जब सूख जाते हैं ता उन्ह पहन वापस राड पर आ जाता हू।'

ऑटो म सात हुए कैसा लगता है।'

ऑटो म आप सो नहीं सकते। म 2-3 घंटे साता हू। लकिन साधा लेट नहीं सकता, करवट नहीं ले सकता।'

कभा किसा पाक म जाकर सान की इच्छा हाती है? या सडक के किनारे ही?'

नहीं। अपना ऑटो ऐसे छोड कर थोड ही जा सकता हू।'

तव ता आपको अक्सर झपकिया आती हागी?'

'मरा शरीर इतने अर्से से जगा हुआ है कि मैं अब ज्यादा देर तक सो नहीं पाता। और अगर किसी अच्छी रात नींद आ भी जाये तो पुलिस आ जाती है। वे मुझे उठा दते हैं और कहत हैं दूसरा जगह जाकर साआ। एसा रात वडी मुश्किल स कटता हैं। रात भर एक जगह से दूसरी जगह भटकत रहना पडता है।

रात को सवारी निठाते है?'

'अगर काई आ जाता है और मुझम शक्ति हाती है तो मै चला जाता हू।

उसक 14 वर्षो का उनींदा, उस उनींद म फैला दिल्ला का सडक हम सबक 14 वर्षो का आरामभरा राते - जैस किसी खुला गुदडी की तरह बिखर जाती हैं। जैसे उसकी उनींद के पाप म हम सबके आराम का हाथ हो।

महीने म कितनी कमाई हो जाती होगी?'

'*कुछ तय नहीं है। कभी एक घटे म 3 सवारिया मिल जाती हैं और कभी पूरे दिन म एक भी* नहीं अब देखिय मेरी कमाई आप पर निर्भर करती ह। आप घर स निकलगा ऑटो लगा ता मरा दिन अच्छा होगा। लेकिन अगर आप घर से ही नहीं निकलतीं तो मै सडक पर इतजार करता रहूगा। वैसे मरा खयाल हे रोज के सौ रुपय हो ही जाते हाग। खर्चा-पानी निकाल कर पच्चीस तो बच ही जाते हैं।'

कुछ जमा कर पात हैं?'

हा कभी 10 रु कभी 5 र । और कभी अपनी जमा रकम म स हा खाना पडता है।'

अपने पैस कहा रखते हैं?'

'एक-दो महीने ता अपने पास रखता हू। फिर जब दा-तीन सौ रुपये हो जाते हैं तो बक जाता हू। वह जिस आदमी का मैने बताया था उसने बैंक म मरा खाता भी खुलवा दिया था।'

'इस समय कितनी बचत होगी आपकी?

पिछले सब साला म कुल बारह हजार जमा किये थे। वह सब गाव ले गया था ताकि चारदीवारी *बनवा सकू। उसमें 11 000 खर्च हा गय। अब धार-धीर कमरा भी बनवा लूगा।'*

घर मे पीछ कोई है?

'नहीं।'

'फिर चारदावारी का क्या फायदा?'

'अपने बुढाप का भी तो सोचना है। नहीं? मैंन चारदीवारी बनवायी ताकि जब बूढा हा जाउ ता घर जा सकू। अब कम-स-कम चारदीवारी ता है।

उस पैसे स आप दिल्ली म कोई छोटी-माटी जगह नहीं दख सकत थे?'

दिल्ला मरा घर ता नहीं है। हर वक्त मैं अपने गाव के बारे म साचता रहता हू। वहा मैं पैदा

हुआ वहा मरना चाहता हू।'

'आपकी शादी नहीं हुई?

नहीं। जब मरी शादी की उम्र थी तब मैं सिर्फ 2-3 रु कमा पाता था एक दिन म। बाप अधा था। उन 2 रुपया म 2 किलो आटा आता था। और उस 2 किलो आटे म सिफ दो लोगा का गुजर हो सकता था। तो मैं तभी जान गया था कि मरे भाग्य मे शादी नहीं है।'

'इसका दुख होता है क्या?

'अर नहीं। मै ता भाग्यवान समझता हू खुद को कि मरा कोई परिवार नही कोई जिम्मदारी नहीं। अगर तब मैंने शादी की होता तो मुझे अपन बाप का भूखा रखना पडता ताकि मै अपनी ओरत का पट भर सकू। और आप ही बताइय, एक औरत किस काम की है?'

भूख आदमी के लिए बघर आदमी क लिए-एक औरत किस काम का है? क्या किसी क पास इसका उत्तर है?

'क्या साइकिल-रिक्शा की बजाय ऑटो म ज्यादा कमायी हाती हे?

कुल मिलाकर उतना हो पडता है। फर्क है शारीरिक मेहनत म। रिक्शा म बहुत जार लगाना पडता है। उसके लिए खुराक चाहिए। ऑटो का पटोल चाहिए। बचता दोना म एक जितना ही है।

'जब पहली बार ऑटो लिया कैसा लगा था?'

'पहले दिन जब ऑटो लिया मैंन सोचा अब मै जल्द ही अमीर होने वाला हू। इतने साल मैं किस्त देता रहा मरम्मत के पैसे भरता रहा। और जमा रकम म से खाता रहा। अमीर नहीं हो सका मै।'

'सारा दिन जब आप ऑटो चलात हैं क्या सोचते रहत हैं?'

'मै सारा दिन ऑटा कहा चलाता हू? मैं सिर्फ 4 घंटे ऑटा चलाता हू।

'लकिन अभी ता आपने कहा आप सारा दिन रोड पर रहत हैं?'

'हा। वह सच है। लेकिन आप 4 घटे मेरी नींद के निकाल दीजिय। दा घट रात म दा घटे दिन मे। आप देखिये आप ऑटा लेती हैं मै आपको 15-20 मिनट म पहुचा दता हू। फिर में इतजार करता हू। कभी आधा घटा कभी एक घटा। कभी पूरा दिन।'

तो कितने घटे आप गाडी चलाते हैं?

4 घटे। सोलह घटे मैं इतजार करता हू।'

अच्छा तो - फिर आप क्या साचते है गाडी चलाते हुए?'

'जब चला रहा होता हू तो पैस क बारे मे साचता हू। कि अब कुछ पैसा मिलगा। और उस मैं जो दूसरी सवारी से पैसा मिलेगा उसम जोड दूगा और फिर मैं देखता हू कि मैं अपन गाव जा रहा हू घर बनवा रहा हू परचून की दुकान खोल रहा हू यह हर बार होता है हर दिन।'

'और जब आप इतजार कर रहे होते हैं?'

'तब मैं सोचता हू यह मरे पिछले जन्मा के किये का फल है। इसलिए इस जन्म म मरा कोइ घर नहीं है इसीलिए मैं यहा सडकों पर धक्का खा रहा हू।'

'कभी अगल जन्म क बारे मे साचत हैं?

हा मैं खुद से कहता हू अगर मैंने इस जन्म म कोई पाप नहीं किया अगर मैं ईमानदारी से कमाई करता रहा तो शायद अगल जन्म म मेरी इतनी मुश्किल न हो। आपने दखा हागा मैंने भरसक अपना

मीटर ठीक रखने की कोशिश की है। इसलिए नहीं कि पुलिस जुमाना करगी तो कहा से भरूगा। बल्कि इसलिए कि मैं ईश्वर स डरता हू

'कौन-से ईश्वर से?'

'भगवान राम से। मैं हर शाम बिरला मदिर जाता हू पूजा क लिए। वहीं ता आप मिलीं थी।'

'लेकिन वहा ता राम की कोई मूर्ति नहीं? वह तो राधा-कृष्ण का मदिर है।'

'हा लकिन भगवान विष्णु की मूर्ति तो है। भगवान राम विष्णु का ही अवतार हैं। हम हिदुआ को अपने भगवान तक पहुचने के सब रास्ते मालूम है।'

'ता क्या कभा किसी सवारी स बईमानी करन का विचार नहीं आया?'

'दखिय मैं जब 5 साल का था मरी मा गुजर गयी। दो छाटी बहन थीं- एक दो साल की एक तीन साल की। फिर व दाना मर गयीं। पद्रह का था जब मेरा बाप अधा हा गया। तब मुझे लगा यह ईश्वर की सजा है। तब मन अपन स कहा मैं ईमानदारी से ही जिऊगा चाहे जा हो। तभी मैं उस पाडा और कष्ट से बच पाऊगा।'

'क्या आपको ईश्वर म सचमुच विश्वास है?'

'हा। एक बार मैं 8 दिन तक भूख रहा था और मरा नहीं। आपका क्या विचार है यदि ईश्वर न होता तो क्या मैं बच सकता था?'

आपका मतलब है आप यहा दिल्ली म 8 दिन तक भूखे रहे थे?'

हा दिल्ली म। तब मैंन यह ऑटो अभी लिया ही था। सब पैस खर्च हो गये थे। कि यह खराब हो गया। मरे पास न इसकी मरम्मत क पैसे थे न खाना खाने के। तब मैं 8 दिन तक पानी पी कर जिदा रहा।'

नुट हैम्सन क उपन्यास 'भूख' का नायक क्या ऐसा ही रहा होगा? वह अपने मुह मे पत्थर रख कर चूसता रहता था ताकि शरीर को भाजन का भ्रम बना रहे। उसने अपने मुह म क्या रखा हागा? कौन-से सब्र का पत्थर?

'जिन सवारिया को आप ले जात हैं कभी उनके बार में सोचत हैं?'

'मेरे पास किसी और के लिए सोचने की फुर्सत कहा है? मरी अपनी जिदगी इतनी सासत में है।

'इतने टैफिक म गाडी चलाते हुए कैसा लगता है?'

'जब दफ्तर का समय होता है तब सवारी पिछली सीट पर बैठी बाहर दखती रहती है जबकि हम आजू-बाजू की गाडिया का ध्यान रखना हाता है कि कहीं टच न हो जाये। लाल बत्ती हाते ही मैं तनाव मे आ जाता हू।'

क्या ऐसा करना मुश्किल है?'

'है भी और नहीं भा। अगर तुम्हारा ध्यान स्थिर है तो कोई दिक्कत नहीं लकिन जरा चूक हुई नहीं कि तुम मुसीबत म हो सब स बडी मुश्किल धुए की है। जब दम घुट रहा हा तब भी काशिश यही रहता है कि आखे खुली रह गाडी पर हाथो की पकड बराबर बनी रह।'

'कभी सैलानी मिलते हैं?

'हा। कभी कभार। कहते हैं हम घुमाओ। चिडियाघर ले चला या लाल किला या बिरला मदिर। लेकिन वा मुझसे कभी सवाल नहा पूछते। बात नहीं करते। इन 8 सालो मे आप पहली है जिसने मुझसे

बात की।'

'आपको मुझसे कुछ पूछना है?'

'मै आपस कुछ पूछने वाला कौन होता हू? वैसे भी मैंने खुद को भगवान भरासे छाड रखा है।'

आपसे फिर कभी मिलना हो तो कहा?'

'हर शाम मैं बिरला मदिर जाता हू। कराब 5 बजे। वहा करीब एक घटा रहता हू। वहीं क ढाबे म चाय पीता हू। कभी गुजर रही हो, ता वहा झाक सकती हैं।'

इस तरह वह उठता हे और चला जाता हे। बेघर राजा। बघर राम। मैं उसके माता-पिता के बारे मे सोचती हू जो उसके जन्म पर बहुत खुश हुए होगे। परिवार का पहला पुत्र। जब उन्हाने उसका नामकरण किया होगा तो कभी सोचा होगा कि उसका जीवन एसी विडबना मे बातगा?

जब उसने कहा आप पहला हे जिसने मुझसे बात की - तो उसकी आवाज घरघराने लगी। यहा मरे घर मे। जब वह जाने की तेयारा कर रहा था मे तमाम तरह का योजनाए सोच रही थी जिससे उसे कुछ राहत मिल सके। शायद मे उसे किसा डॉक्टर के पास ले जा सकता हू कि पता चल उसे 12 साल से यह खासी क्या है? या उसस कहू कि वह चाहे तो मेरे घर के बाथरूम म गर्म पाना से स्नान कर सकता है? या कुछ कपडे दे दू?

लेकिन मेरा शरार ऐसा जड हो गया था कि समय रहते मुझे कुछ नहीं सूझा। हर चाज उसक लिए कम लगी। निरर्थक लगी। मेने उसे सिर्फ एक प्याला चाय दा। क्या यह 'कहीं- नहीं वाला घर था जिसमे हम चाय पी रहे थे? क्या यह 'कहीं- नहीं' वाले घर का चाय था जो मैं उसे दे रही थी?

ज्यादातर हिदू विश्वास करते हैं कि ईश्वर सोता रहता है। इसलिए वे जब मदिर जाते हे घटा बजाते हैं ताकि भातर खबर हो जाये। क्या राजा राम भी घटा बजाता होगा? क्या उसकी खबर ईश्वर को मिल जाती होगी? या यह भा तो हो सकता हे कि वह खुद ही ईश्वर रहा हो - भेस बदल कर घूमता ईश्वर- जिससे कही-न-कहीं कभी-न-कभी टकरा जाने की आकाक्षा हम सबको रहती है। वृक्ष मे ईश्वर तितली मे ईश्वर ब्राह्मण मे भिखारी मे हर चाज मे ईश्वर। उसने कहा भी था- वह राजा राम है। क्या नहीं?

पाश के पत्र

डॉ चमन लाल

पाश ने जावन म काफा पत्र लिखे। इनमे से अनेक पत्रो मे उसके साहित्य चितन जावन दर्शन की झलक मिलती ह। साथ हा उसक मोह भरे दिल का लगाव भा झलकता है। यहाँ प्रस्तुत सुरजात पातर के नाम पत्र उसका बहुचर्चित पत्र है जो 1974 के आसपास लिखा जाकर भा खालिस्तानियो द्वारा उसकी बुजदिलाल हत्या के बाद ही छप कर सामन आया। इस पत्र स उस दार का पजाबा कविता का एक झलक भा मिलती है। शमशार सधू व डॉ रूपिदर के नाम पत्रो मे पाश का जीवनदर्शन नजर आता है। पाश के पत्र हो या उसका अन्य लेखन- जावन स उसका गहरा लगाव उसके हर शब्द से झलकता है। -चमनलाल

सुरजीत पातर के नाम पाश का पत्र

मर प्रिय सुरजात पातर

मैं उस रात के जश्न के बाद अगली सुबह ही पकडा गया था। उससे पहल जब मं लुधियाना आया था तो बडी बचैनी मे था। कुछ और दोस्ता के कारण मैं अपने भातर का हलचल का तुम्हार सामन नहीं रख सका था। वैम भा मुझ अतरतम का बाता को हू-ब-हू प्रकट करने की जाच नहीं है। मैं जो कहना चाहता हू उसका कुछ हिस्सा ही कह पाता हू-वह भी ढेर सी लेलो पापो के साथ। यह सिर्फ बातचीत म ही हाता है कविता म नहीं। मरी चेतना सिफ तुम्हारी कविताआ सम्बन्धा ही नहीं थी मैं समूची पजाबी कविता सबधा अपना कुछ आशकाए तुम्हार साथ साझी करना चाहता था। - मुझे दु ख है बल्कि शर्म है कि बात न सिर्फ उस तरह नहीं हुई वरन् उसस बिल्कुल उलट हा गई है - मैं उन सौभाग्यशालिया मे सबम बौंगा (कमअक्ल) हू जा तुम्हारी महान और ठास कविता का शक्ति का अपने साद-मुराद दिला म झलन ह। (माफ करना जैमे काई स्वस्थ कुवारी किसी खुर्राट कुवारे का अपन झलने की खुशी आर पीडा का सहन करता है।) तुम्हारी कविता को पढ कर मैंने कई बार

यह पत्र पाश ममारिदल अन्तर्राष्ट्रीय ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित व सुरजात पातर चमनलाल सुखचैन मिस्त्री द्वारा सपादित पुस्तक वर्तमान द रूबरू से लिय गये हैं।

तुम्हे किसा खुशी जैसे एहसास मे गालिया दी हैं अपनत्व म कई बार बहुत हैरान उत्तेजित और भयभीत हुआ हू। मेरा भीतर फट जाने जैसा होता रहा है। निस्सदेह तुम अपने समय के बहुत बडे कवि हो। यह तुम्हारी ताकत ही है जो मेरे जैसे तुमस अलग विचारधारा वाल आदमी को यह कहन पर मजबूर करती है। – हा हम लोग बहुत अलग (और शायद विपरात भी) विचारधारा के हैं। इस बात को मैं कुछ देर क लिए अलग छोड दूगा। वास्तव म किसी बुरी विचारधारा से भी बहुत अच्छी कविता लिखी जा सकती है और बहुत अच्छी विचारधारा से निहायत बुरी कविता भी लिखी जा सकती है। बल्कि पजाबी म तो हुआ ही ऐसा है कि अच्छी विचारधारा सम्बन्धी बहुत हो घटिया कविताए लिखी गई हैं। –तुम शायद समझो कि मैं अपनी ओर से पिछले दिना की बाता पर पर्दा डालन के लिए एसा कह रहा हू जो तुम्हार खिलाफ जाती थी। लेकिन वास्तव म विरोध की काई बात थी ही नहीं। कुछ लोग देव' पर आरोप लगात हैं कि देव ने 'सफेद लिट' कविता म रीढ की हड्डी गायब होने वाली पक्ति धूमिल से ली है। लेकिन धूमिल से पहले इसी वाक्य को गार्की ने एक रूसी अभिनता स्तानिस्लावस्की को लिखे पत्र म इसी तरह लिखा है और गार्की से पहल फ्लाबेयर न। उसस पहल पता नहीं किसन। वास्तव म जब लोगा का जिदगी को रेगने वाली बना दिया जाता है ता उनकी रीढ की हड्डी ही गायब करते हैं। यहा कोई भी भद्रपुरुष 'घुटने की चौडी सपाट हड्डी' शब्द का प्रयोग नहीं कर सकता। और तुम्हारे पत्रा वाली बात ता बहुत अलग है। यहा सिर्फ शब्द मिक्स हो जाते है सिबल नहीं। पाब्लो का डाकिया आता है और ख़त मे किसी की मौत की खबर हाती है या आगे चल कर कोई अपने साजिशी ततुआ मे तुम्हे मकडी के जाले की तरह लपेट लेता है। तुम्हारा डाकिया कैनवेस से बाहर है या तुम उसके बारे म सोचना ही नहीं चाहते तुम्हारी नजरो मे शायद वह है ही नहीं या उसका कोई महत्व नहीं है(?) सिर्फ मौत है जा ख़त का तरह खुलती है और हमे उस एक (ही सास) म पढना पडता है। (जैसे कोई बुरे स्वाद वाली दवाई पी जाती है।) पढते पढते हमारा वजूद छिल जाता है। –सो यह है मेरे दोस्त जिसे नकल कहा जा सकता है। मैं कोई इल्जाम नहीं, शिकायत लेकर आया था। अब अगर आप दाना कविया से इस सयोग का कारण पूछा जाए ता आप कहेगे कि हमने इन चीजो को पहले पढा ही नहीं है। विशेषत पछी उडने वाली बात। और मैं जानता हू कि आप सच कह रहे होंगे। मेरी शिकायत यहीं से शुरू होती है। इतने मौलिक व समर्थ कवियो के लिए कम पढना अक्षम्य अपराध है। कसर यही नहीं कि बयान के घिस चुके अदाजो या विधिया का इस्तेमाल हो रहा है। वरन् यह है कि नई और मौलिक विधिया के पनपने के अवसरो को व्यर्थ गवाया जा रहा है जिससे हमारी कविता न अमीर हाना है। मरा ख्याल है कि मैने पिछले दो साला म काफी ज्यादा और अलग अलग किस्म की विदेशी कविता पढी हैं और तुम लोगा से कही ज्यादा नकल की है। वरन् सचेत नकल की है। यह नकल बिम्बों शब्दावली या एहसास की नहीं बल्कि इस तरह की है कि मैंने उनके महसूस करन के ढग को समझ कर अपनी महसूसने की विधि मे विकास किया है। अभी तक मैंने जो कुछ सीखा है उसको भली भाति कविता म प्रकट नहीं कर सका लेकिन कई जगह प्रयोग करने की कोशिश जरूर की है। बल्कि प्रयोग तो मैं तुम्ह मनजात' और अमिताज' को भी करता हू। सो इस नुक्ते सम्बन्धी मैं तुम्हार साथ यही बात करने आया था। लेकिन हुआ क्या? तुम्हारे कुछ दोस्त हैं जा तुम्हारे काफी प्रशसक भा हैं लेकिन वे तुम्हारी प्रशसा करते हुए भा खुद को दबा दबा महसूस करत हैं और तुमस सचमुच नाराज भी। (जरूरी नहीं कि नाराजगा ईर्ष्या के कारण ही हो, विचारो के विरोध के कारण भी हो सकता है।) उन्ह मरी बकवास सी कविता एक

लिवरल की आत्मकथा' ऐसे मिली जैसे जाल म फसे हुआ को कोई चाकू मिल जाए।। और मुझ छपत छपत खबर मिली है कि इस कविता को फैलाया जा रहा है। इसम मेरा बहुत बडा अपमान है, तुमस भी अधिक। दु ख स मरा रोन को जी चाहता है। यही आसान काम है जो मैं यहा जल म बैठा कर सकता हू। मैंने यह कविता सिर्फ तुम्ह और अपने कुछ खास दोस्तो को शुगल म सुनाने क लिए लिखी थी लेकिन आगे स आगे मैं इस तरह फसता गया कि मुझे तीन आदमियो को सुनानी पडी, उनम से दो एसे थे जिन्ह सुनाना मेरे कार्यक्रम म शामिल नहीं था। खैर मुझे आगे बात करने दो। तुम्हारे और मेरे बीच व्यक्तिगत प्यार क बगैर एक और साथ है जिसे भौतिक विज्ञान कहता है - unity of opposition[2] और यह कोई बुरी चीज नहीं। अपनी यह साझ भी आशिक रूप म है एब्सोल्यूटली नहीं। सौन्दर्य सम्बन्धी हमारी समझ म बहुत फर्क है। मैं आज तक भी समस्त सास्कृतिक और विशेषत नैतिक प्रगति को मानवीय प्रगति नहीं मानता। व्यक्तिगत सम्पत्ति क जन्म से लेकर सब कुछ शासक वर्गों क लिए और उनके हित म विकसित हुआ है। आम आदमी ने टोटल वैल्यूज को सिर्फ स्वीकारा है पैदा नहीं किया। यहा तक कि चाजों को महसूस करने के ढग भी हमने शोषक वर्गों से लिए हैं। मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र की अभी न कोई खास उम्र है और न विशेष उपलब्धि वरन् इसके आसार भी भली भाति निश्चित नहीं हुए हैं। प्लेखानोव व लूनाचार्स्की ने सौन्दर्य के मामले में शोषक वर्गों क केवल राजनीतिक प्रभावो का ताडन के लिए जोर लगाया है। उन्होंने सौन्दर्य को ऐतिहासिक पर्सपैक्टिव और प्रासेस म नहीं परखा और लूकाच न बिल्कुल आधुनिक काल से अपना काम शुरू कर लिया है वह इतिहास की ओर केवल तभी जाता है जब उसके बगैर गुजारा नहीं होता। केवल [3] है (मैंने उसे बहुत मामूली पढा है) जो ट्राट्स्की क कलात्मक सूक्ष्मता सम्बन्धी उठाए कुछ स्थूल बिंदुओं को हिलाता है लेकिन वह भी संस्कृति तक आने की (बात) करता है सौन्दर्य की समस्या तक नहीं पहुचता। लेनिन और माओ संस्कृति तक भा नहीं ज्यादातर राजनीतिक संस्कृति तक ही रह जाते हैं। सो यह है हमारी हालत दोस्त। शापित वर्ग का बारीक और आत्मिक जीवन किन नींवो पर निर्मित होगा यह सिर्फ चिंतक ही नहीं बता सकते। मर जैसे अनेक बौराए लोगो को प्रयोगशाला का माल बनना पडेगा जैसे चाँद पर पहले चूहे भेजे जाते थे। मेरे ऊपर और तमाम अक्ल के मारो पर सौन्दर्य अवधारणा के बूर्ज्वा तत्तु प्रबध की प्रेत छाया मडरा रही है। हमारे पास न आग है न लोन। एक ही रास्ता है कि कला में अराजकता फैला दे। परपरागत अवधारणाओ को ध्वस्त करन म जोर लगाए। यह काम सिर्फ अशुद्ध कविता से हो हो सकता है जिसका सकेत पाब्लो नेरुदा ने किया था। हम लोग आपसे अधिक असुरक्षित हैं लेकिन हम आपकी तरह मरने म स्वाद नहीं लेते जीने के प्रति कौतूहल हममे अधिक तीव्र है। और बूर्ज्वा कला प्रबध जोकि अब बूर्ज्वाजी के साथ ही अपने विकास के अतिम चरम पर पहुच चुका है अब द्वन्द्वों म रास्ता खोजने की बजाय द्वन्द्वों को ही रास्ता या मजिल क तौर पर स्थापित करने की मजबूरी जैसे षड्यंत्र म व्यस्त है। यह उसकी मौत का लक्षण है। समूचे बूर्ज्वा कला ससार म मृत्यु की गूज झरन की तरह सुनी जा रही है। इस भीतरी बहाव ने उनके विषयो को भी प्रभावित किया है। सस्पेंस खूब जोरों पर है। तुम्हारी कविता 'खतो का इतजार' व घर्र-घर्र कुछ एसी ही उपज हैं। माफ करना मैं विषय से बाहर चला जा रहा हू।

अब तक हरिभजन पजाबी का एक ऐसा आदमी है जो सम्वादी भी है और कवि भी। वैसे आहलूवालिया और हरभजन हुदल और बहुत से कथित क्रातिकारी भी सम्वादी हैं लेकिन व कवि नहीं

हैं। मुझे डर है कि तुम भी सम्वादी बनते जा रह हो। तुम्हारी कविता 'पुल' चाहे तुम्हारी एक अलग किस्म की उदासी की अभिव्यक्ति है लेकिन यह भी अपने भीतर एक सम्वाद लिए बैठी है। इसी प्रकार 'मकतूल साजन नाट कर' व अन्य कई कविताए (जो अब मुझे याद नहीं आ रहीं) तुम्ह रब्ब की दुहाइ तुम यह मत बना। यह काम डॉ हरिभजन के लिए रहन दो, उसकी रोजी पर ठोकर न मार। हमारे मार्क्सवादी ज्यादा समझदार नहीं हैं। व किसी की मिट्टी पलीद कर सकते हैं सवाद नहीं कर सकत। अपनी मिट्टी उनके पास है ही नहीं। मैं तुम्हारी मिट्टी पलीद होने से नहीं डरता तुम्हारी कविता क विकास का लोभी हू। और अगर तुम नहीं टलागे तो हमारा स्तर तुम जानते ही हो। 'लिबरल की आत्मकथा' तो सिर्फ नमूना भर ही था। यह धमकी नहीं एक हिड (कुतर्क की जिद) जो मार्क्सवादी नहीं वरन् जाटा की है।

मनजीत टिवाणा' तुम्हार से अधिक मौलिक व ज्यादा विस्तृत है। लेकिन वह तुम्हारे से कम काव्यात्मक तथा शब्दो क प्रति लोफर आशिको वाला व्यवहार रखे हुए है। अजीब बात यह है कि वह तुम से कम विद्रोही व ज्यादा क्रातिकारी है। भले ही वह कम्युनिस्टा स घृणा करती है। लेकिन यह घृणा इस तरह की है जैसे किसी बच्च को दाढिया वालो से हो।

अमितोज तुम्हारे से अधिक नाटकीय अधिक स्थूल व आदमी की शक्ति म अधिक यकीन रखने वाला कवि है। वह हमारी पीढी म अधिक प्रतिभा रखता है। लेकिन विलासिता ने उसे बेआरामी से भरा हुआ आलसा बना दिया है। यदि वह काशिश कर तो कम स कम तुम्हार जितनी अच्छा कविता लिख सकता है। और दव? वह तुम तीना म सब से स्पष्ट स्थूल भावा का है जिसके पास समाज क लिए एक सार्थक रुख भी है। लकिन वह ज्यादातर अकाव्यात्मक रहता है और जिदगी को किसी छाटे से पैगम्बर की तरह देखता है। चित्र शैली के कारण भी उसकी कुछ सीमाए हैं।

और एहसास की धारा म तुम्हारा कद बहुत ऊचा है दोस्त। सबसे ऊचा। तुम्हारी कविताए हमारी पीढी का (गौरव) हैं। इन एहसासो के सामाजिक लक्षणा सम्बन्धा कोई बात नहीं की जा सकती। मैंने यह हास्यास्पद मुकाबले इसलिए किए हैं कि तुम यह जान सको कि मैं अपने समकालीनो और समकालीन कविता के बारे म किस तरह साचता हू। मेरा यह ढग बहुत भौडा है लकिन इससे कोई छुटकारा नहीं है। मैं अपने बारे म भी कुछ कहू। मेरी कविताए (वास्तव म कविता जैसी चीज मेरे पास बहुत कम है) बहुत अच्छी नहीं हैं। इनकी थोडी बहुत ताकत अगर है तो इनकी विलक्षणता म है। मैं (कोई) बडे एहसासों वाला कवि नहीं हू। जिदगी की छोटी छोटी और अत्यत साधारण चीजा और घटनाआ को शब्दा के प्राजेक्टर से निकालता हू बस। और ग्रामाण युवका को वही चित्र दिखाई देता है, जिसके भीतर के खेल को व बडो दर से जी रहे हाते हैं। वह सब कुछ जा मैंने प्रस्तुत किया होता है व उसे टुकडा म पहले भी सोच चुके होते हैं। मैं कोशिश कर अपनी कविता द्वारा एक छोटा सा लेकिन महान् काम कर रहा होता हू। वह यह कि किसाना के लडका क भातर से कल्चरल बैकवार्डनस सम्बन्धी छाए हीनता क एहसास को भगाता हू। और उन्हें एक बहुविध जहालता जिसमें शक्ति और एडवचर (Adventure) जैसे कुछ सकारात्मक गुण भा हैं म पुन यकान बनाने का बायस बनता हू। इस तरह मैं उस मुदनगा के निवास म राऊ लगाता हू जा हमार सौन्दर्यवादा कवि नौजवाना के दिला म पैदा कर रहे हैं। भले ही मैं राजनाति मे ज्यादा जुडा हुआ नहीं हू लकिन यह बात मैंने सीख ली है कि भाड म म्याकर (धृतू) बजाने म कुछ न कुछ लाभ हो ही जाता है। कोई अपनी जेब म हाथ

डाले आता है और कहता है ' भाई एक लाटरी मरी भी काट दो" । वैसे समूची पजाबी कविता म मेरी जगह कहीं नहीं है। सरदारा सिह माहल और सरदारजात बावा' ने भी मुझस कुछ अच्छी गर्म खून की कविताए लिखी हैं। तो भी मेरी कविता वैसी खराब नहीं है जितना इसे प्रीतम सिह और आहलूवालियां आदि दिखाते हैं। अपनी सबकी खुशकिस्मती है। आधुनिक पजाबी कवि बडी हद तक मौलिक व निजी आस्थाआ वाले हैं। इनम से किसी का भी दूसर से मुकाबला करना गलत है। हमारे टकराव यदि थोड़े बहुत होते भी हैं तो इसलिए कि एक ही सामित रीडरशिप (Readership) है जो हम सब को पढती है - कम से कम हम दोना म तो कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है। तो भी तुम्हारे प्रति मेर असीम प्यार म कुछ ऐसा है जो उस अस्तित्व के विरुद्ध है जो तुम्हारी कविता क प्रभाव से होता है।

व्यक्तिगत जीवन मे तुमसे बहुत अलग होता हुआ भी कई जगह मैं तुम्हारी तरह हा लिबरल गैर-राजनीतिक व अविश्वासी हू। राज-प्रबधा क प्रति मैं बहुत आश्वस्त नहीं हू। इनके प्रति मेरी सोच उलझी हुई है और मेरे भीतर इनस एक तिरस्कार पूर्ण भय है। यहा जेल मे मैं अपने ऊपर कूदती गदी टिड्डिया (या टिड्डिया की कोई लिजलिजी किस्म) को भी नहीं मार सकता। हिसा मुझे किसी विपरीत ससार का घिनौना खुजली भरा कुत्ता लगती है। मैं हिसा मे यकीन रखने वाले किसी आदमी या सस्था को दिल से प्यार नहीं कर सकता। इन साझा के कारण ही मैं तुम्ह इतना चाहता हू कि तुम्हार चित्त म आ ही नहीं सकता कि कोई तुम्हे सचमुच इतना चाह सकता है। अमितोज को भी मेरे प्यार पर यकीन नहीं है। मनजीत को मैं प्यार नहीं करता उसका बेहद सम्मान करता हू। इसलिए नहीं कि वह लडकी है बल्कि इसलिए कि आज के पजाब मे कोई फीमेल भी इतना ऊचा सोच सकती है। देव मेरा दोस्त है लेकिन उसके प्रति मरी भीतरी उत्तेजना म काट-छाट नहीं हाती। काश ! मैं किसी तरह समझा सकता कि मैं तुम सब को कितना चाहता हू। हालाकि यह किसी पर कोई एहसान नहीं है।

मुझे पता चला है कि तुम्हारे गिर्द खुशामदिया की बडी भीड जुटी हुई है। इस बात ने मुझे दु खी किया है। क्या तुम उनके ज्यादा काबू तो नहीं आ जाओगे? मैं अपना अनुभव बताता हू। 1969 स जबसे मैंने लिखना शुरू किया है गुचो के गुच प्रशसक मुझे लपेटे मार रखते रहे और मुझे अचेत तौर पर गुमराह करने के लिए प्रयत्नशील रहे हैं। लेकिन मैं हर वार (उनकी गुजलक) तोड कर भाग आता रहा हू, जैसे हरिभजन की कविता से मरदाना निकल जाता है। मुझे पता है कि इन हाथा म कवि की मृत्यु लिखी हाता है। दिल्ला वाले गुरबचन और सतिदर नूर (रब्ब उन्हे और अक्ल दे और मौत तो कभी नहीं) कविता सम्बन्धी सबसे ऊची समझ रखते हैं। मैं गुरबचन के इन शब्दो का सदैव देनदार रहूगा "लाकप्रियता एक यातना है गर्दन का रस्सा है। 'सो भाई इसके बहकावे मे न आना। यह पहले पहले ऐसे लगता है जैसे सचमुच हार ही हो। मैं बार बार ड्रामे कर या ऐसे कदम उठा कर जिनकी मेरे प्रशसक मुझसे उम्मीद नहीं रखत उनके जिहन से बर्फ को तोडता रहता हू, नहीं तो मुझ दर्शन खटकड ही रह जाना था। मुझे अपने सबस पहले दायर का भी पता है बाद वाल का भा और अब वाले का भी जो अभी बन रहा है। जब तक मुझमें ताकत रही मैं इन खतरनाक शुभचितको की कैद तोड कर फरार होता रहूगा। रब्ब मुझे वह दिन न दिखाए जब मैं भी कहीं स्थापित हुआ बैठा रहू। व्यक्तिगत बडी चीज होता है। आदमी के पास गवाने के लिए कुछ नहीं होता और न कुछ जीतने के लिए। महसूस करने के लिए उसक पास समस्त ब्रह्माण्ड है-रब्ब है।

शायद मैं तुम्ह ऊबा रहा हू। खैर यदि हो सके तो मुझ मे से मिट जा रहे अपने विरुद्ध प्रचार को

दिल पर न लगाना। और भविष्य मे मेर प्रति बेरुखी दिखाई तो एक बातल जुर्माना कर दूगा और घटिया सी पैरोडीनुमा और कविताए लिखूगा। - यह पत्र तुम्हारे पास पता नहीं कैसे पहुचेगा और पहुचेगा भी या नही। मेरी नजरबदी शायद बहुत लबी नहीं है। जल्दी मिलने की उम्मीद म।

–पाश

पुन श्च   हा यह पत्र चाहे तुम पढ कर फाड कर फेक दो चाहे यदि तुम्हारा दिल करे तो कहीं छपवा दो। (इसलिए कि मेरे ऊपर लगा धब्बा धुल सके) तुम देखोगे कि मैं सच्ची बात भले ही वह मर खिलाफ जाता हा, सामन लाने स डरता नहीं हू। सच यार गजला सम्बन्धी मैं तुम्हारे साथ जूतम पैजार करने को भी तैयार हू। जिसमे न कविता का प्रासेस है न एहसासो का फैलाव विस्तार व सपूर्णता सिर्फ नक्काशी है सूक्ष्म एहसासा को निचोड कर सजा कर रखा फोकट है। यदि तुम्हारे जैसा कवि गजल म कहीं कहीं अच्छी बात कह जाता है तो यह तुम्हारी असीम शक्ति का एक साधारण करिश्मा है, इससे गजल का सार्थकता सिद्ध नही हाता।

अनुवादक के नाट

1 देव अमितोज व मनजीत टिवाणा - इन तीन कवियों सम्बन्धी पाश ने अपने इस पत्र मे अपने कवि मित्र सुरजीत पातर से विचार साझे किए हैं साथ म पातर की काव्यात्मक प्रतिभा पर भी पाश के विचार प्रकट हुए है। यह पत्र सभवत 1974 में लिखा गया जब ये सभी कवि समेत पाश अपनी युवावस्था में पजाबी कविता मे अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखा रहे थे। बाद म इनमे सुरजीत पातर व मनजीत टिवाणा साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत हुए। देव स्विट्जरलैंड म रहते हुए कविता और चित्रकारी जारी रखे हुए हैं। अमितोज अपनी प्रतिभा को पाश के शब्दा में विलासिता से नष्ट कर चुका व कर रहा है। अर्से स उसकी कविता नजर नहीं आई है। इन कवियो व पत्र लिखते समय की समकालीन पजाबी कविता सम्बन्धी पाश का मूल्याकन बाद के वर्षों मे वस्तुगत प्रमाणित हुआ है।

2 अग्रेजी शब्द खुद पाश के पत्र मे मूल रूप में ही हैं। पजाबी म लिखे अग्रजी शब्दो को भी मूल रूप म ही हिंदी म प्रस्तुत कर दिया गया है।

3 बिदुओ वाले शब्द पत्र से पढे नहीं जा सके। कहीं कहीं अदाज से या सदर्भ समझ कर शब्द अपनी ओर से रखे गए हैं।

4 सातवें दशक में उभरे अनेक कवियो म कुछ नाम जिन्ह अब कवि रूप मे कोई नहीं पहचानता।

5 प्रीतम सिह व जसबीर सिह आहलूवालिया ने सातवे दशक की क्रातिकारी कविता के खिलाफ मोर्चा खोल दिया था।

पजाबी लेखक शमशर सिह सधू के नाम पाश का गाव से लिखा पत्र

प्रिय शम्मी

मेरा हर खत तुम्हारा आर शायद पहला खत होता है लेकिन यह खत लिखते हुए मैं तेजी से बूढा हो रहा हू व मुझे आशका है कि बूढे हाथो से कहीं बूढे अक्षर ही न लिखे जाए। इन पक्तियो को तुम फिक्शन न समझ लेना बूढी आत्मा शरीर को बूढा कर देती है और बूढा दिमाग बूढी बाते सोचने लगता है। और यौवन मोटे तौर पर एक दिमागी स्थिति ही है जिसे आदमी के सोशल एनिमल होने का लाभ उठा कर उग्र प्रभावित करती है। जवान होना वैसे तो एक तरह से रगीन दीवानगी ही है लेकिन इस दीवानगी के अधे वेग से आदमी समाज को काफी प्रभावित कर जाता है कद्रा-कीमतो पर कोई पान

चढा जाता है। मैं इस रंगीन दीवानगी का ज्यादा लोभी नहीं लेकिन इसक समाज पर प्रभावा के सामाजिक दर्शा की पर्याप्त चरित्रकला देख कर जरुर लोभी हू।

जीवन म समाज को प्रमुख तौर पर स्पष्टता से प्रभावित करने के आम तौर पर तीन स पाच तक हो अवसर होते हैं। यह अवसर वही हो सकत हैं जिन्ह ज्यादा लोग महत्व देने की परपरा बना बैठे हों। समाज म उभरते यौवन क समय लडकिया को आख उठा कर न देखना और बात है लेकिन 'राज पाट' त्याग कर साधु हो जाना वना का चल दना बिल्कुल हा अलग मामला है और दूसरे केस मे लोग ज्यादा प्रभाजित होत हैं – चचा करत हैं, क्याकि इसम ड्रामा शामिल है। ड्रामा इसलिए उत्सुकता का हर चाज स अधिक कद्र बनता है कि इसम घटनाए तेजी से हरकत मे आती हैं और जब जीवन काफी गतिहीन हा गया हो ड्रामा का ग्राहक लगना स्वाभाविक ह। ड्रामा म चाजा का चुनाव और तरतीब उस असाधारण गति प्रदान करता ह। इसी प्रकार अखवारा म सादा ब्याह धूमधाम से करना और वात है और बिना अखवारा के ऐलानिया करना बहुत नाटकीय है। आदमी का जीवन समाज को प्रभावित करने वाला इसलिए हाना चाहिए कि जीवन मात्रा ज्यादातर उसी हिसाब स होती है जितना कोई जीवन समाज को प्रभावित करे। यह कोई समाजवादी आदर्श से सम्बन्धित बात नहीं जीने की साधारण तकनीक है कि कोई उतना ही ज्यादा जी रहा हाता है जितना समाज पर प्रभावा के कारण वह समाज म अपना अस्तित्व महसूस कर रहा हा। मर इस पत्र का उद्देश्य गाली दीवार पर चर्खा रखना नहीं न काई उपदेश या गिला करना ह और तुम्हार विवाह का घटना स ता कतई सम्बन्धित नहीं क्योंकि काइ भी एक घटना जिंदगी क समूचे चक्र स अलग महत्व वाली नहीं हो सकती। साथ हा खुद मानिगलस दिन जीने वाला अर्थों मम्बन्धी गभीर चलने की बहस छेड तो कैसा लगेगा। इस रविवार की 'अकाली पत्रिका (एक पजाबी दैनिक) म प्रीतम मिह कालामघिया की एक दिलचस्प (अच्छी नहीं) कहानी (?) पढी थी – 'चुप का शोर'। पहले लेखक का ओर से दो शब्दा म लेखक पर आ रहे बुढापे क प्रति शानदार विराध की उत्तेजना है और विकल्प बहुत मूर्खतापूर्ण। मैं चाहता हू मूर्खता का जगह मोटी बुद्धि हा जा बडी लियाकत वाली चीज है। तुम्हारे कहानी न लिख सकने का झट से विवाह कर लेने का मलग टोली से तलाक जैसा स्थिति का गम नहीं फिक्र तुम्हारी मोटी बुद्धि की सुरक्षा है समझ? यदि वरदान मे यह माग कर कि मैं अपने सातव पुत्र की सबसे छोटी पत्नी को महल की नवी मजिल पर सोने की चाटी मे दूध बिलोते देखू तो इस एक ही वरदान म भूख नगे कुवारे को क्या कुछ मिलता है? माग म यह भी जोडा जा सकता है उस वधू क अद्वितीय हुस्न का चर्चा अपना सास स भा अधिक हो।

आदमी की किस्मत निश्चित तो भले ही नहीं होती, लेकिन एक भी उठाया गया कदम अगल सफर का काफी कुछ निश्चित कर देता है और चुनाव के अवसर मनफा हा जाते हैं। मुहम्मद ने एक बार अपने एक शिष्य को किस्मत का अर्थ समझाते हुए कोई एक पैर ऊपर उठा लेने का कहा। अगले ने दाया पाव ऊपर उठा लिया। मुहम्मद ने कहा अब बाया भी उठा लो। कैसे उठाता? मुहम्मद बोला, "सो अब यह तुम्हारी मर्जी नहीं रह गई, पहला पैर उठाने से पहले तुम पूरी तरह आजाद थे चाह बाया ही उठा लेते।"

रहस्य वाला बात यहा है कि पहला कदम लने से बस दूसरे की होनी निश्चित हो जाती है। चोरी करने से पहले छूट हाती है कि चाहे शातिपूर्ण जावन जिया या न लकिन ज्यू हा चोरी कर ली जाए अगला जावन निश्चित हा गया समझा तुम्हार चुनाव का फिर काइ अर्थ नहीं। एक और बात कि जीवन

म हर कदम एक हिसाब स अपनी किस्म का पहला कदम होता है जो अगले की हानी निश्चित कर दता है।

(तलवडी सलेम से लिखा)

एक प्रशसिका डॉ रूपिदर के नाम लिखे पाश के पत्रो से कुछ अश

मरे भीतर हर प्रकार की साप्रदायिकता के लिए असीम घृणा है केवल सिखा की ही नहीं हिदुआ की भी। और मरी नजम हमेशा सीधी होती है। गोल मोल शब्दावली से हवाई किस्म की मानवता साकार किए जाने से मुझे चिढ है।

* * *

तुम्हारा पत्र मिलने तक मैं यही था क्योंकि मैं नहीं चाहता था कि बीमार सा जिस्म लेकर विदेशो मे अपने लागा क सामने जाऊ ओर खामखाह दूसरो की दया का पात्र बनू। रूपिदर तुम्ह पता नहीं होगा कि साहित्यकार लागा ने पाउडा-डालरों क दशा म जाकर बेहद घिनौना गद बिखरा है। कोई वहा जाकर अपनी गरोबा का ढिढोरा पीटता है कि मरे पास 'लिखने वाली एक ही मज है' और वह भी टूटी सी सदा हिलता रहता है इसा कारण मैं लागा का शाहकार भट करन म असफल रहा हू। कोई और अपनी बीमारी कम नजर या ब्याहने वाली बटिया का रोना राकर झोली फैला लेते रहे हैं। यहा तक कि कई क्रातिकारी लेखक भी इन देशा म जाकर पुलिस क हाथो झेली यातनाआ व जेल-यात्राआ के वास्ते दकर भीख मागने का कुकर्म कर चुके हैं। मैं वहा से पाउड डालर नहीं, एसी पूजी लेकर लौटूगा जो पहले शायद काई लाया ही न हो।

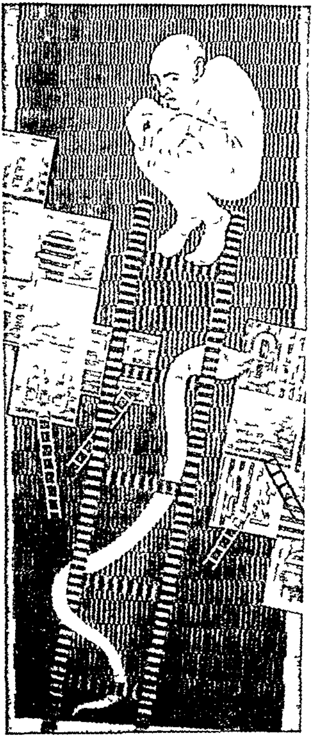
* * *

मेरे विचार मे ईश्वर को मानना सिर्फ उसी स्थिति म बुरा हाता है यदि यह मानना केवल असुरक्षा की बेबसी को या अज्ञान पर सतोप कर लेने की मनोदशा से उपजी हो। मैं बिल्कुल नहीं चाहता किसी की आस्था का घायल करू। मेरी इच्छा है कि तुम्हारा यह यकीन बना ही रहे, लेकिन मुझे भय है कि यह सदैव साबुत नहीं रहेगा। अगर तुम लडका होती तो मैं तुम्हे दा चार दिन अपन साथ ले जाकर अपने इलाके व अन्य अनेक इलाको मे ईश्वरवादिया द्वारा बुरी तरह उजाड दिए गए रोते-सिसकते घरो मे ले जाकर दिखाता। फिर तुम बताती कि परवरदिगार सर्वशक्तिमान के होते यह सब कैसे घटित हुआ?

* * *

मैं तुम से बडा हू और तुम्हारा वीर (भाई) हू, इसलिए रस्मी नहीं सच म कहना चाहता हू कि - खुद का ख्याल रखना। जैसे भी वातावरण म जीना पड चढ दी कला (बुलद हौंसल) म रहना जीवन के रौशन पक्षा की आर श्रद्धा कभी कम न करना।

अनुवाद डॉ चमन लाल



पेंटिंग यारेन तनवर

परिचर्चा

[उद्भावना कविताक का रूपरेखा बनाते समय यह भी एक कल्पना थी कि सदा के इस अतिम दशक और उसम लिखा जा रहा कविता पर एक परिचर्चा आयाजित की जाये जिसमे सवाल कवल कविया से पूछ जाय। प्रयास यह था कि हिन्दी म सृजनरत कविया की विभिन्न पीढियो के दृष्टिकोण सामने आय और चर्चा का एक विस्तृत आधार बने।

ये प्रश्न भेजते समय मन म कहीं एक सकाच भी था। कविता विशेषाका के साथ अक्सर परिचर्चा प्रश्नावलिया का एक परिपाटी सी बन गया ह। अमूमन ऐसे ढर्रेदार प्रश्न उठाय जाते हैं जो अपन रडामड उत्तर साथ लिए चलते ह आर प्रश्न पूछन वाला सिर्फ एक 'सजेस्टिव क्वेश्चन' करता रहता है। कुछ कवि यह भी कहत हैं कि प्रश्नावलियाँ अक्सर खाझ से भर दता ह क्याकि ज्यादातर पश्ना के उत्तर किसा न किसा रूप म पहले दिये जा चुके होते हे। हमारा यह तो कहना नही कि यहाँ हमने परिचर्चा मे एकदम नये सवाल उठाये हैं पर यह मानना जरूर है कि बहुत सार पुराने प्रश्ना क उत्तर समय के साथ नये सिरे स दिये जाने जरूरा होते हैं। यह सदा खत्म हो रहा है और तमाम सवाल हे जिनक जवाब हम फिर से तलाश करने पड रहे हे। मौजूदा स्थितिया म कवि-कर्म का भूमिका कविता मे आते बदलावा का चरित्र, परम्परा से कविया क रिश्त शिल्प आर जावन-दृष्टि से जुड एसे तमाम मुद्दे हैं जिन पर हमारा आज का स्थितिया का बाझ हो सकता है। यू मानने वाले ता यह भा मानते हैं कि 'आज का स्थिति' या पीढियो' जैसा कोई भा अवधारणा कविता के सदर्भ मे बेमानी है।

बहरहाल हम पता नहा कि हम अपने प्रयास म कितने सफल हुए। यह प्रश्नावली कई कविया को भेजा गया। अ‌ाक कवियो ने इस परिचर्चा का स्वागत किया और अपनी बात लिख भेजी। कुछ कवि बार-बार याद दिलाय जाने पर भा जवाब लिखने का फुर्सत नहा निकाल पाये। कुछ कवि ऐसे थे जिन्हाने कहा कि उन्हें 'कविता के बाहर कुछ भा कहने का आदत नहा'। कुछ कवियो ने यह भी नहीं कहा और केवल मान रह। कविया के अलग-अलग स्वभाव होते है- हमे इस सबकी अपेक्षा था। जिन कविया ने परिचर्चा मे भाग लिया हम उनके प्रति आभारी ह-सपादक]

परिचर्चा

1 कदारनाथ सिह	4 चद्रकात देवताल	7 राजश जाशा
2 अशोक वाजपयी	5 प्रभात त्रिपाठी	8 अरूण कमल
3 लीलाधर जगूडी	6 वणु गोपाल	9 सुधार रजन सिह

प्रश्न 1 -पिछले एक दशक के दौरान भारतीय समाज में जिस प्रकार अर्थ और टेक्नॉलाजी का आतंक बढ़ा है शहरीकरण बाजार और उपभोक्तावाद के नये रूप उभर कर आये हैं और एक सर्वग्रासी मूल्यहीनता ज्यादा विकराल हुई है - इन दबावों ने आज लिखी जा रही हिंदी कविता को किस रूप में प्रभावित किया है?

केदारनाथ सिंह यह सही है कि न सिर्फ कविता पर बल्कि पूरे समाज पर अर्थ और टेक्नॉलॉजी का दबाव बढ़ा है। इसी को आज बाजार या और आगे बढ़कर विश्व बाजार के बढ़ते आतंक के रूप में देखा जा रहा है। बेशक भारत जैसे अपेक्षाकृत निर्धन देश के लिए इस बाजार तंत्र का बढ़ना एक आतंक हो है। कविता मे उस बाजार का दबाव अनेक रूपों में बढ़ा है। एक तो सबसे सतह पर दिखाई पडने वाली चीज है कविता का वृहत्तर समुदाय से कटते जाना। यह कुछ कविता की अपनी विशेष बनावट के चलते भी हुआ है और कुछ बाजार के उस प्रभाव के चलते भी जिसे किताब की कीमत कहा जाता है। पर यहा सहसा मुझे ध्यान आता है कि बाजार में हिंदी कविता का एक और रिश्ता भी है जो बड़ा पुराना है। मैं केवल याद दिलाना चाहूंगा कि कबीर ने जब यह घोषणा की थी कि "कबिरा खड़ा बाजार में लिए लुकाठी हाथ' तो बाजार शब्द वहा अचानक नहीं आ गया था। मेरा ख्याल है कि बाजार के साथ जिस विद्रोहमूलक रिश्ते का शुरूआत कबीर ने की थी शायद आज के संदर्भ में उसकी सार्थकता को नए ढंग से खोजा और पाया जा सकता है।

अशोक वाजपेयी प्रश्न के पीछे यह समझ है कि समाज में हमारे आसपास और मूल्यों की दुनिया में जो कुछ होता है उसका सीधा असर कविता पर पडता है। इसलिए सबसे पहले तो यही बात कहने की लगती है कि किसी हद तक समाज को आसपास को और मूल्यों को बदलने की चेष्टा स्वयं कविता भी करता है। हर वक्त बदलाव कहीं और ही नहीं होता जिससे प्रभावित होना कविता की बेबस नियति हो। दूसरे कविता निरन्तरता का भी एक आयाम है - उसमें कहीं एक जिद्दी क्रोड होता है जो बदलता नहीं है यह उसकी अनन्त मे हिस्सेदारी है। तीसरे हिन्दी कविता अब कई दशकों से समाज के हाशिये पर खड़ी कविता है। जिसकी कोई परवाह न तो समाज करता है न ही उसकी नियामक शक्तियाँ। इसलिए बाजार और उपभोक्तावाद ने अर्थ और टैक्नालाजी ने कविता को किसी तरह आतंकित नहीं किया है। कविता उनके वर्चस्व और आतंक के विरुद्ध एक प्रतिरोध शुरू से है वही कविता नहीं जिसकी सामाजिक चेतना का बखान बहुत मुखरता से होता रहता है पर वह कविता भी जिसे उसकी कलानिष्ठा सौन्दर्यबोध और भिन्न तरह के सामाजिक अवबोध के कारण समाज-निरपेक्ष मानकर लांछित किया जाता है। चौथे ऐसी बहुतेरी कविता है जो विचारों और आग्रहों के बाजार में उनके उपभोग में लिप्त है। पांचवें मूल्यों की लडाई सम्वेदना और बुद्धि की भाषा और कौशल का मामला है आत्मसंघर्ष का क्षेत्र है जिसमें शिरकत कठिन है। ज्यादातर कवि सतही और चालू जहनियत में शामिल लोग हैं और मूल्य संघर्ष में बिना किसी तैयारी या वैध्यता के हिम्मेदार तो मान जाना चाहते हैं पर उसके लिए सम्वेदना की जो उदग्रता और बौद्धिक सख्ती चाहिये उनके बिना ही। या तो एक मूल्यविमुख समाज कविता अपने आप में एक प्रतिरोधक मूल्य है - शब्दों के क्षरण उनके प्रति अवज्ञा और लापरवाही के समय में कविता शब्द का शायद आखिरी शरण्य है।

लीलाधर जगूडी पहले रोना यह था कि हमारे पास टक्नालाजी नहीं है अब रोना यह है कि न केवल टक्नालाजी बढ़ रही है बल्कि उसका आतंक भी बढ़ रहा है। आतंक महसूस करने के पीछे शायद भय

यह है कि न टेक्नालाजी हमने पैदा की न हम उसक मालिक हैं। उसक मुनाफे के हिस्सदार ने होत हुए भी हम उसके घाटे जरूर उठाते हैं। यानि कि हम उसके कमजोर खरीददार और जबरदस्त शिकार हैं। हम अत्यन्त सासारिक होते हुए भी ससार से डरते हैं। इस सासारिक डर को हमने नैतिकता के नाम पर अपना रखा है। कुछ भी नया घटित होता है हम बिलबिलाने लगते है। जब हमे राष्ट्रवाद म नस्लवाद स्वीकार नहीं है तो फिर टक्नालाजा म हम नस्लवादा क्या बन जात हैं। क्या राटी पकान का "तवा" शुद्ध भारतीय उत्पादन है? क्या माचिस' शुद्ध भारतीय टेक्नोलाजी से बनी है?" "आग" को ही लीजिए। आग जितना और जिन ससाधना से हरेक व्यक्ति को नमक की तरह आज सुलभ है उसे केवल भारतीय ससाधना से प्राप्त करना सभव न था। दुनिया क मनुष्या को हम एक कर दना चाहत हैं। हर व्यक्ति का सयुक्त राष्ट्र बना देना चाहते हैं लेकिन उत्पादन विधिया मे सिर्फ दशी क्यो बने रहना चाहते हैं। मेरी राय म दुनिया की टक्नोलाजिया को भी घुल-मिल जाना चाहिए और मनुष्यता के पुर्जे-पुर्जे ठीक कम दन चाहियें। इस घुलन-मिलन का भा एक स्थानीय बाजार विकसित हा रहा है जिसे "दशा बाजार" कहते हैं। वहाँ हर माल का डुप्लिकेट मौजूद है।' देशी बाजार' म नकल का जितना दखल है उससे कहीं ज्यादा प्रतिभा भी दिखती है। हर चीज अपने साधना से पैदा करने का दम-खम दिखता है। बस क्वालिटी नहा दिखती। मे टक्नालाजी की दादागिरी के और टेक्नालोजी क अमानवीय रूप के खिलाफ हूँ। टेक्नालोजी के ध्रुवीकरण के भी खिलाफ हूँ। यही स्थिति शहरीकरण क साथ है। पूछा जा सकता है कि क्या हर चाज का ग्रामीकरण कर दिया जाय? शहरीकरण गाँवो म "धधे" की कमी क कारण बढ रहा है। जिन गाँवा की थाडी सी बेहतर हालत है और जिन्ह सरकारी भाषा मे "आदर्शग्राम" कहा जाता है उनका अर्ध शहरीकरण हो गया है। घरा म बद शौचालय है पीने का पानी आगन म या रसोई घर मे नल से आता है डिस्पसरी और स्कूल की सुविधा है नालियाँ बनी हुई हैं गलिया म खडजे बिछे हैं और बिजली भी आती-जाती मौजूद है। यान गाँवो का अर्धशहरीकरण ही "विकास" के नाम से जाना जाता है। फिर भी पलायन क्या? क्योकि राजगार के दीर्घकालान अवसर नहीं है। आमदनी और सुरक्षा नहीं है। बड-बडे शहरा मे जो शहरीकरण बाजार और उपभाक्तावाद के रूप म दिखाई दते है वे छाटे नगरो और ग्रामीण बाजारो से एकदम अलग किस्म के हैं। भारत का अर्थशास्त्र अमेरिका अगर अपने नजरिये और अपने कम्प्यूटर से लिखना चाहता है तो निश्चय ही वह जल्दबाजी से काम ले रहा है। भारताया मे परिवत्तन क साथ परिवर्तित हो जान का कला बडी जबदस्त है।

आज का हिन्दी कविता इन दबावा का बहुत बडे पैमाने पर तो अभी महसूस नहीं कर रही लेकिन उसकी आहट पैदा हा गयी है। हिन्दा कविता कबीर और तुलसी और मीरा के साथ भी "बाजार" "हाट" और "ढिंढोर" के बीच खडी है। सूर का नटवर भी बहुत "नागर" था। आज भी कविता "अतर्राष्ट्रीय बाजार" के बीच खडी है। एक अच्छी बात यह है कि बाजार और उपभाक्तावाद की थ्योरी हिन्दी कविता मे फैशन की तरह नहीं फूट पडी बल्कि जहाँ प्रकट हुई है वहाँ बेहद वैयक्तिक और आत्मीय पीडा के साथ नैसर्गिक रूप म आयी है। हमे यह भी नहीं भूलना चाहिए कि बहुत पहल भारतीय सस्कृति म जिसे "साँसारिकता" और "अतिलौकिता" के नाम स दुर्गुण की तरह जाना जाता था एक तरह से वह भी' बाजार' स बहुत आक्रांत हाने का निषेध था। सत कविया ने इस ससार को हा बाजार और इस बाजार को हा ससार माना था। आज स्थिति वही लगती है- जैसो उडि जहाज को पछी पुनि जहाज पै आवे।

चद्रकात दवताल हमारे समाज और समय म छूठ और आडम्बर जिम तरह फैला है, उसका अनेकायामी जटिलता क चलते प्रश्ना के उत्तर दना मुश्किल है। शब्दो का इस्तेमाल भी दुष्कर लग रहा है। मनुष्य का अपने पर्यावरण से रिश्ता जिस तरह कठिन होता जा रहा है लगभग वही स्थिति कवि और शब्दा के बीच हो गई है। इन प्रश्ना को मैं अपने आपसे मुखातिब होने और जूझने का ऐसा निमन्त्रण समझ रहा हूँ जिनके परिणाम के बारे मे कुछ नहीं कहा जा सकता।

जिस आतक का जिक्र किया गया है उसकी भयावहता उससे कहीं अधिक और दूरगामी है जितना फिलवक्त महसूस की जा रही है। सवेदनशीलता और विचार को अपाहिज बनाने वाली शक्तिया ने विकसित और सम्मानजनक शैली म बीते जमाने की दरिन्दगी को अधिक घातक और जटिल बना दिया है। जब रचनात्मक शक्तियाँ हाशिए पर निस्सहायता का अहसास कर रही हो सार दवावा को जिनम आपराधिक राजनैतिक-सास्कृतिक कार्यकलाप भी शामिल हो बरदाश्त करना मुश्किल है। हमारी कविताआ म सवेदनशीलता कह मानवायता के क्षरण और तुच्छताआ की गरिमामय प्रतिष्ठा का तनाव साफ-साफ देखा जा सकता है। निराशा-पराभव अथवा आशा-विजय जैसी पदावली मे इस चिता और तनाव को देखना ठीक नहीं होगा।

प्रभात त्रिपाठी पिछला दशक पूजीवाद क नगे नाच के और वीभत्स और नगे हो जाने का प्रतीक है। राज्य सस्था क रूप म समाजवाद की अल्पकालिक पराजय निरकुश बाजार के प्रमार की गति का एक प्रमुख कारण है लेकिन इसकी जड बहुत पुरानी हैं। एक तरह से भारी पूजी कद्रित तरक्की को विकास के एकमात्र रास्ते क रूप म सारी दुनिया म स्वीकृत कराने मे तथाकथित पूजीवादी और उस समय के समाजवादी राज्यो न समान भूमिका निभाई है। इस सदर्भ म राज्य कर्म के वास्तविक परिप्रेक्ष्य में दोनो क विचारधारात्मक फर्क का कोई ज्यादा मतलब नहीं है लेकिन बाजार के इस एकछत्र राज के कुछ ही वर्षो के भीतर यह लगभग स्पष्ट हो चुका है कि एक वैकल्पिक रास्ते की खोज जरुरा है। भारत जैसे सस्कृति सपन्न लकिन लगातार और गरीव और भिखमगा होते जाते राज्य मे रहनेवाले लोगा के लिये ता एसे किसी रास्ते की खोज जीने मरने का प्रश्न है।

हिन्दी कविता के शुरूआत के दिनो म ही जिस सस्कारवत विवेक और नयी बौद्धिकता के साथ हमारे पुरखा ने नये समय से एक रिश्ता कायम किया था वह आज भी हमारे लिये काफी प्रासगिक ह। यह सुखद है कि बाजार और उपभाक्तावाद के बीच राज्य सस्था और पूजीवाद की महमति स जारी इस सर्वग्रासी मूल्यहीनता क दौर म भी हिन्दी कविता की वह मूल्यचेतना नष्ट नहीं हुई है। किसी भी कवि के लिये यह सभव नहीं है कि वह इस मूल्यचतना और अपने अभी और यहा क विकराल अनुभवा को एकरैखिक विचार के अनुकरण के रास्ता पर चलकर ही विन्यस्त करे। हिन्दी की अधिकाश सार्थक कविता सामाजिक न्याय के प्रश्न के प्रति चौकन्नी कविता है और आधुनिक राज्य तथा आधुनिक सभ्यता की मनुष्य विरोधी गतिविधिया क प्रति पर्याप्त सचेत भी। यह सचेतनता तरह तरह के रूपाकारा म विन्यस्त हुई है। अपनी सामाजिक जिम्मेदारी को लिखने के मामले म कविया ने कविता की स्वायत्तता और सौंदर्य की एसी किसी धारणा को दो टूक शब्दो म अस्वीकार किया है कि जो धारणा राजनीतिक और आर्थिक यथास्थितिवाद से मुठभेड के रास्ते म रोडे अटकाती है। इसके बावजूद यह एक तथ्य है कि हिन्दी प्रदेशा की राजनीतिक चतना प्रतिक्रियावादी और साप्रदायिक हाती गयी है। इसलिए कई बार यह शक भी होता है कि अपने अभिप्राया मे बुनियादी तौर पर रैडिकल हाती हुई भी अधिकाश कविता अभिजन वर्गीय

सामाओ को नहीं ताड पाया है।

राजेश जाशी टेक्नोलाजी और मुक्त बाजार ने अचानक ही भाषा का बहुत सार नय शब्दा नय पदा और नयी अवधारणाओ से भर दिया है। यह बहुत अचानक और आक्रामक ढग से हुआ है इसलिए रचना मे थोडी हडबडी है और दूसरी तरफ अकबकाहट-सी भी। भाषा मे नये शब्दो का प्रवेश अच्छी बात है। भाषा का विस्तार हुआ है। लेकिन इन नये शब्दा और पदो को सृजनात्मक भाषा म घुलने मिलने मे एक समय लगेगा। यह एक प्रक्रिया है। इस भाषा मे अभा क्रूरता है और एक अजाब सनसना भा। पुराने मूल्य टूट रहे हैं। इसलिए मूल्यहानता की स्थिति विकराल लग रही है। लेकिन ऐसी स्थिति लगभग हर सक्रमण के समय प्रकट हाती है। एसी स्थिति हमार बहुत सारे बने बनाये ढाचा को हमारी अन्तरबाधाआ का तोडफोड देती है। यह अचानक हमला है। अनपेक्षित। इसलिए इसकी घबराहट ज्यादा है। लकिन शायद कुछ नय हान क लिय यह जरुरा है। रचना म धैय का जरूरत एस समय ज्यादा हाता है।

अरुण कमल अपने समय के दबाव हमेशा ही कविता पर पडत हैं। आज भी कविता क गले पर समय की उँगलिया क नीले छाप साफ देख जा सकत हैं। आज का कविता अभी ठाक दस बरस पहल का कविता के मुकाबले ज्यादा स्याह, उदास ओर अकेली है। पहले से अधिक अपन समय की आलाचना जा है उसका प्रतिपक्ष।

सुधार रजन सिह कविता पर सभ्यता का दबाव पुराना है। पिछल कुछ वर्षों के सभ्यतागत उत्पादा के दबाव का जो प्रश्न है उसका उत्तर न क्वल आज की लिखी जाने वाली कविता के बाहरी-भीतरी रग-रूप म खाजने की जरूरत है बल्कि कविता क नहीं लिखे जाने को भी मुद्दा बनाया जाना चाहिए। यह भी नहीं कि आज 'कवि कर्म' कठिन है। बाजार ओर उपभाक्तावाद का प्रभाव य है कि बेशुमार लोगो के लिए आज कविता, लाभरहित सही 'कैरियर है। प्रतिभाहीन प्रतिभाओ का ऐसा दौर शायद कभी नहीं आया हो। निश्चित ही यह साहस का काम है। ये लोग ही सबसे ज्यादा पुरस्कार और सम्मान के मौक की तलाश म रहते हैं। दूसरी ओर जन्यूइन कवियो मे भी सामाजिक भविष्य-स्वप्नहीनता की आन्तरिक स्वीकृति का भाव आप टटोल सकते हैं। इस चीज ने उनकी कविता को या तो कमजोर किया या उन्ह मौन बनाया। जो बहुत सभावनाशील कवि हो सकत थे उनम भी हम शब्द को मरते हुए देख रह हैं। यह पीडादायक है। एक पक्ति पुरानी रूसो कविता का है 'लाग नहीं मरत उनम शब्द मरते हैं।' इससे जोडकर मेरा कहना ये है कि अगर लोगो मे शब्द जगने लगे लोग आत्मसाक्षात्कार और जगसाक्षात्कार के बडे दौर को पा सके तो उन्हीं म से कई-कई बडे कवि जनम लेने लगेगे और जिन कविया के शब्द मर रहे हैं वे भी पुनर्जीवन पा सकगे।

प्रश्न 2 शक्ति के वर्चस्ववाद क विरुद्ध आज कविता की किस तरह की भूमिका आप देखते हैं?

कदारनाथ सिह शक्ति के वर्चस्ववाद के विरुद्ध हाना कविता की प्रकृति मे निहित है क्याकि कविता अपने प्रसार के लिए विविध भूमिया की तलाश करती है और किसी भी प्रकार का वर्चस्ववाद इसमे आडे आता है। आज की हिदी कविता को ले और बहुत दूर न जाकर तात्कालिक सदर्भो क भीतर ही झाक तो दलित चेतना का उदय या नारी मुक्ति की बात एक दूसरे स्तर पर और एक दूसरे प्रकार के

वर्चस्ववाद से टकराने की कोशिश है पर यहां प्रश्न में जिस विश्वव्यापी वर्चस्ववाद की ओर संकेत किया गया है मेरा ख्याल है कि आज लिखी जाने वाली कविताओं को बारीक छानबीन की जाए तो उसकी चुनौती देने वाले स्वर जहां-तहां खोजे जा सकते हैं और सबसे अद्भुत बात तो यह है कि कई बार उन्हीं महा राष्ट्रों की कविता के भीतर झांककर भी इस प्रतिरोधी प्रवृत्ति को देखा जा सकता है जो आज शक्ति के वर्चस्ववाद के अग्रधारक हैं। स्वयं अमरिका में नीग्रो कविता यही काम कर रही है।

अशोक वाजपेयी चूंकि कविता ज्यादातर शक्ति के खेल से दूर है उसके वर्चस्व का भी कोई खास प्रभाव नहीं है। वह किसी तरह के वर्चस्ववाद का लगातार प्रतिकार है। उसकी बहुलता ही उसकी असली जनतन्त्र है। *वहाँ अगर वर्चस्व है तो शब्द का उससे प्रगट मनुष्यता का लेकिन शक्ति हमारे सौभाग्य* से कविता पर असर नहीं डाल पाती।

लीलाधर जगूडी पहले शक्तियों को पहचानना होगा। फिर उनके वर्चस्व को समझा जा सकता है। *उस शक्ति की सीमा और सामर्थ्य क्या है?* क्योंकि सीमित समय की सत्ता समाज को अधिक आजादी की ओर ले जाती है। पंचवर्षीय चुनावों वाली सरकार कहीं ज्यादा लोकतांत्रिक होती है। जो राजनैतिक परिस्थितियाँ चल रही हैं उनके लिए 'व्यवस्था' शब्द शायद अब ठीक नहीं बैठता इसलिए लगता है *कि आपने ''व्यवस्था विरोध'' के स्थान पर ' शक्ति के वर्चस्ववाद के विरुद्ध ' जैसा मुहावरा गढा है।* इससे एक औपचारिक सी अवधारणा यह बनती है कि कविता का काम केवल विरुद्धों के विरुद्ध चलना है। जितनी वर्चस्वशाली शक्तियाँ हैं उनमें भाषा का भी जबरदस्त वर्चस्व है। वह भी धर्म राज्य सिद्धान्त सिद्धान्तहीनता और उनके अलावा जितने भी सत्ता पाने और उसमें बने रहने के सम्भव उपाय हैं उन सबके समानान्तर-उद्योग सूचनातंत्र (मीडिया) उत्पादन और मार्केटिंग आदि जितनी भी प्रतिष्ठानवादी आर्थिक सत्ताएं हैं सबके आपसी मुकाबले अपनी-अपनी वर्चस्वता बनाये रखने के लिए हो रहे हैं। वर्चस्वशील शक्तियों में अपने उद्योगों के कारण अथवा सम्प्रेषण का एक शानदार और जानदार माध्यम होने के कारण भाषा का भी एक राष्ट्रीय बाजार है। भाषा में अब आदमी सोचता नहीं है बल्कि भाषा अब उसे अपनी सोच के शिकंजे में ले लेती है। जो शक्तियाँ सामाजिक जीवन का दोहन करती हैं उसे अपनी उपस्थिति और अपने हस्तक्षेप से प्रभावित करती हैं ऐसी शक्तियों के विरुद्ध कविता भी संवेदना और भाषा की शक्ति से ही लड सकती है। संवेदना किसकी और भाषा किसकी? संवेदना कवि की और भाषा समाज की। समाज की भाषा भी रचनाकार की संवेदना में घुलकर नये रूप में ढल जाती है। यह जाँच का विषय है कि भाषा अनुभव की कितनी जुठारी हुई है उसका क्रम स्थान और विन्यास बदल जाता है। भाषा वहाँ भी दिखाई देने लगती है जहाँ हजारों वर्षों की चुप्पी बर्फ की तरह जमी हुई है। शब्दों की 'तिप-तिप' नदी के उमडते हुए अनुभव का उद्गम बन जाती है। रचना के माध्यम से रचनाकार और पाठक के बीच जो सम्बन्ध बन जाता है वह पैदा होने वाली प्रतिक्रिया में दिखाई देता है। दोनों की क्रिया-प्रतिक्रिया एक दूसरे की पूरक बन जाती है।

भाषा की सत्ता और कविता में अन्तर है। भाषा की सत्ता किसी न किसी सत्ता का प्रतिनिधित्व करती है जबकि कविता की भाषा मनुष्य की आत्मा का प्रतिनिधित्व करती है। कोई भी अच्छी कविता *अपनी भाषा और अपने आशय की शक्ति का वर्चस्व कायम करते हुए किसी मानवीय आधार को कमजोर* नहीं करती। न उसको क्षति पहुँचाती है। जो भी चीज सम्प्रेषण में शामिल होगी वह एक सामाजिक शक्ति का रूप लेती जायगी। सामाजिक शक्ति का वर्चस्व हम लोकतंत्र में किस तरह पहचानते हैं इस पर स्पष्ट

विचार हान स हा कविता क सम्बन्ध म भी कुछ मानवीय नताज निकाले जा सकत हैं।

चद्रकात दयताले वर्चस्ववान का कोई एक ठिकाना नहीं है। शक्ति का खेल पूजीवाद सत्ता ताकतवर मस्थाएँ ता दिखा हा रही हैं– सस्कृति और भाषा को भी शक्ति और पूजी का वचस्ववान छल रहा है। सिर्फ छल हा नहीं रहा अपसस्कृति भी फैला रहा है। स्वय सस्कृति का एक वर्चस्वाद विन्यास पनप चुका है। भाषा क प्रभुत्व और आतक को भी हमारा असख्य जनता आज भी अभिशप्त की तरह भुगत रही है। साम्कृतिक भ्रष्टाचार का भी हवाला दिया जा सकता है। इस कठोर और निर्मम समय म कविता क्या कर सक्ती है? कवि क्या कर सकत हैं? इस कठिन प्रश्न का उत्तर हिन्दी–समाज के मौजूदा परिदृश्य मे आसान ता नहीं है। प्रतिराध और हस्तक्षप की आवाज जा हम इधर का कविताआ म लगातार सुन रह हैं और यह काशिश कि हमारी आत्मा पण्य वस्तु न बन– क्या कम महत्त्वपूर्ण है? और फिर कविता इस भ्रमित समय म जावन क सराकारा स जुडी है और कविता के एक बड हिस्स का पक्ष और विचारधारा भा स्पष्ट है। फिर भी मैं कहना चाहूँगा कविता की भूमिका की पडताल कविता म नहीं कविता क बाहर ही सभव है और यह हमारा दुभाग्य है कि हम हर तरह स एसे विपन्न समय म जी–रच रहे है जहाँ हस्तभेप और प्रतिराध कारगर नहीं हो रहा। शार शराबे म असल आवाज सुनाई नहीं दे रहा। भाषिक अथवा प्रताकात्मक बन कर रह जाना प्रतिराध की सीमा हो सक्ती है। इस सीमा के कारण भी आर्थिक–सास्कृतिक शोषण म ही हैं। जिसक कारण मनुष्य मनुष्य की तरह जीने से वचित है।

प्रभात त्रिपाठी शक्ति के वर्चस्व और उसक सामाजिक परिणामा को समझ का काई यात्रिक रिश्ता कवि कर्म स नहीं जाडा जा सकता पर आत्मसजग वैचारिकता और वैश्विक तथा देशीय राजनीति की समझ से अपन नितान्त निजी अनुभवा का भी (अगर सचुमुच कोई नितान्त निजी अनुभव व्यक्ति के जीवन म हाता हो) शक्ति के वर्चस्व के परिप्रेक्ष्य मे देखा और रूपायित किया जा सकता है। समकालीन कविता क कई कवियो के साक्ष्य पर यह कहा जा सकता है कि शक्ति के वर्चस्ववाद के विरुद्ध हिन्दा कविता का प्रतिराध अरसे से सक्रिय है। प्ररणा स्रात का तरह मुक्ति बाध का कविता है पर बाद के कवियो म तो यह प्रतिरोध अन्तरग अनुभवा की लय और स्थानिक जीवन का सघन बिम्बात्मकता में भा विन्यस्त हुआ है। विष्णु खरे भगवत रावत या चद्रकान्त देवताले जैसे कई कवियो की अनेक कविताए इसका प्रमाण है।

बपुगोपाल किसी न किसी तरह का मूल्य (सौंदर्य मूल्य) केन्द्र मे लाना पडगा। यह कवि को सायास करना पडेगा – शक्तिशाली के सामन 'कवि' क रूप म कविता के साथ जाना। कवि अगर 'शक्ति की मौलिक कल्पना' करेगा (निराला) तो कविता म करगा कविता के बाहर नहीं।

राजेश जोशा शक्ति क वर्चस्व के विरुद्ध हम अपनी दुर्बलताआ को देखना आना चाहिये बिना किसी शर्म के। दुर्बलता क भीतर एक विनम्र मानवीयता है। उसे पहचानने और रचना मे दिखान की जरुरत है। कल्चरल हेगेमानी का वातावरण कविता ही बना सकती है।

अरुण कमल कविता निर्बलतम का पक्ष है। जिसका काई नहीं उसका कविता है। जा सबस कमजार दलित और असहाय है उसका बल है। मुए बैल का खाल स बना भाँथी की धाकता साँस है जिसस लौह भी भस्म हा जाए। इसक सिवा कविता की दूसरा भूमिका नहीं हो सकता। एसे समय म जब दश म पूँजी का काइ वास्तविक विपक्ष बचा ही नहीं कविता जीवन का अतिम मोर्चा अतिम चाकी है।

इसालिए वैस कवि पाकदान म डूब जाएँगे जा ग्लैमर यूनि और त्रित क प्यासे हैं।

सुधार रजन मिह कविता को 'पावर हीजेमोना' क विरुद्ध हाना ही चाहिए। हमार यहाँ कहा गया है अपारे काव्य ससारे कविरेव प्रजापति ।' उस प्रजापति' का काम है कि वह हम इस सवदना और ज्ञान के सस्पर्श म लाए कि लागा को उनकी बुद्धि शिक्षा पैसा और शक्ति से आकने की बजाय हम उनकी प्रेमभावना और दयाशीलता उनकी वीरता और साहस उनकी कल्पनाशीलता और सवेदना उनकी सहानुभूतिशीलता और उदारता और उनकी समानता की भावना क आधार पर उन्ह पहचान। हम उस तरह क समुदाय मे शामिल हो और उम तरह का समुदाय तैयार करे। कविता शब्द म उपस्थित एक आन्तरिक सरचना है जो हम बाहरी जावन में सत्तावान क विरुद्ध और वर्गविहीन समाज के पक्ष म करती है। अपने सर्वोत्तम रूप मे कविता यह उद्देश्य बिना बताय पूरा करती है।

प्रश्न 3 आज की कविता म मनुष्य की नैतिक विकलता किस रूप मे परिचालित हो रही है?

कदारनाथ सिंह यह मानना कि नैतिक बोध कविता मे व्यक्त सौन्दर्य-बोध स नितात कोई भिन्न चीज है शायद पूरा तरह सही नहीं है। कविता म व्यक्त होन वाला नैतिक सवदना उस सौन्दर्य-बोध का ही हिस्सा होती है जिसको कवि अभिव्यक्ति दता है। एक तरह स कह तो नैतिकता सौन्दर्य-बोध का सामाजिक आयाम है और यह कहन की आवश्यकता नहा कि इस अर्थ म समकालीन कविता मे नैतिक विकलता क अनेक रूप देख जा सकत हैं और सब बाता को छाड द ता समाज के जो बहुत से वचित तबके से आने वाले पात्र या चरित्र कविता म पिछले दिनो आए हैं उसके पीछे बेशक एक गहरी नैतिक सवदना रही है। इसी तरह बढती हुई हिंसा के विरुद्ध अनेक कविताए इधर लिखी गई हैं और उनम यह नैतिक विकलता नहा है ऐसा नहीं कहा जा सकता जहाँ नहीं है वहा कविता असफल हुई है और यह अतत कवि का पूरा सौन्दर्य-दृष्टि का ही कमजोरी कही जाएगी।

अशोक वाजपेयी हमारे समय म नैतिक विकलता मानव-सम्बन्धो प्रकृति और पर्यावरण मे सम्बन्धों शब्द की व्याप्ति और उसकी सीमाओ आदि को लेकर होती है। एक और स्तर पर ऐसी विकलता मनुष्य क उत्तराधिकार समता और बराबरी और आजादी को लकर न्याय और मनुष्य क बुनियादी अधिकारो को लकर होती है। कइ बार लगता है कि हमारी ज्यादातर कविता बल्कि साहित्य भी इस विकलता से कोई गहरा सरोकार नहीं रख पा रहे है। नैतिक विकलता कविता को काया म प्रथमत और अन्तत शब्द-विकलता मे ही चरितार्थ होती है और आज हिन्दी मे शब्द-विकल कविता बहुत विरल है।

लीलाधर जगूडी हमारे समय म भ्रष्ट नैतिक मूल्यो की भी एक परम्परा काम कर रही है। जो नैतिक मूल्य भ्रष्ट नहीं हुए हैं वे कौन-कौन और कितने हैं कहना मुश्किल है। नैतिक विकलता क्या नैतिक मूल्यो की चिंता से अलग कोई चीज है? भ्रष्ट होने की सबसे कम सभावना वाले नैतिक मूल्यों के लिए और भ्रष्ट हो चुके नैतिक मूल्यो का गणना करते हुए कवि की अपनी नैतिकता भी परखी जानी चाहिए। आखिर कवि का नैतिकता की शर्तें क्या है? नैतिक व्यक्ति ही नैतिकता की बात या नैतिक अधिकार की बात कर सकता है। तमाम अनैतिकताओ ने नैतिकता को इतना ढक दिया है कि उसकी कोई एक मुकम्मिल पहचान नहीं बनने दे रहा है। सारी नैतिकताए कहीं न कहीं आदर्शवाद हैं और जमाना यथार्थवाद का है ऐसे मे क्या नैतिक, विकलता का सवाल उठाकर हम यथार्थ से मुँह तो नहीं मोड रहे हैं? कहीं ऐसा तो नहीं कि आज की कविता मे नैतिक विकलता केवल यथार्थ के वर्णन तक सीमित

हो गयी हो। नैतिकता की बात करेंगे तो आस्था की भी बात आयगी। सबकी अपनी-अपनी नैतिकताएं और आस्थाएं यथार्थ में जड़ें जमाए हैं। आज का मनुष्य समाज एक खास किस्म के असैद्धान्तिक राजनीतिक माहौल में भी अपने लोकतंत्र को "आस्था" भरी निगाहों से देख रहा है। लेकिन जहाँ सिद्धान्त शून्यता चारों ओर छायी हो वहाँ नैतिकता के भी पचास अर्थ निकाले जा सकते हैं। सब कुछ दिन-ब-दिन व्यक्तिगत सुविधा और तर्क पर आधारित होता जा रहा है। नैतिकता के भी सौ लिफाफे हैं किस लिफाफे वाली नैतिकता? हाँ इतना जरूर है कि आज कविता अपने समय के यथार्थ में फंसी नैतिकता का डाक्यूमेंटेशन कर रही है।

आज संकट नैतिक स्खलन का है। इस नैतिक स्खलन का विरोध किसी भी रचना की जीवन दृष्टि और विचारधारा में देखा-परखा जा सकता है और स्वयं उस रचना के नैतिक स्खलन का भी नमूना उसी में मिल जायगा।

जब तक आधुनिक आदमी की और उसके समाज की नैतिकता निर्धारित नहीं हो जाती तब तक हम कम्प्यूटर की नैतिकता कैसे तय कर सकते हैं। मान लीजिए कि कम्प्यूटर का एक गुण है कुछ का कुछ कर देने का तो वह कर देगा। करना है कि नहीं करना है क्या करना है और क्यों नहीं करना है अगर इन्हें नैतिक प्रश्न मान लिया जाय और कम्प्यूटर का यह कमाँड फीड कर दिया जाय तो कम्प्यूटर भी नैतिकता बरतने लगेगा। मानवीय अस्तित्व का नया रूप ही अपने नैतिक मूल्यों के निर्धारण में सहायक होगा।

चन्द्रकांत देवताले नैतिकता की जड़ व्यक्ति के भीतर गहरे विश्वास में रहती हैं। और टहनियाँ-शाखाएँ सामाजिक-व्यवहार, मानवीय-रिश्ते और चतुर्दिक के घटना-व्यापार में होती हैं। महा मौन के विकर में नितान्त अकेले की नैतिकता के बारे में मैं नहीं जानता। भूख गरीबी लाभ-लोभ कपट और स्पर्धा कह सकते हैं बाहर की तमाम विद्रूप स्थितियों के बीच ही नैतिकता की परख संभव है। इस महादेश के असंख्य जन राजनीति और अपराध के जैसे कुचक्र में घिरे-फंसे हैं- अधिकार और न्याय के लिए तरस रहे हैं, कवि का अन्तःकरण इस क्रूर यथार्थ के प्रति बेखबर नहीं रह सकता। मुक्तिबोध और रघुवीर सहाय के यहाँ दो धरातल पर भारतीय जन की नियति जिस विकलता के साथ व्यक्त हुई है उसका संकेत पर्याप्त है। मनुष्य और पर्यावरण को केन्द्र में रखते कविता वाचिक कर्म है। जिस तरह से आज मानवीयता और निसर्ग का क्षरण हो रहा है उसकी वेदना से असम्पृक्त कविता को हमारे समय में क्या हम कल्पना कर सकते हैं?

प्रभात त्रिपाठी हिन्दी कविता की नैतिक विकलता उसकी सर्जनात्मक विकलता से भिन्न नहीं है लेकिन चूंकि हिन्दी में ही इस सर्जनात्मकता के रहस्यपूर्ण देवरूपीकरण के अनेक प्रमाण हैं इसलिए चौकन्ने कवियों ने गंभीर आत्मालोचना के साथ इस नैतिक विकलता में सन्निहित राजनीतिक आशयों को खुले दिल से रेखांकित करने की कोशिश की है। मेरा खयाल है कि नैतिकता को राजनीति और समकालीन समाज में मौजूद विसंगतियों से जोड़कर देखना जरूरी है क्योंकि उसका संबंध केवल व्यक्ति मात्र के अस्तित्व से न होकर मनुष्यों के समग्र सामुदायिक अस्तित्व से है।

वेणु गोपाल मनुष्य की नैतिक विकलता पहले कवि को प्रभावित और कवि के रूप में परिचालित करेगी फिर कविता का नंबर आयेगा। कविता कवि से अलग नहीं है - न हो सकती है। कवि परिचालित न हो और कविता को माध्यम के रूप में इस्तेमाल करे - यह मुमकिन नहीं है।

राजेश जोशी   कविता म विकलता ता है पर वह कितनी नैतिक है यह कहना मुश्किल है। कविता की नैतिकताएँ सामाजिक नैतिकताआ का ही प्रतिरूप हा यह भी मुझे बहुत जरूरी नहीं लगता। चार्जे इतनी तेजी स बदल रही हैं। गति का दबाव बहुत तीव्र है। इसलिए कविता म विकलता बढी है। वह इस बदले हुए परिदृश्य को समझने के नय रास्ता को तलाश करना चाहती है।

अरुण कमल   चूँकि कविता सम्पूर्ण पतन क विपथ म है इसलिए स्वभावत यह एक नैतिक प्रतिरोध है। एक खास बात यह हुइ है कि कवल सामाजिक-राजनातिक या बाह्य अतर्विरोधो तक ही दृष्टि कद्रित नहीं है बल्कि मनुष्य क भीतर उसक मन म जो चल रहा है जो उत्थान-पतन हा रहा है उसे पकडने की कोशिश भी कविता कर रही है। अतत सारे बाह्य परिवर्तन मनुष्य के निजी जीवन और मानव सम्बन्धा के वृत्त म ही फलित होत हैं। कैसे एक छाट स दूरदराज क गाँव के बाहर राष्ट्रीय उच्च पथ पर पहल एक पेट्राल पम्प खुलता है फिर एक लाइन हाटल फिर वेश्यावृत्ति और इस तरह उस गाँव के आतरिक जीवन म तहस-नहस। आज कविता जीवन का अर्थ ढूँढती है हमारे जीने हमार होने का अर्थ। जो *भी अर्थवान है, पवित्र है वही जब खतम हो रहा है तब जावन का मूल्य क्या है? जा है और जा हाना* चाहिए क बाच क अतर का बोध ही नैतिक विकलता की भूमि है।

सुधार रजन सिह   सन्दह और विश्वास क सघात क रूप म।

प्रश्न 4   क्या आप यह पाते हैं कि इधर लिखा जा रही हिंदी कविता अपने सोंदर्य-बाध, अपनी भाषिक सरचना और अपने अभिव्यक्ति पैटर्न मे अधिक विविध और सम्पन्न हुई है या इसम एकरसता आयी है?

केदारनाथ सिह   सौन्दर्यबोध की बात अभी हम कर चुके हैं। जहा तक भाषिक सरचना और अभिव्यक्ति के पैटर्न का सवाल है मुझे लगता है इसम विविधता थोडी कम हुई है। यह अकारण नहीं है कि कुछ *लोगा ने बढते हुए अनुवादपन या एक खास तरह की रातिपरकता का बात की है।* इन प्रतिक्रियाओं में कुछ न कुछ सच्चाई अवश्य है। थाडा पीछे लौटकर यदि निराला की कविताओं की "नाना अर्थ भूमियों पर सचरण करने वाली " विविधता स आज की सपूर्ण कविता की तुलना की जाए तो बात साफ हो जाएगी यह वह जमीन है जहा आज की कविता को एक बडे सघर्ष से होकर गुजरना पडेगा और बेशक वह सघर्ष गहरे अर्थ मे एक आत्म-सघर्ष ही होगा।

अशोक वाजपेयी   अधिकाश कविता आज एकरस है यह नयी बात नहीं है क्योंकि पहले भी ऐसा ही होता आया है। सौन्दर्यबोध शब्द ता इधर कविता की चर्चा म वर्जित सा है। तथाकथित सामाजिक चेतना ने इतना आक्रान्त कर रखा है कि सौन्दर्य का जिक्र करिये तो आप मनुष्य-विराधी मान लिये जायेंगे। यह इस बात का साधा लक्षण है कि कविता म सौन्दर्यबाध की क्षति हुई है। उसक बजाय अब कवि के सघर्ष-बोध की बात की जाती है यह बात और है कि ज्यादातर जैसे दिखाने का सौन्दर्य हाता है वैसा ही दिखाने का सघर्ष भी। भाषिक सरचना भी इस दौरान अधिकतर एकस्तरीय है - *अभिधा* का ऐसा आतक है और अपनी बाली के एक से अधिक अर्थ होन से कवि इतना घबराता है कि भाषा की अनेक शक्तियाँ कविता म अनपुयाज्य हो उठी हैं। अभिव्यक्ति म विविधता और सम्पन्नता का अकाल हा है। जहाँ सौन्दयबोध है सरचना म जटिलता और अभिव्यक्ति म अर्थसमृद्धि है वहाँ अक्सर ध्यान

नहीं दिया जाता क्योकि ऐसे रचनाकारो की सामाजिक प्रतिबद्धता मुखर न होने के कारण अनुपस्थित ही मानी जाती है। हिन्दी कविता की शब्दसम्पदा अपनी सम्भावना के अनुरूप बहुल नहीं है बहुत कम शब्दो से कविता का काम चल रहा लगता है। कविता भाषा के प्रति जिम्मेदारी के बजाय तथाकथित समाज के प्रति जिम्मेदारी के वश लिखी जा रही है। कवि भाषा के प्रति जिम्मेदार होकर ही सामाजिक जिम्मेदारी निभा सकता है। इस सीधी-सच्ची बात की इन दिनो पूरी तरह से अवहेलना हो रही है कि भाषा ही कवि की सामाजिकता है। इसके बावजूद यह जरूर लगता है कि कविता मे मानवीय ऊष्मा मे वृद्धि हुई है। अगर यह एक तरह का अन्तर्विरोध लगे तो यह याद करना जरूरी है कि हमारा समय और कविसमय भी अन्तर्विरोधो से पटा पडा है।

लीलाधर जगूड़ी "इधर" से आप का अभिप्राय "किधर" से याने कहाँ से है? यह स्पष्ट नहीं होता। "इधर" याने पिछली जुलाई से या इधर मान पिछले पाँच-दस वर्षों से? यह जो "इधर" शब्द है यह पहले "दिशा" सूचक है और बाद मे "समय" सूचक। मतलब कि आप कविता को किसी खास दिशा और किसी खास समय में देखना परखना चाहते हैं - ऐसा मैंने समझा। लेकिन वह खास दिशा और वह खास समय क्या है?

किसी भी समय को किसी भी दिशा मे जाने वाली कविता को उदाहरण के तौर पर ले तो पायगे कि कविता अपने समय की समझ से पैदा होती है। मनुष्य की समझ को ही मैं समय की समझ कह रहा हूँ। क्योकि समय का भी दिमाग मनुष्य मे ही काम करता है। सारी नश्वरताओ के बीच सौन्दर्य बहुत टिकाऊ चीज है। इस तरह हर समय की कविता अपनी समझ अपना सौंदर्य और बोध स्वय रचती है। पिछले पचास वर्षों की हिन्दी कविता मे किसी बडे होते हुए छोटे बच्चे की हड्डिया जैसी कमजोरी और शक्ति दोनो हैं। वर्तमान हिन्दी कविता मे अभी बहुत से अज्ञात अनुभव क्षेत्रो को शामिल होना है। अनुभव के नये इलाके जुडने हैं। पिछले दशक मे एकरूपता की अजब ऊब के बावजूद कुछ कवि उसे तोडते दिखते हैं।

नयी से नयी यत्र-विधि आने के कारण और जीवन शैली मे शुचिता आदि मानदडो के बदल जाने के कारण भारतीय समाज की नैतिक अवधारणाओ को भी स्वय को बदलने का सघर्ष करना पड रहा है। विज्ञान के प्रवेश ने धार्मिक मान्यताओ को हिलाकर रख दिया। प्रकृति धर्म विज्ञान और पोलिटिक्स के नये सामाजिक सबधो के कारण कला और कविता मे होने वाले नये-नये परिवर्तनो को भारतीय समाज ने भी स्वीकारना शुरू कर दिया है। अब कोई बात किसी को चकित नहीं करती सिवाय सघर्ष और आविष्कार के। पर आज के रचनाकार को पहले के रचनाकारो की अपेक्षा बहुत कम सघर्ष करना पडता है। मुद्रण की और सप्रेषण की इतनी सुविधाए बढ गयी हैं कि इतजार और अस्वीकार के सारे रचनात्मक झटके जैसे खत्म हो गये हैं। अब हर चीज सफल होने के लिए की जाती है।

चद्रकात देवताले एकरसता की शिकायत हर दौर मे होती रही है। अकादेमिक सुविधा के तहत कविता का वर्गीकरण और भेद किया गया है। उसकी हर सृजनावधि मे ऐसा लगा है कि कई लोग एक जैसा लिख रहे हैं। पर इसी प्रक्रिया के दौरान समर्थ रचनाकारो की अपनी पहचान भी अलग से जानी जाने लगती है। कई बार बहुत बाद मे किसी रचनाकार को आविष्कृत किया जाता है। कुछ कवियो को काव्येतर कारणो से अति महत्वपूर्ण मान लिया जाता है। इसे जाने दे तो यह कहने मे मुझे कोई सकोच नहीं है कि जीवन के अनन्त स्रोतो और भाषा-अभिव्यक्ति की अनन्त भगिमाओ से चिन्ता और दायित्व के

साथ ग्रहण करत हुए महत्वपूर्ण कवियो न जिनमें युवा और युवतर रचनाकार भी शामिल हैं समकालीन हिन्दी कविता क परिदृश्य को समृद्ध किया है।

प्रभात त्रिपाठी इसम कोई शक नहीं कि आज की कविता म पर्याप्त विविधता है। रूप और अन्तर्वस्तु दोना म हा यह विविधता लक्ष्य की जा सकती है लेकिन इस विविधता क साथ ही कवियों और कवि यश प्रार्थिया के चलते इसमें एक तरह की एकरसता भी है। एकरसता के उदाहरण के तौर पर इसकी वर्ग सीमा को लिया जा सकता है। इसकी कल्पनाशीलता में यह आवेग और वेग अभी भी शायद नहीं है जो इसे एक तरह की वर्गीय भाषा की जकड़न से मुक्त कर सके। सम्भवत अपने समय के अनुभवों के प्रति प्रतिबद्धता के चलते ज्यादातर कवियों ने वास्तवधर्मी काव्य-विन्यास को ही थोड़ी बहुत छेड़छाड क साथ स्वीकार किया हुआ है। चद्रकान्त देवताले जैसे कवि जरर इस पूरे दौर में अपवाद का तरह लगते हैं। इस अर्थ मे कि उनके यहा अनुभव की वास्तविकता एक बौद्धिक दीप्ति क साथ कल्पनाशील आयोजन में विन्यस्त होती है। अपनी भाव-ऊर्जा के चलते वे वास्तव के विवरण को भी प्राणवन्त अनुभव-बिम्बो म बदलते चलते हैं। पर विविधता के मामले में हिन्दी कविता बहुत धनी मालूम पडती है। अशोक वाजपेयी प्रयाग शुक्ल जितन्द्र कुमार से लेकर मगलेश डबराल सुदीप बनर्जी विष्णु खरे जैसे कविया का अलगपन इसी विविधता का प्रमाण है। जरूरत इस बात की है कि इस विविधता का विस्तार से विश्लेषण किया जाये, पर हिन्दी की साप्रतिक समीक्षा में इस तरह की कोई सार्थक एकेडेमिक कोशिश शायद नहीं हो पा रही। पिछले पचास वर्षों की कविता को व्यापक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे गहराई से, सहानुभूतिपूर्वक पढने की जरुरत शायद आज पहले से कहीं ज्यादा है क्योंकि कविता के मूल्याकन की कसौटी गुटो या सगठनों की सदस्यता और इसके या उसके प्रति वफादारी ही बनी हुई है।

वेणुगोपाल हिन्दी कविता अधिकाधिक विविध और सम्पन्न हो रही है – अपने उत्कृष्ट रूप में। यह एकरस लग सकती है अगर हम निकृष्ट रूप पर ध्यान दे। किसी भी दौर की कविता मे हमे ये दोनों रूप मिल जाते हैं।

राजेश जोशी इधर की कविता पर दोनो ही तरह की टिप्पणियाँ सुनने को मिलती हैं। लेकिन किसी भी समय की कविता को देखने के लिय उस समय के श्रेष्ठ को देखना जरूरी है। कविता मे आ रहे जीवन दृश्यो और प्रसगों को देखें तो कहा जा सकता है कि कविता की जमीन चौडी हुई है। मुझे लगता है कविता पहले की तुलना मे ज्यादा जनतान्त्रिक हुई है। उसमें सामान्य मनुष्य की उपस्थिति बढी है। कवि पहले का तुलना मे ज्यादा बहिर्मुखी है। लेकिन यह भी सच्चाई है कि फार्म के स्तर पर या भाषा के स्तर पर प्रयोगधर्मिता कम है। अकविता में या कुछ हद तक नई कविता में भी प्रयोग के प्रति ज्यादा आकर्षण दिखता है। प्रगतिवादियों में और छायावादियो मे छद को लेकर ज्यादा प्रयोगधर्मिता है। हमारे यहाँ निजी मुहावरे का अर्थ दिनों दिन सीमित होता गया है। भाषा के स्तर पर एक बडा फर्क कविता मे आया है। बोलचाल की भाषा जीवन व्यवहार में उपयोग हो रही भाषा आज की कविता की भाषा है। कुछ लोगों को लग सकता है कि इसमे कम शब्दों का बहुत ही कम शब्दों का प्रयोग हो रहा है। जीवन व्यवहार से आयी भाषा में क्योंकि शब्द की बहुत स्वायत्त उपस्थिति नहीं होती। वह अलग से चमकता हुआ या बजता हुआ नहीं दिखता। इसलिये ऐसा लग सकता है कि इधर की कविता की भाषा सीमित हो रही है। पर ऐसा है नहीं। कविता का जीवन की भाषा से रिश्ता ज्यादा सघन हुआ है। इसमे

कितावीपन कम है। इस कविता म नायक की जगह सीधे चरित्र आये हैं। सामान्य लोग आये हैं और अपनी पूरी सामान्यता के साथ आये हैं। यहाँ कवि की उपस्थिति भी भिन्न है। वह प्रगतिवादी कविता की तरह अक्सर नेपथ्य मे नहीं चला जाता है और ना ही नई कविता की तरह लगातार पूरी कविता को अपने ही व्यक्तित्व से ढापने की कोशिश करता है। यहाँ कवि के 'मैं' की उपस्थिति उतनी ही है जितनी अन्यो की उपस्थिति है। जैसे घर परिवार और समाज मे हम रहते हैं हमारी उपस्थिति होती है वैसी इस कविता मे कवि की उपस्थिति है।

अरुण कमल हिन्दी की कविता यानी श्रेष्ठ कविता, आज पहले की तुलना म अधिक विविध है। अधिक समृद्ध है, ऐसा कहना तो मुश्किल है। जीवन के जितन सारे क्षेत्र अनुभव और भगिमाएँ अभी आ रही हैं उतना पहले नहीं थीं। चीखने से लेकर लगभग स्वागत तक– पूरा विस्तार मिलता है। जहाँ कुछ भी नहीं था वहाँ आज का कवि कविता ढूँढ लेता है।

सुधीर रजन सिह प्रश्न मे ही अन्तर्निहित है कि आज की कविता मे वे दोनो ही बात हैं। दूसरी यात ज्यादा है इसलिए कि नकली कविताएँ ज्यादा लिखी जा रही हैं। जिनकी कविताएँ आपको अच्छी भी लगती हैं, चूकि उनका आधार प्राय नकली होता है इसलिए वे एकरस हुई है। समकालीन युवा कवियो में कोई रघुवीर सहाय लिख रहा है तो कोई केदारनाथ सिह। यही स्थिति कुछ अधेड कविया के साथ है। जो लोग कविता की लम्बी परम्परा से जुडने और अपने समय से भी जूझने की कोशिश कर रहे हैं जो परम्परा से भिडते हुए नये 'फार्म' की तलाश मे हैं वे एक हाथ की उँगलियो के पूरे पोरो पर नहीं गिनाये जा सकते।

प्रश्न 5 आज की हिंदी कविता निराला पत, प्रसाद, दिनकर, नागार्जुन, मुक्तिबोध, अज्ञेय, त्रिलोचन, रघुवीर सहाय, राजकमल चौधरी और धूमिल आदि की परम्परा से किन अर्थों मे जुडी हुई हैं और किन अर्थों मे उससे अलग है?

केदारनाथ सिह समकालीन कविता का अतीत के साथ रिश्ता थोडा शिथिल हुआ है और उसमे वह प्रेरकता का तत्व लगभग नहीं रहा जो इससे पूर्ववर्ती कविता के सदर्भ मे होता था। केवल पूर्ववर्ती आधुनिक कविता ही नहीं बल्कि इससे पहले भी हिंदी कविता की एक लबी परपरा पाई जाती है जिसम चदबरदाई से लेकर भारतेदु हरिश्चन्द्र तक हैं। कई बार मुझे लगता है कि इस विरासत से आज की हिंदी कविता का रिश्ता लगभग टूट सा गया है। यह स्थिति थोडी दुर्भाग्यपूर्ण है क्याकि अतीत के साहित्य से जब समसामयिक रचना का सबध टूटता या शिथिल होता है तो उसका सीधा प्रभाव कविता पर यह पडता है कि उसमे क्रमश स्मृतिया क्षीण होती जाती हैं। मैं मानता हू कि शब्दबद्ध कला और खासतौर से कविता एक स्मृतिगर्भी कला है और इस स्तर पर भी आज की कविता को आत्मालोचना की प्रक्रिया से गुजरना होगा।

अशोक वाजपेयी एक अर्थ मे तो हर सच्चा कवि यो लिखता है मानो कि वह आदिकवि हो, वह अपने से पहले की सारी लिखत पोछकर ही अपना अक्षराम्भ करता है। पर दूसरे अर्थ म हर सच्चा कवि नया शायद ही कुछ करता हो वह तो पहले की कई इबारतो के तुमुल मे अपनी एक इबारत के लिए समय और जगह खोजने की कोशिश भर करता है। कहने को तो लोग कबीर तुलसी सूर आदि का नाम लेते

हैं पर आज की हिन्दी कविता मे इनके किसी सक्रिय उत्तराधिकार का चिह्न कम से कम मरी अधेड-कमजोर आँखो को नजर नहीं आता। यों तो आपने जो नाम लिये हैं वे सभी यशस्वी कवि हैं जिन्होंने हिन्दी कविता को सम्भव किया है पर मुझे लगता है कि आज की कविता के सिलसिले में निराला और अज्ञेय दो प्रमुख बिन्दु हैं और ऐसा ही एक प्रमुख बिन्दु रघुवार सहाय है। निराला ने कविता म कल्पना के भूगोल और साहस को बढाया अज्ञेय ने कविता को गहरी प्रश्नाकुलता दी और रघुवार सहाय ने निपट गद्य को कविता म बदलने की हिकमत सिखायीं। आज की कविता म अन्यथा पन्त जैसी सुकुमारता और प्रकृतिप्रेम का कवि कहाँ? प्रसाद जैसी सभ्यता-समीक्षा और पूर्व-पश्चिम की द्वन्द्वचतना का उद्यम करने वाला कौन है? दिनकर का दृप्ट रिटोरिक किसके बस का है? नागार्जुन को क्लैसिकल मूलबद्धता और अचूक विनोदभाव कहाँ मिलता है? मुक्तिबाध जैसी मरणातक बेचैनी और अपने समय के औपन्यासिक दृष्यपट का साधन का हिम्मत किसम है? त्रिलोचन जैसी भाषाई शुद्धता एक हा रूप का जीवनभर साधने का कौशल कहाँ मिलता है? राजकमल चौधरी जैसी वैध्यता किसम खोज और धूमिल जैसा फक्कड वाक्पटुता का अन्न मौका कहाँ।

लीलाधर जगूडी आज की कविता अपने समय और उसमे घटित होने वाली घटनाआ और पैदा होने वाल चरित्रा से जुडी हुइ है। वह प्रसाद स लकर धूमिल तक का निरन्तर बदलता जाती गतिशालता स जुडी हुई है। अपने को निरन्तर बदलते चलना आज की कविता की भी मुख्य परम्परा है।

कविता म सबसे पहले अलग होने की पहचान भाषा के माध्यम से और जीवन की पहचान चरित्रा के माध्यम से होती है और उसक बाद अपने समय के सामाजिक सघर्षों से। सब मिलकर एक बिल्कुल ही अनजाना अन-पहचानना और नया-नया सा मुहावरा जब बनता है तब भी नये की पहचान होती है। कहने सुनने की भी लय बदल जाती है। धूमिल की कविता की लय उसके चरित्र और उसकी भाषा अपनी पूर्ववर्ती कविता से एकदम भिन्न थी। उस भाषा मे समसामयिक जीवन का समस्याओ का और मुहावरो का जबर्दस्त हस्तक्षेप था। ठीक उसी तरह जैसे कि जयशकर प्रसाद ने खडी बोली को कविता रचने की कोमलता और भाषा को विद्वता के आतक से मुक्त करते हुए अर्थ गाभीर्य से भरी हुई सादगी का सौन्दर्य सौंपा। उसी तरह धूमिल ने भी कविता की चुकी हुई भाषा को निरस्त करते हुए एक नया भाषा पकडा। मैथिलीशरण गुप्त जिस तरह भाषा का दिन-ब-दिन अपन तरीक से सभावनाहीन बना रह थे उनके बरक्स प्रसाद जा की भाषा कविता म नाटक म और कथा साहित्य म नया सभावनाओं को पैदा कर रहा थी। मुझे यह कहन में काई सकाच नहीं हो रहा कि आग क गद्य और पद्य म प्रसाद की भाषा स ही रास्ते निकले हैं। निराला और ज्ञानरजन मुक्तिबोध और उदय प्रकाश आदि प्रसाद का भाषा की देन हैं और उस भाषा का अगला पडाव लगते हैं। प्रमचद की सरल-सपाट वर्णनात्मक यथार्थवादी अनलकृत भाषा का और मैथिलीशरण गुप्त की इतिवृत्तात्मक अलकार मिश्रित भाषा का विकास आगे के किसी बडे लेखक या कवि मे नहीं दिखाई देता है।

प्रेमचद की भाषा दूसरे को प्रेमचद नहीं बनने देती। उनकी जीवन दृष्टि और सामाजिक दृष्टि का जैसा विस्तार या विकास दिखता है वैसा उनकी भाषा का प्रभाव आगे के लेखकों म नहीं दिखता। प्रमचद अपनी भाषा की अतिम सीमा हैं। रघुवीर सहाय और धूमिल अपने समय की एक ही भाषा के दो पहलू हैं। रघुवीर सहाय मे आज भी बहुत कुछ सीखा जा सकता है। अज्ञेय भिन्न दिखते हैं क्याकि उनमें प्रसाद पत निराला और मैथिलीशरण गुप्त का भाषिक मिश्रण फिल्टर होकर उन्ह एकदम अलग

किस्म का कवि बना देता है। उनमे परम्परा की उदात्तताए और आधुनिकता की विडबनाए और विकलताए अक्सर दीख जाती हैं। "दीख" जाती हैं यह शब्द अज्ञेय क यहाँ सबस ज्यादा प्रयुक्त हुआ है। मुझे हमेशा लगता रहा है कि अज्ञेय किसी चीज को बहुत देर तक बहुत से कोणा से देखते हैं। इसीलिए उनके यहाँ "दिखना" - "दीखना" हो जाता है। अज्ञेय के काव्य म क्षणिक कौंध भी बहुत देर तक दिखती है। जहाँ तक प्रश्न मुक्तिबोध नागार्जुन त्रिलोचन और राजकमल चौधरी का है - वहाँ तक एक साथ कुछ कहना बहुत मुश्किल है। मुक्तिबोध यथार्थ को एक रहस्य भरे शिल्प म प्रस्तुत करते हैं। व किसी भी चीज म डर पैदा कर दत है। "जिमि अकाल के कुसुम भवानी"।

मुक्तिबोध राजकमल चौधरी और धूमिल एक हा वक्त म कविताए लिख रह थ। उसी वक्त अज्ञेय नागार्जुन और त्रिलोचन शास्त्री भी रचनारत थे। फिर भी उन सबका कविता ससार सर्वथा अलग-अलग है। मुक्तिबोध और धूमिल आजादी क बाद की कांग्रेसी राजनीति से अत्यन्त क्षुब्ध लगते हैं जबकि राजकमल चौधरी वैयक्तिक अपराध बोध क साथ तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितिया के उतन ही *खिलाफ हैं जितने मुक्तिबोध। मुक्तिबोध और धूमिल वैयक्तिक दायित्व को सामाजिक* दायित्व मानते हैं जबकि राजकमल चौधरी सपूर्ण सामाजिक दायित्व के विरुद्ध एक व्यक्ति को रखकर दखते हैं जो कि अपना किसी वैयक्तिक मुक्ति को भी सामाजिक मुक्ति मानता है। अज्ञेय की कविता का गुण-धर्म इन सबसे भिन्न है। वह व्यक्तिवादी के साथ-साथ एक खास किस्म क सौन्दर्यवादी भी हैं। नागार्जुन और त्रिलोचन शास्त्री खाटी भारतीय कविता क लोकतत्व को लेकर अपना कविता ससार रचन वाले कविया म हैं। उनके यहाँ शास्त्रीयता का समकालीन रचाव है और आधुनिकता का खिंचाव भरा अब टूटा-तब टूटा वाला सम्बन्ध भी मौजूद है। नागार्जुन जितने सामाजिक-राजनैतिक प्रम के कवि हैं, उतने ही व्यग्य क सान्दर्य स भी उन्होंने अपनी कविता को माँजा है। वे अफसोस और उल्लास दोनो को एक साथ निभा ल जाने वाल कवि हैं। त्रिलोचन शास्त्री देशी मुहावर क अप्रचलित अर्थों को अपनी कविता म किसी न किसी नय अनुभव का हिस्सा बनात हैं। इन सभी कविया की परम्परा परिवर्तन की परम्परा है।

परम्परा म परिवर्तन स्वय अतर्निहित है। परम्परा का मतलब ही होता है दूसरे से दूसरे तक जाना। दूसरे स दूसरे तक जाने का मतलब है पहले से तीसर तक जाना। तीसर से जो दूसरा है वह चौथा है और इसी तरह चौथे से जो दूसरा है वह पाँचवाँ है। पर हर किसी को एक से दूसरे और फिर हर दूसरे से दूसर तक जान म हर क्षण परिवर्तित होना पडता है। यह परिवर्तन परम्परा के अर्थ म गुथा हुआ है। परम्परा म परिवर्तन का समटते चलने की बहुत बडी शक्ति है। आज की कविता सरसरी तौर पर दखन से इन कविया स सीधे जुडी हुई नहीं दिखती है लकिन गहराई से देखने पर परिवर्तित जीवन के अनुभवा स पैदा होती हुई दिखती है। इस अर्थ म इन कविया स आज की कविता जुडी हुई भी है और परम्परा को आगे बढान की दृष्टि स भिन्न भी है।

वर्णनात्मक स्पष्ट सपाटता लिये हुए प्रेमचद की कहानिया की भाषा आज की पत्रकारिता की भाषा म विकसित दिखाई देती है। लगता है प्रेमचद की भाषा न साहित्य म नहीं पत्रकारिता म विकास किया है। साहित्य मे प्रसाद की भाषा का नित नव्यतम विकास दिखाई देता है। प्रसाद क बिना निराला घटित नहीं हो सकते थे लेकिन रागदरबारी, घण्टा और - 'और अत म प्रार्थना" प्रेमचद का स्मरण नहीं कराते। जैसे साहित्य मे कबीर हर पीढी का पीछा करता है वैसे प्रेमचद नही करते। इस दृष्टि से प्रसाद म आधुनिकता के प्रेरक तत्व ज्यादा है।

चद्रकात दयताले परम्परा के विकास और समय की आकाक्षा के अनुरूप परिवर्तन क मध्य जो रिश्ता है वही आज की कविता का अपनी पूर्व काव्य परम्परा से है।

प्रभात त्रिपाठी इस सन्दर्भ म सबसे पहला सवाल तो यही है कि आप परम्परा को किस अर्थ म लेते हैं? किसी भी कविता का परपरा स कट सकना लगभग असभव है क्योकि परपरा भाषा म ही मौजूद है। दूसरी बात यह भी कि कवि की और इसी अर्थ म आदमी की कोई एक परपरा नहीं होती। उदाहरण क लिये निराला मुक्तिबोध और धूमिल इस अर्थ मे एक ही परपरा के कवि कहे जा सकते हैं कि तीना म ही सामाजिक अन्याय क विरुद्ध प्रतिरोध का एक जागरूक स्वर है पर धूमिल की सृजनशीलता इस अर्थ मे सामित है कि उसम उस तरह की गहराई और साद्रता नहीं है जैसी कि मसलन निराला या मुक्तिबोध म है। उसी तरह निराला म जो वैविध्य और जैसा आध्यात्मिक दीप्ति है मुक्तिबोध म वह नहीं है। आज के कविया के बारे म यह कहना एक सरल सपाटोक्ति ही होगी, कि वे परपरा से जुडे हैं हालाकि यह मिथ्या बयान नहीं है। मेरा खयाल है कि आज की कविता अपन रूपाकारा का बहुलता म अपनी परपरा को समृद्ध ही करती है पर भावना की गहराई और अतर्निहित करूणा के मामले म वह निराला या मुक्तिबोध का कविता की तुलना म कमतर ही ठहरती है।

वणुगोपाल इस सवाल का चरित्र घनघोर एकेडेमिक है। आप जानते हैं कि अलग होना भी जुडन का ही एक तरीका होता है – धूमिल ने जिस बिंदु पर 'चौधरी का चमरौधा' उतारने की बात कही थी उस बिंदु पर कई कवि हैं। 'परम्परा' पर बहस काफी पुरानी नहीं हो गयी है क्या?

राजेश जोशी मुझे लगता है परपरा भी एक तरह का सस्कार है। वह अनचाहे भी आपके अदर मौजूद होती है। एक भाषा जिसम आप लिखना शुरू करते हैं, क्या आप उस भाषा मे पहले रच गय सब कुछ से पूरी तरह मुक्त हो सकते हैं? मुझे लगता है ऐसा नहीं हो सकता। वस्तुत हिन्दी की अभी तक की सारा कविता अनेक वैचारिक मतभेद के बावजूद उन मूल्यो म विश्वास करती रही है जो भारतीय समाज ने स्वाधीनता आदोलन क दौरान अर्जित किये थे।

अलग होने का जहाँ तक प्रश्न है किसी भी दौर की कविता अपनी पूर्ववर्ती कविता से न तो नाभिनाल-बद्ध होती है और न पूरी तरह से अलग। आज की कविता अपनी पहले की कविता की तुलना मे अधिक जनतान्त्रिक है। वह नायक के निष्कासन के बाद की कविता है। इस कविता न 'देखा है' का दूरी का खत्म किया है। यह एक शामिल आदमी की कविता है।

अरुण कमल पीछे की सारी कविता हमारा टेक है। एक कवि मे अनेक पूर्वज कवियो के गुणसूत्र मिले होते हैं। पर वह सजग होकर भी एक नयी सगति बिठाता है पूर्वज कवियो के बीच जो कि उसकी परम्परा होती है। हर थोडे समय पर नयी सगति बिठानी पडती है। उदाहरण के लिए जिसे आठव दशक की कविता कहा जाता है उसने धूमिल–राजकमल को छोडकर नागार्जुन–त्रिलोचन से अपने को जोडा और निराला से बीच बीच मे शमशेर–मुक्तिबोध को भी याद किया पर अज्ञेय या दिनकर से प्रगटत नहीं पत–प्रसाद से भी नहीं। लेकिन धीरे–धीरे इन कवियो मे भी परिवर्तन आ रहा है। हर कवि अपने प्रिय कवि का हाथ एक न एक दिन छोडकर चलता है और फिर नये रहबर मिलते हैं। आज मुझे लगता है कि टुकडे–टुकडे जोडकर धूमिल न जो कथरा जैसी कविता बनायी बिल्कुल सीधे वक्तव्यो को लेकर जो कविता बनायी चोट करने वाली हथौडे जैसी कविता उससे बहुत कुछ सीखना है। राजकमल ने जो ना–कुछ को कविता म बदला जो भी कहा उसे कविता का स्तर दे दिया– इससे भी बहुत

साखना बाकी है। समय जो करा दे।

सुधीर रजन सिह आपने जिन कवियो के नाम गिनाये हैं वे सभी बडे हैं लेकिन सभी अनुकरणीय नहीं हैं। आज बहुत-से कवि सबसे ज्यादा जुडे रघुवीर सहाय और धूमिल से बहुत-से कदारनाथ सिह से भी जुडे लेकिन उनमें से अधिकाश कविया ने अपना भला नहीं किया। मैं अक्सर महसूस करता हूँ कि आधुनिक हिन्दी कविता के वास्तविक प्रस्थान विन्दु निराला हैं। एक दूसरी धारा है जिसके प्रस्थान विन्दु निराला हैं। एक कृश सुन्दर धारा पन्त भी हैं। निराला की धारा के क्रम म नागार्जुन और त्रिलाचन हैं, रघुवार सहाय भी उसी धारा म हैं। अज्ञेय और मुक्तिबोध अलग-अलग तरह से प्रसाद से जुडे हैं। अज्ञय का प्रसाद-विरोध व्यक्तिगत है वे हैं उसी धारा के। हमारी समझ से अनुकरणाय कवि निराला हैं किसी के लिए प्रसाद भी अनुकरणीय हो सकते हैं वे भी एक विराट प्रस्थान हैं। अज्ञेय और नागार्जुन भी अनुकरणीय हो सकते हैं लेकिन धूमिल और रघुवीर सहाय को अनुकरणीय नहीं बनाया जाना चाहिए। इनका हम बहुत खराब असर भी देखने को मिला है। मुक्तिबोध के अनुकरण की भी अभी तक सार्थकता सिद्ध नहीं हो सकी है। कथाप्रधान-घटनाप्रधान कविताआ का युग अगर कभी आता है तो दिनकर क प्रभावा की भी कल्पना की जा सकती है। दिनकर क ओज का प्रभाव अब मुश्किल हा लगता है। जहाँ तक राजकमल चौधरी की बात है तो उन्ह अभी तक वह कद नहीं दिया गया जिसके वे वास्तविक हकदार हैं आज की कविता पर उनके प्रभाव का प्रश्न तो बाद म आता है। तो मेरा कहना ये है कि आधुनिका मे निराला को प्रस्थान बिन्दु बनाय तो हम परवर्ती परम्परा का भी सार्थक इस्तेमाल कर सकगे और कविता को नई मजिल भी दे सकेगे।

प्रश्न 6 क्या समकालीन हिंदी कविता ने हिंदी समाज म कविता की हजारो वर्ष की वाचिक परम्परा से, लाकभाषाओ और बोलियो से किसी रूप मे कुछ ग्रहण किया है? किस रूप मे?

कदारनाथ सिह देश की वाचिक परपरा और लोक भाषाआ के साहित्य से थोडा हम दूर जरुर गए हैं और यह शायद नागरिक सस्कृति के विकास की प्रक्रिया मे ही निहित है। पर कुल मिलाकर मैं देखता हू तो बहुत से समकालीन कवियों म लोक साहित्य या लोक अभिप्राया के साथ एक सुखद रिश्ता दिखाई पडता है। जहा तक वाचिक परपरा का सवाल है तो इसकी लिखित परपरा के साथ कैसे सगति बैठे यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है जिसे कुछ पहले के कविया ने उठाया था और यह आज भी विचारणीय बना हुआ है। मेरा मानना है कि कविता के लिखित रूप म भी उसकी मूलभूत वाचिकता की रक्षा की जानी चाहिए क्योकि अपनी प्रकृति से ही कविता पहल वाचिक है और फिर लिखित और यह एक ही कविता क भीतर भी हो सकता है। कई बार मुझे लगता है कि व्यापक समुदाय के प्रति सबोधित न होने के कारण भी शायद वाचिकता का किसी हद तक क्षय हुआ है। इस प्रश्न पर अलग से विचार करने की जरुरत है।

अशोक वाजपयी सैकडो बरसो की वाचिक परम्परा से आज की हिन्दी कविता का सम्बन्ध ता क्षाण ही है। कम से कम कोई सीधा सम्बन्ध खोज पाना कठिन है। हमारी कविता कुछ इस कदर शहराती हो गयी है कि उसम लोकछबियाँ कम ही आती हैं और अगर आती भी हैं तो अकसर कुछ नौस्टैल्जिक ढग से। यह नाट करना दिलचस्प है कि हिन्दा क ग्रामीण समाज म सभी लागा का रातिकविता के कई

छन्द याद हैं और उन्हे आनद दते हैं जबकि ज्यादातर कवि और आलोचक रीतिकविता को पतनशील और समाज स कटी कविता मानते-मनवाते रहे हैं। कविता का जा थाडा-बहुत सस्कार जन म अभी भी बचा है उसका कोई लाभ आज की कविता नहीं ल पायी है।

लीलाधर जगूडी समकालीन हिन्दी कविता का मिजाज वर्णन का ज्यादा और बोल चाल का कम है। जहाँ है वहाँ बोल-चाल काफी प्रभावशाली और अपनी एक नयी लय रचता हुआ सुनायी व दिखाई दता है। अब कविता कवल सुनाय जाने पर निर्भर नहीं है वह पढी और देखी भी जाती है। ग्राह्यता क स्रोत बदल गय हैं। कविता भा अब "चाक्षुष" माध्यम का विषय हो गयी है। कविता का "पाठ" हर पाठक अपन लिए अपने-अपने ढग स करता है। कोई एक-एक शब्द अलग-अलग करके पढता है काई पूरे-पूर वाक्य बनाकर पढता है कोई अपनी सास की प्रवृत्ति और शक्ति की नाटकीय सभावनाओ का प्रयाग करत हुए पढता है। यानि अब कविता 'बाली ' नहीं जाती "पढी" जाती है। पिछले तीस वर्षो की हिन्दी कविता ने अपने वाचन म अपने पठन म भी कई प्रयोग किये हैं। समकालीन अच्छी कविता ने अपने लिए हर बार नये छद का भी आविष्कार किया है। लोकभाषाओ और लोक बोलिया की अपेक्षा "लाकतत्व क अनक रग पिछले तीस वर्षो की कविता म छिटके हुए हैं। अगर गौर से देख ता हिन्दी कविता म पिछले पचास-साठ वर्षो की एक समग्र समकालीनता अपनी अलग-अलग स्थानीयताओ क साथ मौजूद है।

चद्रकात देवताले हमारी काव्य-भाषा कई अर्थो म मुश्किल पैदा करती है। एक तो वह सीधे अर्थों म माय बाली नहीं है। और जिस रूप म वह जातीय भाषा है उस पर आग्ल-भाषा के विन्यास की छाप कई तरह से है।

फिर भी हर कवि की एक निजी शब्द-सम्पदा भी हाता है जा उस घर और अपन आसपास क लाक से सस्कार रूप म प्राप्त है। वाचिक परम्परा का रूप भी समय क साथ बदला है। मीडिया मे वाचिकता का विस्तार दख सकत हैं। लाक बालिया क सायास प्रयाग क खतर भा सामन आए हैं। हम क्या भूलते हैं कि लोक बालिया भी भाषा और मीडिया क प्रभाव से अपना रूप बदल रही हैं।

प्रभात त्रिपाठी हजारा वर्षो की वाचिक परपरा लोकभाषा और बालिया के साहित्य के साथ या तो हिन्दी कविता का रिश्ता ही नहीं है या फिर वह रिश्ता अकादमिक अथवा मध्यवर्गीय प्रदर्शनप्रियता का रिश्ता है। यह समकालान कविता की एक एसी सीमा है जो उसे और उसकी सारी प्रगतिशीलता को कठघरे म खडा करती है। लोकभाषा के परिवेश स हमारा रिश्ता अपनी कविता क सजावटी तवर तक सीमित है।

वणु गोपाल क्या ग्रहण किय बिना रह सकता है? नाटकीयता हा या प्रति- नाटकीय शास्त्रीयता - मुझे तो समकालान कविता का कोई भी रूप वाचिक परम्परा स अलग नहीं दिखायी पडता। वह अपने किसी भी रूप म सम्बोधित करती है और यह सम्बाधित करना चाह जितना बारीक नफीस (या आजकल पोस्ट मार्डनिस्ट) हा पर बतरस का भारतीय चरित्र उसम रहगा ही। विश्व चरित्र भी भारतीयता म छनकर ही आयगा क्योंकि भाषा - और वह भा हिन्दी - गहरे अर्थ म सास्कृतिक है।

राजेश जोशी यह कविता वस्तुत उस दीर्घ परपरा का हा हिस्सा है। यह वाचिक क इस अर्थ मे भी सबसे अधिक करीब है कि इसन भाषा का सीधे बोलचाल से ग्रहण किया है। इसलिए इसमे अपनी

बोलिया का सस्कार भी अधिक है। हालाकि यह खूबी प्रगतिवाद की कविता म आज के बनिस्बत ज्यादा दिखती है। बालियो से वैसा सघन रिश्ता इस कविता का नहीं है। यह कविता नौकरी आदि की बाध्यता क चलत तथा आजादी के बाद हुए शहरीकरण क चलत नगरा म आ गय पढ लिख मध्यवर्ग क द्वारा लिखी जा रही कविता है। नागार्जुन, त्रिलोचन या केदारनाथ अग्रवाल की तरह अपनी बोलियों से इसका रिश्ता गुथा बुना नहीं है। बोलिया की अनुगूजें इसकी स्मृति का हिस्सा जरूर है।

अरुण कमल खडी बोली हिन्दी की कविता बिना बालिया के आधार या अस्तर के सम्भव नहीं है। जो महानगर हैं उनकी भी अपना बोली है। वाचिक परम्पराआ से जुडाव आज कम हुआ है क्याकि लिखालिखी की बात ही ज्यादा है। काई प्रत्यक्ष सामने बैठा हुआ श्रातावृन्द भी तो नहा है। सबस अच्छी कविता वा है जो बिल्कुल बोलने की तरह मुँह स निकलन वाले स्वाभाविक वाक्य या वाक्य-खड की तरह लगे।

सुधार रजन सिह आधुनिक हिन्दी कविता म लोकजीवन और लोकअभिव्यक्ति के कुछ गुण आप खोज सकते हैं पर *यह मूलत नागरिक कविता है। लाकभाषा का कथाआ और मिथका क प्रयाग* की तुलना म इसमे लोक मुहावरो का गहण भा कम दिखाई पडता ह। छन्द और उक्तिया क स्तर पर लोकतत्व का ग्रहण जो आप खोजत है वह भी कविता क नागरिक ढाच क भातर दब हुए रूप म उसका अस्तित्व देखते हैं। कविता की तुलना मे स्वभावत गीता मे लाकतत्व अधिक मुखर रहा है।

प्रश्न 7 क्या आप यह मानते हैं कि छद से मुक्त होकर समकालान हिदी कविता ने काफी कुछ खोया भी है?

केदारनाथ सिह छद मुक्त होकर कविता ने क्या खाया है इसको ठीक-ठीक जाच-पडताल ता अभी तक नहीं की गई है पर इतना ता साफ है कि उसक स्मरणीयता का तत्व कम हुआ है। किसी ने कहा था कि छद कविता की आयु है और इसमे सच्चाई का अश अवश्य है। इसलिए गद्य की लय मे लिखी जाने वाली कविता को छद के इस वैशिष्टय को एक चुनौती के रूप म निरतर अपने सामने रखना होगा। सच्चाई यह है कि छद म होकर भी कविता अपने उद्देश्य म उतना हा असफल हा सकता है जितना छदहीन हाकर। दाना म से काइ व्यवस्था कविता म अच्छे-बुरे हाने की आत्यतिक कसौटी नहीं है। एक बात मुझे जरुर लगती है (और यह बात मैं अन्यत्र भा कह चुका हूँ) कि गद्यवृत्त और छद दोनों के स्वास्थ्य के लिए यह जरुरी है कि दोनो के बीच एक सुखद आवाजाही निरतर बना रह। हमार कुछ महत्वपूर्ण कविया ने इस दिशा मे कुछ महत्वपूर्ण कार्य किए हैं जो हमारे लिए प्रेरणादायक हो सकते हैं।

अशोक वाजपेयी मुक्ति पायी, बहुत बडा सम्वेदना का भूगाल पाया पर छन्दमुक्त होकर कविता ने लय की विविधता खायी है सयम और कौशल गँवा दिये हैं कई बार जटिलता से जूझने के बजाय उससे आसानी से छुटकारा पा लिया है। कई बार लगता है कि खडी बोली म छन्दात्मकता कम है और कि शायद मुक्त छन्द ही उसका अन्तन जातीय छन्द है। उसम गाना जब-तब ता सम्भव होता है पर ज्यादातर हिन्दी कविता गाती नहीं है। यह एक क्षति है अगर मुक्ति है तब भी। हम अपना समय और अपना समयातीत दोनो कभी-कभार गा सकना चाहिय।

लीलाधर जगूड़ी यथाकथित आकलित और निर्धारित छदा से मुक्त होकर हिन्दी कविता ने जितनी सामर्थ्य पायी है उसके मुकाबले कुछ खोया है वह नगण्य है और उसे खोना शायद ऐतिहासिक जरुरत थी। उदाहरण के लिए शब्द सयोजन में शब्द सगति का जो एक सगीत (राइम) होता है- उसे आधुनिक हिन्दी कविता खोती चली गयी। लेकिन विरुद्धों का सामजस्य जिस वैचारिक सगीत के साथ आया है - वह पहले की छदबद्ध कविता म इस कदर आकर्षक और सार्थक नहीं था। छद गेयता का नाम नहीं है। एक छद दृश्य म हाता है एक विचार मे और एक छद भाषिक अभिव्यक्ति मे हाता है। भाषिक अभिव्यक्ति म भी एक गैर-भाषिक अभिव्यक्ति का छद होता है जो किसी अभिव्यक्ति के सूक्ष्म से सूक्ष्म कोष्ठ म छिपा हुआ होता है। छद मात्राआ या केवल "रिद्म" का नाम नहीं है बल्कि छद रचना क पूरे व्यक्तित्व से बनता है। छद मात्राआ स निर्धारित नहीं होता बल्कि वह अनुभव और अनुभूति की मात्रा से और किसी चीज को देखने के ढग से बनता है। समकालीन हिन्दी कविता का ढाचा प्राचीन छादिक काव्य से निस्तारित नहीं है बल्कि इसका ढाँचा पूरी दुनिया की कविता के ससर्ग से बना है। भारतीय कविता और पूरी दुनिया की कविता जीवन म विज्ञान के जबर्दस्त दखल के कारण अनुभूति के एक जैसे ढाँचे म ढल गयी लगती है। ढाँच भले ही एक से हो गये हो आत्माए अभी अलग-अलग हैं। इसा तरह हर कथ्य हर घटना हर दृश्य अपना अलग-अलग छद लिये हुए रहते हैं। यो देखा जाये तो नये छद का अन्वेषण भी अनुभव की काव्य-युक्ति है और ऐसी दशा म छद से भला मुक्ति कहाँ?

चद्रकात देवताले मैं तो यह मानता हूँ छन्द से मुक्त होना आधुनिक कविता की नियति थी। उसी तरह जैसे इसका इस्तेमाल पुराने कविया की।

छन्द की कचुल को कविता ने अपनी परम्परा ही म उतारा है। निराला और और मुक्तिबोध जैसे बडे कविया ने इसकी चिता नही की और जहाँ तक व्यापक सम्प्रेषणीयता का सवाल है तो छन्दहीनता नहीं इसके लिए अन्य कई कारण हैं जिनके चलते व्यवधान आए हैं। छन्द मुक्ति हमारे समय की आकाक्षाओ और सामाजिक चिन्ताओ के दबावो का परिणाम है।

प्रभात त्रिपाठी छद मुक्ति से ता काफी नुकसान हुआ है लेकिन वह इस अर्थ म अनिवार्यता थी कि आधुनिक युग गद्य का युग है। पद्य को परपरा का पिष्टपेषण आज भी हिदी के कवि सम्मेलनी कवियो मे गद्य और पद्य दोनो को विकृतिया सहित जारी है। पर उस तरह की छद योजना गभीर कविता के लिये कोई काम की चीज नहीं है। धूमिल जैसे कवि की छदात्मकता मे भी एक तरह की पापुलिस्ट मुद्रा थी।

राजेश जोशी छद हमारी स्मृति और हमारे अध्ययन का हिस्सा तो है पर हमारे कान छद से नहीं भरे हैं। छद व्याकरण का मामला नहीं है। आज की कविता याने छायावाद से लेकर आज तक की श्रेष्ठ कविता एक बडा भाग वस्तुत छद से अलग हो कर ही प्राप्त किया गया है। जब आप कुछ प्राप्त करते हैं तो कुछ न कुछ खोते भी है। मुझे लगता है जो पाया है वो ज्यादा बडा है और मूल्यवान है।

अरुण कमल छद छोडने से वर्तमान हिदी कविता घाटे मे हैं। रघुवीर सहाय-केदारनाथ सिह तक ऐसा नहीं था। लेकिन मैं केवल छद की ही बात नहीं कर रहा मेरा मानना है कि हिदी कविता म आज श्रवण-बिम्ब (ऑडिटरी इमज) का अभाव है। यानी समकालीन हिदी कविता कुछ कुछ बहरी है।

सुधीर रजन सिह बाहरी नियम के घटने से कविता कुछ अकुशल हाथा में अवश्य गई है। लेकिन आप

छन्द से मुक्त होना किसे कहते है? छन्द का अर्थ नियत्रण। उसमे वर्ण, ध्वनि शब्द लय सबका नियत्रण शामिल है। इस अर्थ मे एक अच्छी कविता छन्द से मुक्त नहीं होती। जहाँ सचेत रूप से यह मुक्त पाई गई है वह भी सराहनीय है। मेरा मानना है कि कविता आज भीतरी नियत्रण के अभाव से कमजोर हुई है छन्द, मुक्त छन्द और छन्दमुक्त कोई वास्तविक कारण नहीं हैं। इन सभी कोटियो में बहुत अच्छी और बहुत बुरी कविताएँ देखी जा सकती हैं।

प्रश्न 8 क्या आप यह मानते हैं कि कविता आज एक ऐसे मुकाम पर आ पहुची है कि राष्ट्रवाद, स्वच्छंदतावाद, व्यक्तित्व की खोज, क्रान्तिकारी आदर्शवाद, सशयवाद और मोहभंग के पुराने सारे दौर अब खत्म हो चुके हैं। यदि ऐसा है तो आज लिखी जा रही कविता मे समकालीनता की तलाश किन धरातलो पर हो रही है? हिंदी कविता की विकासशील संभावनाएं क्या हैं?

केदारनाथ सिह राष्ट्रवाद, स्वच्छदतावाद और व्यक्तित्व की खोज इत्यादि अवधारणाए बेशक किसी हद तक पुरानी पड चुकी हैं। जहा तक समकालीनता का प्रश्न है इतने लबे रचनात्मक अनुभव से गुजरने के बाद यदि वह अब भी तलाश की वस्तु बनी हुई है तो इस स्थिति पर स्वतत्र रूप से विचार करने की जरुरत है। कई बार मुझे यह भी लगता है कि कहीं हम समकालीनता को रबर की तरह कुछ ज्यादा नहीं खींच रहे हैं? नई प्रवृत्तियो नई भाषा और नई भगिमा के उदय के साथ साहित्यिक दौर के नाम भी बदलते जाते हैं। यह प्रक्रिया पिछले कुछ समय से ठहरी हुई सी है और हम सब कुछ को बिना ठीक-ठीक उसका सीमाकन किए समकालीनता के घेरे मे ही समेटकर चलते रहे हैं। शायद वह घडी आ गई है जबकि इतिहास के इस बिंदु पर जहा एक पूरी शताब्दी का अवसान और दूसरी का आरभ सन्निकट है तो समकालीनता के सवाल पर भी हमे निर्णायक ढग से विचार करना होगा और यदि अपरिहार्य लगे तो इस नाम को किसी अन्य स्वीकार्य नाम से प्रतिस्थापित करना होगा।

अशोक वाजपेयी विचार और कविता, सम्वेदना और सृजन में कभी कुछ भी पूरी तरह से खोया या गँवाया नहीं जाता। इसलिए अवधारणाओ के स्तर पर जो बाते बासी भी हो जाती हैं हमारी सम्वेदना और व्यवहार मे बची या बनी रहती हैं। समकालीनता का अर्थ सिर्फ अपने समय से बावस्ता होना भर नहीं है – उसके एक अर्थ कम से कम भारत जैसी सभ्यता मे, कई कालों से सम मे होना भी चाहिये। अज्ञेय शमशेर, मुक्तिबोध, त्रिलोचन श्रीकान्त वर्मा आदि ऐसे ही कवि हैं। पर बाकी ज्यादातर कविता न सिर्फ अपनी स्मृति गँवा चुकी है, वह अपने समय से इतना आक्रान्त है वह अपना अनन्त भी गँवा चुकी है।

लीलाधर जगूडी मैं ऐसा नहीं मानता। अभी बहुत से मोह बाकी हैं क्योंकि एक नया जीवन एक नया समाज आना बाकी है। कुछ भी खत्म नहीं हुआ हैं सिवाय मानवीय मूल्यो और नैतिकता के। यथार्थ भी एक आदर्श बन गया है। नयी कविता की यात्रा "सब उपमान मैले हो गये हैं," से शुरू हुई थी। इसका मध्यान्तर "कोई फर्क नहीं पडता" मे हुआ और इसका अत "सब कुछ चलता है" पर आकर टिक गया लगता है। रील कहीं फस गयी है या तो इसे एक झटके मे तोड दिया जाय या इसे सुलझा लिया जाये। व्यवधान और अधेरा बहुत है। अब जो भी शुरू होगा एक "जम्प" के बाद शुरू होगा। जर्क हटाया नहीं जा सकेगा। एक कट एक जर्क एक जम्प के बाद एक नयी कथा शुरू होगी।

समकालीनता की तलाश एक गाये जा चुके राग में नहीं हो पायेगी। एक नये ढग का एक नये रग का राग बनेगा। इस राग म जितना विराग होगा उतना अनुराग भी होगा। जितनी अटपटी शब्द सगति होगी उतनी ही तल्खी होगी बेचैनी और उतावलापन होगा। जिस तरह धर्म को जीवन के सिद्धान्त के रूप में विज्ञान ही बचा सकेगा उसी तरह कविता को भी मनुष्य का मनुष्य होना ही बचा पायेगा।

चद्रकात देवताले सब कुछ इस तरह का एक साथ खत्म नहीं होता है। जो खत्म होता है वह नए कारणों और सन्दर्भों से फिर सामने उपस्थित हो जाता है। हम किसी न किसी विश्वास और उम्मीद के सहारे जीते हुए दुनिया को देखते हैं। *प्रश्न स्वय कवि को परेशान करते हैं– और यह मुश्किल है कि हर प्रश्न* का उत्तर उसके पास हो। जैसे 'हिन्दी कविता की विकासशील सभावनाए' इसे पढकर क्या अटपटा *नहीं लगता। पता नहीं यह चिंता किसलिए? किसकी और क्यों?*

प्रभात त्रिपाठी आपने जिन अपरिभाषित या अल्प परिभाषित शब्दो क द्वारा हिंदी कविता के अनेक दौरों की समाप्ति को परिभाषित करना चाहा है उनसे मैं ठीक ठाक ढग से कुछ समझ नहीं पाया। आज की कविता मे समकालीनता की दिशा मे इन्हीं सारे शब्दों को एक नये और साप्रतिक सदर्भ में पढा जा सकता है। हालाकि तब भी समकालीनता की तलाश की कोई एकमात्र दिशा नहीं सुझाई जा सकती। मेरा खयाल है कि समकालीनता के ठोस सदर्भों से जुडे किसी भी कवि के लिये, उसके अपने अनुभवों और अपनी कल्पनाशीलता द्वारा सुझाये गये रास्ते ही उसकी अपनी कविता की तलाश के रास्ते हो सकते हैं।

वेणु गोपाल आप कभी रघुवीर सहाय और श्रीकान्त वर्मा को साथ-साथ पढे। 'दिनारभ', 'मायादर्पण' और 'आत्महत्या के विरुद्ध' को साथ-साथ पढना चाहिए। दोनों कवि एक दूसरे से प्रभावित प्रतीत होते हैं पर 'सीढियो पर धूप मे' की 'दे दिया जाता हूँ' कविता का विकास परवर्ती रघुवीर सहाय मे होता है जबकि 'भटका मेघ' के श्रीकान्त 'मगध' की बात करते हुए भी अन्तत भटके ही रह जाते हैं। हिन्दी कविता की विकासशील सभावनाए – उसे अपने को भटकने से बचाने मे ही हैं। वह जहाँ की भी हो– अपनी जमीन से – चाहे स्मृति के माध्यम से चाहे यूटोपिया के माध्यम से या ठोस यथार्थ के माध्यम से – चिपकी रहे – कसकर चिपकी रहे।

राजेश जोशी मुझे लगता है यह दौर नये स्तर पर राजनीतिक आर्थिक और सास्कृतिक साम्राज्यवाद *से सघर्ष का दौर है। प्रतिरोध की शक्तियाँ विखडित हुई हैं और बिखरी हैं। शिम्बोर्स्का के शब्दो का* सहारा लूँ तो कह सकता हूँ कि **उम्मीद एक नौजवान लडकी नहीं है अब।** भूमडलाकरण मुक्त बाजार *और सचार के क्षेत्र मे फैली सनसनी और आक्रामकता के सार तानेबाने को समझने बूझने और बेधने* की कोशिश मे ही आज की कविता को समकालीनता को तलाशा जाना चाहिय।

अरुण कमल आज समकालीनता का अर्थ है पूँजी बाजार स्वार्थ और अमानवीकरण के विरुद्ध जाग्रत होना। आज मनुष्य बेहद अकेला होता जा रहा है। पर यह ऐसा अकलापन है जिसमें एकात नहीं है। उसकी निजता स्वायत्तता और स्वाधीनता का उल्लघन हो रहा है। सामूहिकता म ही वास्तविक एकात है। आज कविता उसी सामूहिकता उसी एकात की खोज है।

सुधीर रंजन सिह कविता मूलत 'रोमाटिक जेनर' है। आपने जितने दौरो की चर्चा की उन सबमे *क्मोबेश यह प्रवृत्ति आप खोज सकत हैं।* आज की कविता मे भी रोमाटिकता और स्वप्नशीलता की

रक्षा होनी चाहिए।

प्रश्न 9 एक कवि के लिए 'विजन' या 'जीवनदृष्टि' का अर्थ क्या है?

कदारनाथ सिंह बिना जावन दृष्टि' या 'विजन' के रचना कवल अनुभववाद का अभिव्यक्ति हाकर रह जाती है। 'विजन' एक स्तर पर रचयिता के अर्जित अनुभवा का साराश है और दूसरे स्तर पर उसे अतिक्रात करने की एक गहरी सृजनात्मक विकलता भी। मुझे कई बार विजन बहुत कुछ एक चारा आर से बद कमरे की दावार क उस सुराख का तरह लगता है जहा स बाहर की दुनिया दिखाई पडता है। इस विजन के बिना महाकाव्य की सारी शर्तों को पूरा करते हुए भी 'साकेत' वह प्रभाव नहीं छाडता जो एक गहरे विजन स सपृक्त होने के कारण 'राम की शक्ति पूजा' कविता छोडती है। एक श्रेष्ठ कृति की सफलता का कवि की जीवन दृष्टि की गहराई या उसकी मौलिकता से गहरा सबध है। इतना और स्पष्ट कर दू कि जीवन दृष्टि एक रचनाकार की अपनी कमाई होती है और बडे सा बडा दर्शन भी अपनी यथातथ्यता म उसका स्थानापन्न नहीं हो सकता।

अशोक वाजपेयी हम जावन म जा पात-खाजत है और जैस अपन जीवन का विन्यस्त करत हे माट तौर पर हम उसे जीवनदृष्टि कह सकते हैं। उसक बिना न तो जीवन सम्भव है न ही कविता। पर यह दृष्टि हम पहले स मिली हुई नहीं हाती। हागी तो उससे हमारा सम्बन्ध निश्चय ही द्वन्द्व का होगा। किसी का भी जीवन पूर्वानुमय नहीं है और न ही कविता। हम जीन की प्रक्रिया म ही अपनी दृष्टि पाते हैं लिखकर ही कविता म अपनी दृष्टि अर्जित करते हैं। एक बार दृष्टि पाकर अगर उसे माँजना बदलना प्रश्नांकित न किया जाये तो वह एक बोझ बन जाती है जीवन और कविता पर ऐसा बोझ डालना रचनात्मक नहीं हो सकता।

लीलाधर जगूडी इसका उत्तर देना बहुत कठिन है। जावन भर काई भी रचनाकर एक विजन या एक जीवन दृष्टि ही ढूढता रहता है। हर बार उसे लगता है कि " उपमा बहुत मारि मति थोरी"। हर बार वह चाँद और सूरज तक पहुँचना चाहता है लेकिन जो पकड म आता है वह जुगनू ही निकलता है। वैसे अब ता जुगनू भी नहीं रह गये हैं। " प्वेटिक विजन" भी एक "तर्क" है। तर्क ही सिद्धान्त बनत जा रहे हैं। "जीवन दृष्टि" और "मूल्य दृष्टि" का द्वन्द्व अब ज्यादा चुनौती बनता जा रहा है। अब राटा क लिए सघर्ष का समय न्यायिक अनिवार्यता और सामाजिक समता का समय ज्यादा लगता है। सामाजिक बराबरी की रोटी एक सास्कृतिक रोटी के रूप म ही सकी जा सकती है।

चद्रकात देवताले कइ एय्यार मरत हैं तब एक कवि पैदा हाता है। जीवन दृष्टि क अनक अर्थ हा सकत हैं। कवि के बचपन की इसमे अहम् भूमिका होती है। अपने लिए कह सकता हूँ कि मैं तटस्थ नहीं रह सकता। और जीवन से प्रेम करता हूँ और तमाम चीज जो जीवन की सुन्दरता-बेहतरी के खिलाफ हैं उन्ह बाहरी तात्कालिक यथार्थ कहकर खारिज नहीं कर सकता। राजनीतिक पक्षधरता रचना म जावन और मनुष्य क प्रति प्रतिबद्धता ही का पर्याय है।

प्रभात त्रिपाठी कोई भी कवि अपनी जीवन दृष्टि को अपना कविता के सारे जद्दोजहद से अलग करक देख या पा सकता है इसमे मुझ सदह है। यह जरर है कि काई भी दृष्टि तभी कविता म सार्थक होता है जबकि उसम सवधा के व्यापक परिवेश मे अपनी कविता का तलाश का नैतिक साहस और

कल्पनाशीलता हो।

वेणुगोपाल जब कवि से प्रश्न पूछा जाये तो उसका अपना रचना संसार या रचना-कर्म ही सामने आकर खडा हो जाता है। जीवन-दृष्टि भी तो उसी मे से झलकनी चाहिए। हर दौर में यह प्रश्न पूछा जाता रहा है - खुद कवि ही पूछता रहा है और अपने ही रचना -कर्म से रु-ब-रु होकर कर्म की पडताल सबसे पहले कौन करे? यदि यह सवाल छोड भी दे तो कर्ता का यह तो अधिकार होता ही है कि वह पहल करे। कर्ता होने के नाते वह जिम्मेदार है और अपने को 'कटघरे' मे खडा महसूस करने के लिए अभिशप्त है। कविता लिखकर भी कवि यह मजूर कर लेता है कि यह 'कविता नहीं हाथ की छटपटाहट है' (रघुवीर सहाय) या 'गोली दागने की समझ है' (आलोकधन्वा) और फिर भी हम पाठक-गण जानते हैं कि यह कविता ही है। अपने कवि होने को नकार देने के पीछे एक जीवन-दृष्टि सक्रिय है। मुक्तिबोध कहते ही थे "पार्टनर अपनी पालिटिक्स तय करो।" जीवन-दृष्टि के बारे में पूछना दरअसल एक पालिटिक्स है और उत्तर (किसी भी तरह का) देना भी। कविताक में यह पालिटिक्स है और उत्तर (किसी भी तरह का) देना भी। कविताक में यह पालिटिक्स होती है होनी भी चाहिए। विजन या 'जीवन-दृष्टि' कोई बनी-बनायी चीज तो है नहीं, जैसा जीवन होगा वैसा दृष्टि होगी। 'कवि' का जीवन जीता हुआ कवि (एक अलग विजन रखेगा और कुकवि या अकवि (माफ किजिएगा) 'कुविजन' या 'अविजन'। यह होता नहीं जरुरत न होने पर भी मौके की नजाकत देखते हुए फिर से याद दिला रहा हूँ कि मुक्तिबोध ने जीवन-दृष्टि और राजनीतिक दृष्टि की एकता बतला दी थी। बाजार और उपभोक्तावाद के नये रूप सामने आये लेकिन 'शासन' 'शासक' और 'शासित के सम्बन्धो का चरित्र कहाँ बदला? हाँ ज्यादा जटिल हो गया। कितना जटिल? पिछले दिनो महाश्वेता देवी को भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला और मैं एक तरफ खुश था तो दूसरी तरफ चाहता रहा कि वे इस पुरस्कार को अस्वीकार' कर दे। यह जानते हुए और मानते हुए कि पुरस्कार को 'मुद्दा' बनाना उनके प्रसग मे ठीक नहीं है- मैं उनके स्वीकार कर लेने से दुखी भी था। कौन-सा पुरस्कार किनके हाथो से और कौन ग्रहण कर रहा था? कौन किसे इस्तेमाल कर रहा था? इन दिनो सारा भेद खत्म हो गया है - गाली निकालना भी और प्रशसा करना भी। फिर से 'व्यक्ति जीवन के केन्द्र मे आ गया है। वही जीवन-दृष्टि का निर्णायक होगा। कवि-रचनाकार का जीवन उपभोक्तावादी होगा और उसकी 'दृष्टि' उसके विरोध मे होगी - तो जो भ्रम है वह बडा होगा क्योंकि वह आज के युग का सत्य है। सुधीश पचौरी द्वारा 'कविता के अत' की घोषणा लाख खीझ पैदा कर - पर चेतावनी तो वह सच्ची है। अगर 'आदर्श' और 'यूटोपिया' (टॉमस मूर वाले अथ मे नहीं अर्नेस्ट ब्लॉक वाले अर्थ मे) कवि के जीवन से विदा हो जायेगा तो 'विजन' कैसे बच पायेगा? जब सर्वग्रासी मूल्यहीनता विकराल होने लगती है तो भविष्यहीनता का खतरा खडा हो जाता है और कोई भी विजन 'भविष्यहीन नहीं हो सकता। यह आपके पहले प्रश्न का उत्तर भी है।

जीवन-दृष्टि का अर्थ -'जो है उससे बेहतर चाहिए' (मुक्तिबोध) मे है। विष्णु खरे ने भी 'पहल' वाले साक्षात्कार मे इस ओर सही इशारा किया है। पाअलो फ्रेयरे ने भी तो कहा है "मेन्स वोकेशन इज टू बी मोर"।

राजेश जोशी जीवन के बीच घटित हो रहे सब कुछ के बीच जड और चेतन के बीच और पृथ्वी और ब्रह्माड में हो रही घटनाओ के बीच बहुत कुछ ज्ञात और अज्ञात है। हमे इन सारे रेशों को एक दूसरे से जोडकर समझना है। विजन का कितना विस्तार एक कवि कर पाता है यही उसकी पूजी है।

ग कमल विजन या जीवन दृष्टि फुटकर विचारो विचारधारा तथा दर्शन स उच्चतर भूमि पर स्थित है। इसका अर्थ है जीवन की सश्लिष्टता की प्रतीति जीवन के अर्थ का बोध और उस तत्व बोध जो जीवन के प्रत्येक काल–खड मे निरतर विद्यमान होता है। छाट लेखक के पास जीवन–दृष्टि होती। इसे हासिल करना पडता है। यह जीवन –दृष्टि उसकी समस्त रचनाआ को मिलाकर बनती विचार विचारधारा दर्शन सबक होत हैं हो सकते हैं जबकि जीवन–दृष्टि केवल उस कवि की होती उसकी स्वअर्जित निजी सम्पत्ति एकमात्र निजी सम्पत्ति जो पवित्र और अनुल्लघनीय है।

र रजन सिह कथासाहित्य और विशेषकर उपन्यास के सन्दर्भ म जहाँ विश्वदृष्टि पर जोर दिया रहा है वहीं कविता क सन्दर्भ मे 'इन्ट्यूशन' और अन्तर्दृष्टि पर। मेरा मानना है कि एक अच्छा 'विजन क सभी रूपों–विश्वदृष्टि अन्तर्दृष्टि और कामनसस को आत्मसात करता है।

10 पिछले एक दशक की आपकी मनपसद पाँच श्रेष्ठ कविताए कौन-सी हैं?

नाथ सिह अतिम प्रश्न के बारे म इतना ही कहूगा कि एक ता मुझ साहित्येतिहास को दशका टकर दखना थाडा अटपटा लगता है और फिर एक दशक म पाच को चुनना हो तो मेरे जैस पाठक ए यह अटपटापन और बढ जाता है। मैं इस बीच की कविताआ को याद करने की कोशिश करता अनेक पक्तिया की गूज कहीं मेरे मन मे सुनाई पडती है जिन्ह एक जगह समेटना कठिन हागा। इस पूरे खड की एक खास बात यही है कि उसे किन्हीं दो–चार या पाच–सात कविताआ म सीमित नहीं देखा जा सकता। मुझे लगता है कि यह केवल हिंदी ही नहीं बल्कि किसी हद तक पूरी लीन विश्व कविता का एक चरित्र लक्षण है।

क वाजपेयी ऐसा चुनाव करना मरे लिए कठिन है गैरजरूरी भी।

धर जगूडी पिछले ''एक दशक'' की पाँच श्रेष्ठ कविताए चुनना बहुत मुश्किल लग रहा है। आपने र्ष की जो सीमा लगा दी उसके हिसाब से सभवत आपका आशय 1986 से 1996 के बीच लिखी कविताओ से है। इस हिसाब से श्रेष्ठ पाँच कविताए तुरन्त बता पाना मुश्किल है।

। एक दशक मे हिन्दी के नये–पुराने कम से कम पन्द्रह कवियो ने बहुत अच्छी कविताएँ दी हैं। से प्रत्येक की एक दशक म एक श्रेष्ठ कविता का चयन अगर किया जाये तो कोई तस्वीर बनती र पाँच लोगो को पाँच श्रष्ठ कविताए चुनने से जल्दबाजी मे उनके साथ भी अन्याय होने की पूरी ना है। अत ' अन्याय अब भी सभावना है'' को मैं चरितार्थ नहीं करना चाहता। मैं अपने पसद ह–बीस कविया की एक–एक श्रेष्ठ कविता जरुर चुनना चाहता हूँ क्याकि इत्तफाक स कुछ अच्छी ए इस बीच वाकई लिखी गयी हैं।

न देवताले बेहद मुश्किल सवाल है। जिनने उत्तर दिये होंगे– उनके उत्तरा मे और उनकी दृष्टि म मेरी दिलचस्पी रहेगी।

त्रिपाठी इस प्रश्न क जवाब मे मैं अभी सिर्फ एक कवि का नाम लेना चाहूगा क्योंकि पिछले लों से मैं उसकी कविताए पढ रहा हू और फिलहाल उसके बारे मे विष्णु खरे के शब्दों मे सिर्फ हना चाहता हू कि ब्न्ल और प्रेरक कवि है चन्द्रकान्त देवताले।

षणुगापाल   इस सवाल के सामने मैं निरस्त्र हूँ। पिछले दशक की पाँच श्रेष्ठ कविताए। दसिया कवि-दसियो कविताए हैं। *लीलाधर मडलाई* वीरेन डगवाल विष्णु खरे आलोकधन्वा विमलकुमार विष्णु नागर राजेश जोशी कुमार अबुज नरेन्द्र जैन और नहीं, यह सवाल 'फाउल प्ले' की मिसाल है। जो भी पाँच चुनेगा वह   । जाने दीजिए, मैं नहीं चुन रहा हूँ।

राजेश जोशी   पाच कविताएँ तो कम सख्या है लेकिन जो कविताएँ मुझे पसन्द हैं हो सक्ता है शीर्षक गलत हो जाये नरेश सक्सेना की *काक्राट कथा*। विष्णु खरे की *लालटेन जलाना*। ऋतुराज की *शाल जी के घर* आलोकधन्वा की *ब्रूनो की बेटियाँ* मगलेश की *सगतकार* विजय कुमार को *प्लेटफार्म पर औरत* देवीप्रसाद की *कालीन बुननेवाला लडका* और विमल कुमार की *भेडिया आपको खा जायेगा*। इसके अलावा भी कुछ कविताएँ गिनायी जा सकती हैं।

अरुण कमल   यह सवाल सबसे कठिन है। इसलिए कि समय पाकर ही कविता का असर होता है– 'आह को चाहिए एक उम्र असर होने तक । पाँच की गिनती से तो एक हाथ भी पूरा नहीं होगा। आप इसे मेरी चालाकी भी कह सकते हैं।

सुधार रजन सिह   'धरा समर्पण' (कुमार विकल) 'ब्रूनों की बेटियाँ' (आलोक धन्वा) 'आठ लफगो और एक पागल औरत का गीत' (राजेश जोशी), 'नये इलाके में' (अरुण कमल) और सगतकार' (मगलेश डबराल)।

रचनाकार

केदारनाथ सिंह	–	16, दक्षिणापुरम जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय नई दिल्ली–110067
कुवरनारायण	–	एस–371 ग्रटर कैलाश पार्ट–1, नई दिल्ली–110048
अशोक वाजपेयी	–	सी–2/43 शाहजहाँ राड नई दिल्ली–110011
लीलाधर जगूडी	–	डी–2094 इदिरानगर लखनऊ–226016
चद्रकात दवताले	–	19 सटाद नगर, उज्जन–452001
विष्णु खरे	–	ए–33, नवभारत आइम्स अपार्टमेट्स मयूर विहार, फज–1 दिल्ली–91
मलय	–	शिवकुटीर, टेलीग्राफ गेट न 4 कमला नेहरू नगर जबलपुर
प्रयाग शुक्ल	–	37–बी डी डी ए फ्लेट्स, फज–1, मस्जिद मोठ, नई दिल्ला–110048
प्रभात त्रिपाठी	–	रीडर हिन्दी विभाग गवर्नमट कॉलज राउरकेला–769004
वणु गापाल	–	3–5–91 इदिरानगर रामन्तापुर हेदराबाद–500013
आग्नेय	–	मध्य प्रदश साहित्य परिषद सस्कृति भजन, बाणगगा चौराहा भापाल–462003
भगवत रावत	–	129 आराधना नगर कोटरा, भोपाल–462003 (म प्र)
इब्बार रब्बी	–	डी–3 प्रस अपार्टमट पटपडगज, दिल्ली–92
आलोक धन्वा	–	फ्लैट 7, हिन्दुस्तानी प्रेस भिखना पहाडी पटना
ज्ञानेन्द्र पति	–	बी–3/12 अन्नपूर्णा नगर काशी विद्यापीठ मार्ग वाराणसी–221002
विनय दुबे	–	काटेज न 3, अहमदाबाद पैलेस राड भापाल–462001
वशी माहश्वरी	–	सपादक तनाव पिपरिया–461775 (म प्र)
मगलश डबराल	–	द्वारा जनसत्ता एक्सप्रस बिल्डिग बहादुरशाह जफर माग नई दिल्ली–110002

राजेश आशी	–	एम आइ जी 99, सरस्वती नगर भापाल
उदय प्रकाश	–	9, तरण विहार सक्टर-13, रोहिणी, दिल्ली-110085
अरुण कमल	–	4 मैत्री शाति भवन बी एम दास रोड पटना-800004
नरेन्द्र जैन	–	132, श्रीकृष्ण कालानी विदिशा, म प्र
पकज सिह	–	604 ब्लाक 28 ईस्ट एड अपार्टमट्स मयूर विहार फज-1, दिल्ली-91
राजन्द्र शर्मा	–	ज्ञा-99 शास्त्री नगर, भोपाल-462003
विष्णु नागर	–	ए-34 नवभारत टाइम्स अपार्टमट्स मयूर विहार फज-1 दिल्ली-11009
कुवर दत्त	–	159, आकाश दर्शन अपार्टमट्स मयूर विहार फेज-1 दिल्ली-91 –
हमन्त शेष	–	सा-8, पृथ्वीराज मार्ग स्कीम जयपुर-302001
अजित चाधरी	–	ए-1 महश गार्ड लाइस मिला मैदान, इन्दौर-452006
स्वप्निल श्रीवास्तव	–	जिला मनोरजनकर कार्यालय झाँसी-284001
विनाद कुमार श्रावास्तव	–	जी-24 हैदराबाद इस्टेट, एल डी रुपारल मार्ग मलबार हिल्स मुबई-400006
नरन्द्र गोड	–	ई-138/1, प्राफेसर्स कालानी भोपाल
लाल्टू	–	ई-1/78, पजाब विश्वविद्यालय, चडागढ
गगन गिल	–	14 ए/20, डब्ल्यू ई ए करालबाग नई दिल्ली-110005
तजा गावर	–	142/36 ए चडागढ-140023
कात्यायनी	–	3/274 विश्वासखड गामती नगर लखनऊ-226010
चम्पा वद	–	1652-बी-1 वसतकुज नई दिल्ली-110070
मालश रघुवशा	–	13 बी प्रोफसर्स कालाना, भापाल (म प्र)
क्षमा कौल	–	आई टा आई न्नि फ्लैट न 201-202 राहित हाउस तॉलस्ताय मार्ग, नई दिल्ली-1
वीरा	–	5-91 ईदिरानगर रामन्तापुर हैदराबाद-500013
सध्या गुप्ता	–	भोला भवन दुधानी दुमका (विहार) 814101
दवाप्रसाद मिश्र	–	प्लाट 115 फ्लट 95 कूर्माचल निकेतन पटपडगज दिल्ली-110092
सजय चतुर्वेदा	–	डा-2 यूसीएमएस कैम्पस दिल्ली-110095
कुमार अबुज	–	परछाई 13 राधा कॉलोनी गुना (मध्य प्रदश) 473001
विमल कुमार	–	यूनीवार्ता 9 रफी मार्ग नई दिल्ली-110001

बद्रीनारायण	-	गोविन्द बल्लभ पत सामाजिक विज्ञान सस्थान 3 यमुना एन्क्लेव सगम नगर, झूसी इलाहाबाद
मदन कश्यप	-	भारत वैगन लि मौर्यलोक खड 'ग', पटना-800001
एकान्त श्रीवास्तव	-	हिन्दी शिक्षण योजना, डी आर एम कार्यालय कैम्पस विशाखापट्नम-530004
सत्यपाल सहगल	-	हिन्दी विभाग, पजाब विश्वविद्यालय चडीगढ
उदयन वाजपयी	-	एफ 90/45 तुलसीनगर भोपाल
प्रमोद कोसवाल	-	80/क्यू, सेक्टर 4 पुष्पविहार साकत, नइ दिल्ला-17
अनिल गगल	-	सा-3 कन्द्रीय विद्यालय स्टाफ क्वाटर्स मोती डूगरी अलवर-301001
सुधीर रजन सिह	-	एफ 93/70 तुलसी नगर भोपाल-462003
अनूप सठी	-	बी-1/31 मकरकुदन गार्डन जुहू रोड साताक्रुज (पश्चिम) मुबई-400049
सुलतान अहमद	-	174/1075 मोरारजी चौक बापूनगर अहमदाबाद-380024
प्रताप राव कदम	-	कुण्डलेश्वर वाड खडवा (म प्र)-450001
मिथिलश श्रावास्तव	-	80/5, सेक्टर 1, पुष्पविहार, साकेत, नई दिल्ली-110017
माहन कुमार डहरिया	-	कन्द्रीय विद्यालय बडामुडा, जिला- सुदरगढ उडीसा-770032
हमत कुकरेता	-	300 डी एम आई जी पाकेट ज एड के, दिलशाद गार्डन दिल्ला-95
कृष्ण मोहन झा	-	213 झलम ज एन यू नइ दिल्ली-67
पकज चतुर्वेदी	-	ग्राम व पोस्ट- तिश्ती जिला- कानपुर (दहात) उ प्र 209202
आशुताष दुव	-	6, जानकी नगर एक्सटशन इन्दोर-452001
विनय सारभ	-	नानाहाट दुमका (बिहार)-814145
जितन्द्र श्रावास्तव	-	122 झलम जे एन यू दिल्ली-67
विवेक गुप्ता	-	51 या राजन्द्र नगर, इन्दौर-452012
पवनकरण	-	माधवगज पायगा क पास लश्कर ग्वालियर-1
प्रमरजन अनिमष	-	द्वारा प्रा रमाकान्त प्रसाद सिह जिजीविषा विवकविहार हनुमान नगर पटना-20
शरद रजन शरद	-	विवक विहार हनुमान नगर पटना-800020
कल्लोल चक्रवर्ती	-	सपादकाय विभाग उजाला कारावार सावित्री सदन तीसरी मजिल 15 कम्यूनिटी सेंटर प्रीत विहार दिल्ला-92
नरेश चद्रकर	-	14/6 चैतन्य सोसायटी नवरगपुरा अहमदाबाद-380014

हरिओम राजारिया	-	लम्बरदार गली अशाक नगर (म प्र) 473331
रामकुमार तिवारी	-	ए/47, प्रियदर्शिनी नगर, बिलासपुर (म प्र)
मनोज शर्मा	-	नाबार्ड, एफ-1794, शास्त्रीनगर (एक्सटेंशन) पो बैग स 2 जम्मू तवी-180004
निरजन श्रोत्रिय	-	भार्गव बिल्डिग, कैंट रोड, गुना 473001 (म प्र)
कुमार वीरेन्द्र	-	द्वारा हनरी डिसाजा रूम न 2 पिटो चाल, हॉली क्रास एसासिएशन के पास, चूना भट्टी, साताक्रूज (पश्चिम) मुबई
गौत	-	427/8 उल्हास नगर महाराष्ट्र-421001
विनीत	-	108 विष्णुपुरी (मुख्य) इन्दौर
शैलन्द्र दुबे	-	प्रेमचद सृजनपीठ विक्रम वाटिका के सामने वि वि परिसर उज्जैन (म प्र) 456010
हरि मृदुल	-	बी/6/2 सिद्धार्थ कालानी चम्बूर मुबई-400071
चमनलाल	-	हाउस न 111-ई बारादरी गार्डन्स पटियाला-147001
जितेन्द्र भाटिया	-	201, माउट यूनिक 25 माउट मेरी रोड, बाद्रा (पश्चिम) मुबई-400050
विजय अहलूवालिया	-	बैंक ऑफ इडिया क्षत्रीय कार्यालय, मूदडा मार्केट 203 ए महात्मा गाधी राड नासिक-422001
सतोष चौबे	-	22/ई-7, अररा कॉलोनी भोपाल
अनुराधा महेन्द्र	-	डी-504 माटा नगर चकाला अधेरी (पूर्व) मुबई-400099
विदा करदीकर	-	7 आनद भवन साहित्य सहवास बान्द्रा (पूर्व) मुबई-400051
सजीव चादोरकर	-	एच-11 मकर कुदन गार्डन जुहू रोड साताक्रुज (पश्चिम) मुबई-400049
महावीर अग्रवाल	-	सपादक 'सापक्ष', ए-14 आदर्श नगर दुर्ग (म प्र) 491001
विजय कुमार	-	ए-132 ट्विन टावर्स प्रभादेवी मुबई-400025
अग्निपुष्प	-	तिवारी सदन चकारम चाक के निकट श्रीकृष्ण नगर पटना-800001
विभाराना	-	504 बी लिलक गार्डन चारकाप कादिवली (पश्चिम) मुबई-67
सगीता गुप्ता	-	सी/7 एम सी डी फ्लेट्स आर ब्लाक ग्रेटर कलाश-I नई दिल्ली-110048

उद्‌भावना के लिए शुभकामनायें

चौ. प्रेमसिंह

(सरपंच)

ग्राम पंचायत कटवाल

तहसील–गोहाना

जिला–सोनीपत (हरियाणा)

उद्भावना के लिए अजेय कुमार द्वारा प्रकाशित एवं प्रोग्रेसिव प्रिंटर्स दिल्ली 95 से मुद्रित